परिषद् ग्रन्थमालाका आठवाँ ग्रन्थ

रानी तिष्यरक्षिता

बौद्ध दर्शनमें संगमित मौर्य-साम्राज्यकी रोमाञ्चकारी, ह्रासोन्मुखी घटनाओं एवं अत्यन्त आकर्षक कथा-प्रसंगोंसे युक्त करुणैतिहासिक औपन्यासिक कृति

[संशोधित-परिवर्द्धित संस्करण]

सत्यदेव चतुर्वेदी

हिन्दी-साहित्य-सृजन-परिषद
जौनपुर, उत्तरप्रदेश

* पुस्तकका नाम : राधी विध्यरक्षिता

* प्रकाशकका नाम : सत्यदेव चतुर्वेदी अधिष्ठाता एवं नियन्ता—
हिन्दी - साहित्य - सृजन - परिषद, जौनपुर
उत्तरप्रदेश—भारत

* लेखकका नाम : सत्यदेव चतुर्वेदी अधिष्ठाता एवं नियन्ता-
हिन्दी - साहित्य - सृजन - परिषद्, जौनपुर
उत्तरप्रदेश, भारत

"प्लानिंग एण्ड अरेन्जमेण्ट काम्पिलेशन एण्ड मैनर ऑफ ट्रीटमेण्ट ऑफ दि सब्जेक्ट-मैटर, ओरिजनल ले आउट एण्ड गेटअप, इटसेट्रा, आर ऑथर स ओरिजनल फीचर्स इन द बुक। पाइरेसी आफ दोज फीचर्स इनवाल्व्स इन्फ्रिन्जमेण्ट ऑफ कॉपीराइट। परसन्स, कमटिंग पाइरेसी ऑफ एनी ऑफ दोज, फीचर्स, शैलबिलाइबुल फार इन्फ्रिन्जमेण्ट ऑफ कॉपीराइट।"

—एस० के० दत्त V/S लॉ-बुक कम्पनी
एण्ड अदर्स, ए० आई० आर० १६५
इलाहाबाद हाईकोर्ट—१७०

* संस्करण : तृतीय १६७४ ई०

* मूल्य : तेरह रुपये १३-००

* मुद्रक : ग्लोब प्रेस, मध्यमेश्वर वाराणसी—
फोन : ६४८७८

अर्हन्त भगवान् तथागतके श्रीचरणोंमें

अश्रुमुखी

रानी तिष्यरक्षिता

समर्पित

'कारुण्य कल्लोलित दृष्टिपातं,
कन्दर्पदर्पानिलकाल मेघम् ।
वैकल्पकल्पद्रुममूलकन्दं,
वन्दे महः कन्दलमर्कबन्धुम् ॥'

—लेखक

अपनी बातें

आजसे २५ वर्ष पूर्व जब जौनपुरमें आकर हिन्दी-साहित्य-सृजन-परिषद-संस्थाकी मैंने स्थापनाकी, तो मेरे कुछ विरोधी बन्धुओंने मुझे भली-भांति हतोत्साहितकर कहा—'कुछ नहीं हो सकता।' यही नहीं, मेरी हँसी भी उड़ायी गयी और जनपदके साहित्य-सेवियोंमें मेरा नाम भी उनके चलते नहीं आने दिया जाता। वैसे, ऐसे बन्धुओंकी भी कमी नहीं है, जिनका स्नेह मुझे पवित्रतासे मिलता रहता है। मनमें एक दृढ़ संकल्प तो है ही। साधना-का भी कुछ संबल है; परन्तु सरस्वतीके मेरे मन्दिरमें न अर्घ्य-नैवेद्य है, न साधन-वर्तिका। पथदर्शी एवं प्रदर्शक स्वयं था। निर्धनता उत्तराधिकारमें पाया। पर पता नहीं, कैसे हिन्दी-साहित्य-सृजन-परिषदने २५ वर्षोंकी अवधिमें आलोचना, शोध-निबन्ध, नाटक, कहानी, उपन्यास इत्यादिक अनेक विधाओंमें रचनाएँ अर्पितकर हिन्दी-साहित्यकी धाराकी क्षिप्रतामें अनुकूल दिशा दी। अनेक कृतियां प्रदेशीय एवं केन्द्रीय सरकारों द्वारा समादृत हुईं। भारत ही नहीं, विदेशोंमें भी जाकर ये कृतियां हिन्दी-साहित्य-सृजन-परिषद प्रकाशन संस्थासे सम्मानित हुईं। मेरे प्रयास-रहित रहनेपर भी इनका अस्तित्व एक साहित्यकारके लिए अमूल्य है। इन पुस्तकोंकी व्यक्तित्व-सज्जा मैं कुछ न कर सका; प्रचार-प्रसारका साधन नहीं था। ये स्वतः बढ़ीं और अपना स्थान पायीं।

देशके मूर्द्धन्य साहित्यकारोंने हमारी कृतियोंपर यथास्थान अपने विचार व्यक्त किये। अभावके परिवेशमें जन्मे परिषदकी इन उपलब्धियोंमें मुझे राग-विराग नहीं है। जानता हूँ, इन कृतियोंमें मैं आत्म-सुख पाता हूँ। समाजका इनसे क्या कल्याण होता है—यह समाज जाने। मेरी उपलब्धि आत्मानन्द तक रहती है। साहित्य एकान्त-साधनाकी पवित्र वस्तु है। प्रचारकी आनन्द-प्राप्ति बौद्धिकताकी अधोन्मुखी कुण्ठा है। कोई भी बौद्धिक प्रचार-जन्य गुण-

प्रशंसाओंकी हिलोरोंमें न झूमकर एक तपश्चर्यामें अधिक समयका सदुपयोग करेगा—यही ऊर्ध्वरेतस—वेदान्त है। हमें इस जीवन-व्यापी वेदान्तहीमें सहज आनन्द-धारा मिलती है।

'तिष्यरक्षिता'का तीसरा संस्करण यह प्रस्तुत है। यह संस्कार किस स्तरका है—यह कार्य समीक्षकोंका है। अनेक कृतियोंकी पाण्डुलिपियोंको बीचमें ही अधूरी छोड़कर, इसे ही प्रकाशित करनेमें लगना पड़ा—जिससे यदि शीघ्रतामें कहीं भूल रह गयी हो, तो इतिहासज्ञ मनीषी क्षमा करेंगे। साथ ही अपनी सम्मति एवं सुझाव देंगे। अपने युगकी धार्मिक पराकाष्ठा, राजनीतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक प्रतिमानोंसे सज-धजकर तिष्यरक्षिता आपके समक्ष है। मैं अब तटस्थ होता हूँ।

सितम्बर १९७४

—सत्यदेव चतुर्वेदी
हिन्दी-साहित्य-सृजन परिषद
जौनपुर

पं० सत्यदेव चतुर्वेदीका साहित्यिक मूल्यांकन

[डा० देवेन्द्र— अध्यक्ष–हिन्दी-विभाग, राजकालेज जौनपुर]

चतुर्वेदीजीके व्यक्तित्वका साहित्यिक सर्वेक्षण करनेपर आलोचना, उपन्यास, कहानी, सम्पादन एवं पत्रकारिताकी अनेक सरणियाँ मिलती हैं। आप १९ ‧१ की ७ जुलाईको जौनपुर जनपदके रामपुरखुर्द ग्राममें पं० श्रीरामशरण चतुर्वेदीके परिवारमें पैदा हुए। शिक्षाके अनन्तर समस्याओंसे समायोजन स्थापन हेतु आपकी जीवन-यात्राने कई मोड़ लिया है। प्रयागमें सुप्रसिद्ध कवि एवं लेखक पं० रामनरेश त्रिपाठीके सम्पर्कमें आपकी साहित्यिक वृत्तियोंका उद्‌घाटन हुआ। कुछ वर्षो तक काशीके साहित्यिक वातावरणमें भी आप रहे। ये साहित्यिक वृत्तियाँ कुछ समय तक बम्बईमें भी विकसित हुईं, वहाँके साप्ताहिक 'अभियान' के सम्पादकीय विभागमें आपको सम्मान मिला। आपने ४ वर्षो तक भारतके अनेक क्षेत्रोंका पर्यटन किया एवं हिन्दी-साहित्यके मूर्धन्य मनीषी आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, आचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदी एवं डा० विनयमोहन शर्मा आदिसे साहित्यिक प्रेरणायें लेते रहे। आपने १९‧८ में हिन्दी-साहित्य-सृजन-परिषद् प्रकाशन-संस्थाकी जौनपुरमें विधिवत् स्थापनाकर साहित्य-साधनामें स्थिरता ला दी। जीवनके इन सोपानोंमें अनेक कटु सत्यों एवं अनेक विवशताओंने आपको एक स्पन्दनशील एवं भावना-प्रवण व्यक्तित्व प्रदान किया, जिनका अभिव्यंजन कृतियोंमें भलीभाँति हुआ है।

चतुर्वेदीजीकी औपन्यासिक संवेदना ऐतिहासिकताके अभिनिवेशमें प्रस्फुटित होकर जीवन्त वर्तमानके बृहत्तर वातायनमें आनुभूतिक चेतनाकी उर्वर धरतीसे पोषणतत्व लेते हुए अपने साहित्यिक व्यक्तित्वकी इकाइयोंका संगठन करती है। वासनाकी स्मशानस्थलीपर उस सम्वेदनालोकके महनीय चैतन्यका अवतरण होता है, जो उपन्यासके कथानकोंकी भावदशाओंको सामन्तिक शिविरोंमें ले जाकर उन्हें लोक-जीवनके समतल प्रवहमाण भी कर डालता

है। 'अन्तरिक्षकी लहरें' जो लेखककी कल्पनाओंका ऐतिहासिक व्यवस्थापन है, एक ऐसा ही घटक है। 'इस कृतिके विभिन्न कथा-सूत्र अरस्तूके संकलन त्रयमें ऐसे विन्यस्त हो जाते हैं कि वे ऐतिहासिक यथार्थवादकी अभिव्यक्ति करने लगते हैं। डा० त्रिभुवन सिंहने राज्य-सरकार द्वारा पुरस्कृत अपने 'हिन्दी उपन्यास एवं यथार्थवाद' में लिखा है—'अन्तरिक्षकी लहरें' की सारी कथा काल्पनिक हैं, वह ऐतिहासिकताका भ्रम उत्पन्न करती हैं। वस्तु-विन्यास कथनोपकथन तथा पात्रोंका चरित्र-चित्रण इतना सहज एवं स्वाभाविक ढंगसे हुआ है कि घटनायें यथाथ प्रतीत होती हैं।'

लेखकके अन्य उपन्यासोंमें 'अमितवेग', 'रानी तिष्यरक्षिता', 'किरणप्रभा' 'अज्ञातके दिन' एवं 'मरीचिका' का अपना अलग महत्व है। 'अमितवेग' का वस्तु-तत्व आर्ययुगीन संस्कृतिपर आधारित है; जिसके नायक हनुमान् हैं, किन्तु अभिव्यक्ति पद्धतिमें बीसवीं सदीका विलक्षण संयोग हो गया है, इस कृतिमें दार्शनिकता और भावुकताका समन्वय किया गया है। प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् एवं राम-कथाके पारंगत मनीषी रेवरेण्ड फादर कामिल बुल्केने इस सम्बन्धमें अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है—'हनुमान्की लोक-प्रियता शताब्दियों तक बढ़ती रही है, फलस्वरूप उनके सम्बन्धमें असंख्य कथाओंका प्रचलन हुआ। इन सबोंको एक ही कथा-सूत्रमें ग्रथित कर श्रीसत्यदेव चतुर्वेदीजीने राम-कथा साहित्यमें एक अभावकी पूर्तिकी है 'अमितवेग' किसी उदीयमान् कविको हनुमान्के विषयमें महाकाव्य लिखनेकी प्रेरणा प्रदान करेगा।'

'रानीतिष्यरक्षिता' एवं 'किरण प्रभा' दोनों ही करुणरस-सिक्त ऐतिहासिक उपन्यास हैं। दोनोंकी मूल नायिकाएँ-तिष्यरक्षिता एवं किरणप्रभा-जीवन-दर्शनके दो पृथक अध्यायोंकी मार्मिक अभिव्यक्तियाँ हैं। शायद 'तिष्यरक्षिता' की प्रतिक्रिया हो 'किरणप्रभा' है। तात्विक सौन्दयके भौतिक पैमानेपर तिष्यरक्षिताके आकारगत् रूपनिरंजनाके सत्य एवं शिव-विहीन सीमा-रेखामें आनेवाली विकृतिमयी भाव यात्रा करनेवाले बौद्ध परिव्राजक सम्राट अशोक जहाँ एक ओर धर्मच्युत हो जाते हैं, वहीं दूसरी ओर रानी किरणप्रभा

के सौन्दर्य संगठनके अन्तर्गत सत्य एवं शिवकी ज्योतिष्मती इकाइयाँ भी समन्वित होकर तत्व-दर्शनके विभिन्न सोपानों (प्रेटी, ग्रेशस, एवं ब्यूटी) की ओर बढ़ चलती हैं, छत्रसाल भी 'मेग्नीफिसेन्ट' की उच्च सौन्दर्य-भूमिपर धीरे-धीरे पहुँच जाते हैं। जब वे किरणप्रभाके सौन्दर्यकी परिभाषामें उद्भ्रान्त हो जाते हैं। नवाब रुहेलाका रोमांचकारी षणयन्त्र इसी सैद्धान्तिक पृष्ठभूमिका एक गहन निदर्शन है। हाँ किरणप्रभाका 'मेग्नीफिसेण्ट' सौन्दर्य 'सब्लाइम' नहीं हो पाता' कि तभी कथा समाप्त हो जाती है, फिर भी तिष्यरक्षिता यदि सौन्दर्य की वेगवती नदी है, जिसकी लहर-लहरपर उन्मत्तताका वासनामय नर्तन है, तो किरणप्रभा भी सत्य, शिव एवं सौन्दर्यकी एक प्रशान्त त्रिपथगा है, जो बाधाओंकी पार्वत्य शृङ्खलाओंको विजितकर छत्रसालका परिणय करती है। 'अज्ञातके दिन' चतुर्वेदीजीका पौराणिक उपन्यास है, इसमें धर्म-प्रेमी पाण्डवोंके अज्ञातवास-पर्वकी कथा कही गई है। 'रागरंजिता' एवं 'मरीचिका' नयी औपन्यासिक कृतियाँ हैं, जो नए प्रतिमानोंको साथमें लेकर आती हैं। 'रागरंजिता' तो ऐतिहासिक ही है, किन्तु वर्तमान जीवनकी विकट घड़ियोंमें जहाँ मानवता विविध अभावों एवं पीड़ाओंसे संत्रस्त होकर प्रशासनिक भ्रष्टाचारके व्याधिसे ग्रस्त है, लेखकने इस कृतिमें इसका समाधान प्रस्तुत करनेका उत्कृष्ट एवं अभिनन्दनीय प्रयास किया है। 'मरीचिका' तक आते-आते चतुर्वेदी जी की मूल सम्वेदना ही परिवर्त्यकी श्वासें भरने लगी है, 'ऐतिहासिकताका स्थान 'सामाजिकता' ने ले लिया।

ऐतिहासिक उपन्यासकारकी 'मरीचिका' क्रान्तिके नये मोड़पर निकलकर 'सामाजिकता' की औपन्यासिक धारामें लेखककी भावुकताको खींच ले जाती है। गाँवके दृश्योंमें लेखककी आनुभूतिक ऊष्मा अन्तः स्पर्शिनी हो उठी है। पाण्डित्यकी शब्द-क्रीड़ासे लेखक दूर ही रहता है, किन्तु जीवनकी विभिन्न परिस्थितियों एवं विशिष्ठ भाव-मुद्राओंमें स्वानुभूत घटनाचक्रोंको पाठकके समक्ष प्रस्तुत करनेमें पूर्णकलात्मकताकी अभिव्यक्ति दी है।

जहाँ तक द्वन्द्वोंका प्रश्न है, अभीतकके उपन्यासोंमें अधिकांशतः 'कांशेस'

(चैतन खण्ड) एवं 'अनकांशेस' (अचेतन खण्ड) के बीच चलनेवाले संघर्षमें 'सुमेर' अत्याचार एवं पाशविकताकी रक्तरंजित जिस दीवालका शिलान्यास करने चला है, परिवारकी उठनेवाली इन्कलाबी धाराने बुलन्द स्वरमें उसका विद्रोह किया। क्रान्तिकी इस ओजस्वितामें न्यायका जो विजयध्वज फहरा है, वह हृदयस्थलीमें एक हलचलका सूत्रपात करके विदा होता है।

आलोचनाके क्षेत्रमें आपकी सारग्राहणी प्रवृत्ति गवेषणात्मक हो उठती है। सुप्रसिद्ध आलोचनात्मक पुस्तक 'गोस्वामी तुलसीदास और राम-कथा' तथा 'हिन्दी काव्यमें भक्तिकालीन साधना हैं, जो स्नातकोत्तर शोध प्रबन्धोंमें तथ्यों-की दृष्टिसे बड़ी सहायक हैं। 'राम कथा' में राम-कथाके उद्भव एवं विकास का ऐतिहासिक एवं आध्यात्मिक विवेचन करते हुए लेखक तुलसी और उनकी राम-कथापर अपने गहन अध्ययनका परिचय देता है। इसी प्रकार उसने 'भक्तिकालीन साधना' में कबीर, जायसी सूर एवं तुलसीकी अनुभूतियों एवं दार्शनिक मान्यताओंको मापनेका प्रयास किया है। 'साहित्य-दर्शन' 'साहित्य-परीक्षण तथा 'कवि नरोत्तमदास एवं सुदामा चरित' आदि आपकी सम्पादित कृतियाँ हैं, जो स्नातकीय छात्रोंके लिए विशेष उपयोगी हैं।

इनके अतिरिक्त आपने 'भगवान् गौतमबुद्ध और उनके उपदेश' नामसे पालि भाषाका अनूदित संस्करण प्रस्तुत किया है, जो 'धम्मपद' का भाव-विश्लेषण ही है। रोगग्रस्त जीवनको मुक्तिका संदेश देते हुए लेखक 'हमारा स्वास्थ्य कृतिकी रचना कर प्राकृतिक चिकित्साकी महनीयता तार्किक भाषामें प्रतिपादित करता है। लेखककी दृष्टि बाल-साहित्य निर्माणपर भी गई है। 'मधुर कथाएँ' 'ललित कथाएँ' एवं 'अककर बीरबल की कथाएं आदि पुस्तकें इसी प्रेरणाकी परिणति हैं। आर्थिक संघर्षोंके बीच साहित्यायन' मासिक पत्रका संचालन एवं सम्पादन तीन वर्षों तक अबाध गति से किया, किन्तु परिवारकी अनेक समस्याओंने अनुकूल वातावरण नहीं प्रदान किया। आशा है सृजनकी यह चेतना भावी संघर्षमें आपका पथ प्रशस्त करते हुए निरन्तर प्रवाहमाण रहेगी। ['प्रकाश' साप्ताहिकसे साभार]

प्रस्तुत कृति और लेखक

कृतिका यह परिवर्द्धित संस्करण अपने पूर्विकका 'तद्वत्' विरूपण तक ही न होकर अभिव्यक्ति और अभिवयक्त्यके लिए तद्भव विन्यासमें भी संगमित हुआ दीखता है। कृतिका यह तद्भव रूप अधिक काव्यमय हो चला है। आनुषंगिक तथा पूर्विक 'कल्पना' ने सपत्नीक युवराज कुणालको सम्प्रतिके साथ गर्मीकी शुक्ल पक्षकी रातको विश्रामके लिए जिस 'प्रकरी' की उद्भावनामें-परिवार-कलहका शब्द चित्र खींचते हुए पितामह द्वारा मिट्टीके बर्त्तन फोड़ दिए जानेसे पौत्रका यह कथन कि यह वर्त्तन पितामह के जीवन-कालमें फूट गया, अपने पिताको किस बर्त्तनमें भोजन देकर वह उनकी चलायी परम्परा का निर्वाह कैसे कर सकेगा—(रानीतिष्यरक्षिता, पृ० ३२, प्रथम संस्करण) का अप्रस्तुत विधान किया था, इस तद्भव संस्करणमें वह प्रकरी उद्भावित नहीं की गयी है। यदि इस 'प्रकरी-बहिष्करण' पर प्रश्नवाचक प्रतीक लगाया जाय तो लगता है, इस संस्करणका लेखक सम्भवतः उस प्रकरीको कल्पना-शक्तिका शिशुपन ही मानता है, जिसमें ऊर्ध्वगामी ओज नहीं था और न बुद्धिवाद उसे पचा ही सकता। यह तो भारतीय दादा-दादियोंका अपने हठीले पोता-पोतियोंको फुसलानेके लिए पितृ-भक्तिकी बाल-शिक्षा अन्तर्निहित किए एक ऐसी लघु-कथा है, जिसका अस्तित्व सदियोंसे भारतीय लोक-जीवन में दन्तोक्तियोंके रूपमें अक्षुण्ण रहा है। पर इस लघु दन्तोक्तिको इस कृतिके प्रथम संस्करणकी कल्पनाने जिस स्थान-कोष्ठकमें जड़ा था, वह अनुपयुक्त था। सम्भवतः इसकी अनुपयुक्तताकी गंध इस संस्करणकी कल्पनाको मिली और फलतः उपचार भी मिल गया। उस प्रकरीको नवीन संस्करणके व्यक्तित्वसे अलग करके, क्योंकि उसके 'भावाणु' पूरी कृतिके व्यक्तित्वको आक्रान्तकर अवमूल्यितकर देनेवाले निकले !

अन्य अर्थ प्रकृतियोंकी पारस्परिक संधियाँ रूपक-कलाकी दृष्टिसे तात्विक,

संस्तुत्य एवं औत्सुक्य-पूर्ण हैं। ये अर्थ प्रकृतियाँ अपने सन्दर्भोंमें लीन हो चली हैं। ये जब हँसती हैं, तो हम हँसते हैं, ये जब रोती हैं, तो हम रोते हैं, ये जब भयानक (दृश्योंवाली) होती हैं, तब हम भयभीत एवं स्तब्ध होते हैं इस प्रवाहमें पाठ्यके प्राणोंसे हमारे प्राण और भावनाओं से हमारी भावनाएँ मिलकर एकाकार हो जाती हैं। यह तादात्म्यीकरण इतना मार्मिक हुआ है कि हृदय-हृदयकी भेदक रेखा क्षीण होकर अदर्श्य हो जाती है और हममें अनुभूति उठती है कि हम मौर्य कालकी गाथा न पढ़कर अपनेही जीवनके ऊबड़-खाबड़ दुःख-सुख के भूगोलका अध्ययन कर रहे हैं। १९६८ के नवम्बर-की बात याद आती है, जब लेखक इस कृतिके परिच्छेद क्रमांक २५ को पढ़कर सुना रहा था और भाव-दृश्योंमें तन्मय हुआ उसका कवित्व अपनी मार्मिक उद्भावनाओंमें खो गया और खोते-खोते कण्ठ भर्रा आया, सिसकियाँ बँध गयीं, पढ़ना जारी रखना कठिन हो गया। लगता था मेरे समक्ष लेखक नहीं, स्वयं सम्राट अशोक मर्माहत, पुत्र-वियोगमें तड़पते विलख रहे हैं, या दूसरे शब्दोंमें सम्राट अशोक नहीं, सम्राट अशोकके अप्रस्तुत विधानमें लेखकका पितृ-पक्ष स्वयं रो रहा है और इस साक्षात् क्रन्दनमें विराट विश्वका प्रत्येक पिता अपने पुत्रके वियोगमें अश्रुपात कर रहा है। मेरी भी आंखें नम हो चलीं। याद आ गया 'प्रसंग' दशरथ और रामका, अशोक और कुणालका, भारतीय संस्कृति के एक पिता एवं उसके पुत्रका……(यही नहीं) अनेक-अनेक पिता एवं उनके पुत्रोंका मार्मिक करुण प्रसंग जिसमें राग-विरागकी विलोम वृत्तियां एक साथ जग गयीं हों और विवश पिताको प्रायश्चित्तताकी चितामें भस्मीभूत होना पड़ा हो। और भी मार्मिक विचार आये—आते गये, पर वे अनिर्वचनीय, अकथनीय, लोकोत्तर काव्यानन्दपूर्ण और अनुभवगम्य थे। भाव-दशाकी यह दिव्य करुणा दो-एक स्थल ही नहीं, अनेक स्थलोंपर हृदय-स्पर्शी हुई है। हृदय-तटको आप्लावित कर देनेवाला ऐसा ही एक प्रसंग वहाँ आता है, जहाँ युव-राज कुणाल लौह तप्त शलाकाओंसे अपनी आँखें फोड़ लेते हैं। लेखककी कल्पना यहाँ अपनी साहित्यिक प्रौढ़ताका विज्ञापन तो देती ही है, साथही भावकके भाव-

देशको करुणकी निस्सीम भाव-धारासे आप्लावित कर देती है। लेखकके शब्दोंमें उद्धरण लें—युवराजने पूछा—'प्रिय चन्द्रभाल ! यहाँसे सब चले गए ?' चन्द्रभाल अत्यन्त दुःखी था, मौन था, नेत्रोंसे जलकी धारा प्रवाहित होती रही। युवराज पुनः चन्द्रभालको टटोलते हुए बोले—'बोलो भाई, बोलते क्यों नहीं ? सब चले गये गये ? 'असह्य वेदना दबाकर पूछा युवराजने। सारी जनता चली गयी थी, दो चार व्यक्ति वहां खड़े रह गये थे। चन्द्रभाल कुछ न बोला, उसके पार्श्वमें एक व्यक्ति सिसकियां लेते हुए बोला—'हाँ युवराज देव !'

युवराज देव पुनः बोले—'चन्द्रभाल ! संप्रति और कांचनको यह सब घटना न ज्ञात होगी। वे सब तुम्हारी पत्नीके साथ कहाँ घूमने चले गए ? मेरी आकांक्षा है—मौर्य साम्राज्यके परित्यागके प्रथम उनसे एक बार मिल लूँ।' कहते हुए उनसे न रहा गया, गला भर आया।

गोपक चन्द्रभाल और उसके पार्श्वमें खड़े अन्य लोग जोरोसे रो पड़े। वहाँ करुणाका दृश्य उपस्थित हो गया × × × × ।"

—(सं० प्रथम परिच्छेद–१७)

नयन-विहीन युवराज द्वारा चन्द्रभालका टटोलना हमारे-आपके हृदयको टटोल जाता है और उनके भराए गलेमें हम-आप भी भर्रा उठते हैं—नैसर्गिक प्रवाहमें ही। यही नहीं—यह एक ऐसी करुणा है, जो भवभूतिके 'एकोरसः करुण एव निमित्त भेदात्' का स्मरण दिलाती है। यह समाचार कांचन तक पहुंचनेपर तो कांचन-विलापपर हृदय मुँहको आ जाता है—" × × युवराज उसे शान्त करने लगे, आँखोंकी पीड़ा अत्यन्त धैर्यसे दबाते हुए कोमल वाणीसे बोले–'भद्रे ! इस प्रकार दुःखी होनेसे क्या लाभ ? धीर पुरुष ही शान्त चित्तसे हर्ष–शोकका आवेग-उद्वेग सहन करते हैं। जिस कर्त्तव्यका पालन मैंने जीवनकी बाजी लगाकर किया है, इस भाँति व्यग्र होकर उसका महत्व कम न करो। भाग्यमें जो बदा था, वह हुआ, उसके लिए तड़प-तड़पकर विलाप करनेसे कोई लाभ नहीं। समयके दौरके साथ अपना आगेका कर्त्तव्य सँभालो।'

'प्राणनाथ ! मौर्य साम्राज्यकी सीमाके बाहर चले जानेपर हमारा यहाँ कौन रह जाता है, जिसकी छाँह ग्रहणकर हम और सम्प्रति जीवन बिताएँगे ?' कहा काँचनमाला ने ।

'भद्रे ! तुम्हारे लिए किसी प्रकारकी राज्याज्ञा नहीं हुई हैं, अतः पिताजी तुम्हारी रक्षा करेंगे और सम्प्रति की भी ।'

'मै उस पितापर विश्वास नहीं करती, जिसने अपनी उदारता ऐसा गर्हित कार्यकर दिखा दी । मेरी दुनियाँ उजाड़ देनेमें कुछ भी संकोच, कुछ भी दया और कुछ भी लोक-लज्जा नहीं आयी, उस निष्ठुर, पाषाण-हृदय पिताका अब भी अवलम्ब ग्रहण कराते हैं स्वामी ! अबभी आपको आशा है, वह हमारी भलाई कर सकता है ?'

'भाई चन्द्रभाल ! इस समय देवी कांचनमालाका चित्त स्थिर नहीं है। मैं इसे और सम्प्रतिको तुम्हारे साथ छोड़ जाता हूँ । इन्हें शान्त्वना देकर स्वस्थ-चित्त करना । मैं सर्व प्रथम भिक्षु होकर तुमसे यही भिक्षा चाहता हूँ ।'

वहाँ बड़ाही करुण दृश्य छा गया । काञ्चन उस समय मूर्च्छित हो, वहीं गिर पड़ी । उधर युवराजने शिरके बालकटा, हाथमें कमण्डल ले, चरणोंमें चरण-पादुका पहिन सारे शरीरको काषाय वस्त्रसे सुशोभितकर पूर्ण भिक्षुवेशमें चल पड़े । चलते समय उन्होंने अपनेको बड़ा संयत रखा । माया-ममताका कुछ भी प्रवाह उनपर न दिखायी पड़ा । उनका हृदय बड़ा ही निष्ठुर हो गया था ।''–(१७ परिच्छेद-रानी तिष्यरक्षिता द्वितीय संस्करण)

गोपकचन्द्रसे युवराजकी प्रथम भिक्षा किस हृदयको बिना विदीर्ण किए छोड़ेगी ? धैर्यके तन्तु टूट जाते हैं, अश्रुप्रपात उछल पड़ते हैं । युवराजकी यह 'निष्ठुरता' लक्ष-लक्ष करुणाका स्रोत बन जाती है । भगवान् तथागतका महाभिनिष्क्रमण सामने आ जाता है । लगता है, यह कांचन नहीं यशोधरा (मूर्च्छित नहीं) सो रही है । यह सम्प्रति नहीं, राहुल अबोध बना अपने जनकके महाभिनिष्क्रमणकी दिव्य बेलामें बिदा दे रहा है । यह विप्लवी गोपक

चन्द्रमाल नहीं, अपितु सारथी कंथक प्रव्रज्याका मार्ग अग्रसारण करने प्रस्तुत हो गया है।

इस कृतिममें प्रतिपादित न्याय-विधान सम्बन्धी अप्रस्तुत विधानमें कृति-विधायकसे कुछ आपत्ति है। न्यायकी माँग लेकर, लगता है, भाव-मनीषा की भावुकता कुण्ठाग्रस्त हो जाती है। वस्तुतः इस कृतिमें परिस्थितियां देवि कांचन-मालाको विवादका एक पक्षकार बना देती हैं। (किंवा भाव-चित्रककी भाव-तूलिका ही कल्पना की शिल्प-कलासे उसे विवादका एक शसक्त पक्षकार बना देती है।) तक्षशिला-विजयके तुरन्त बाद न्यायपीठाधीश्वरी प्रतिनिधिश्रेष्ठ कांचनमाला जब राजबन्दी तक्षशिलाधीशको अभियोजित करती है, तो अभि-योजनप्रणालीसे हृदय अशान्वित हो जाता है, कि न्याय अवश्य किया जायगा, पर धीरे-धीरे न्यायप्रक्रिया अन्तिम आयाममें जा दोषयुक्त हो जाती है। न्याय-पीठाधीश्वरी द्वारा अभिशस्त अभियुक्त तक्षशिलाधीशके अभि-योगकी दण्डाज्ञप्ति न्यायकी पवित्रताको अक्षुण्ण नहीं रख पाती। होता यह है कि पूरे अभियोग-सूत्र पर जितनी मात्रा तक न्याय पीठाधीश्वरी दण्ड दे देती है, अभियुक्त द्वारा क्षमा-याचना किए जानेसे क्रोधमें उद्दीप्त हो उस पूर्व-धारित दण्डकी इयत्तामात्रा और ईदृकताप्रकारमें वृद्धिकर देती है। इयत्ता और ईदृकताके उत्तरोत्तर विकासका यह क्रम तब तक चलता जाता है, जब तक कि अभियुक्त क्षमा-याचना करता चलता है। ज्योंही दण्डकी भयंकरता उसे चेतना-रहित कर देती है, त्योंही दण्डाज्ञप्तिमें विस्तारणकी प्रक्रिया भी बन्द हो जाती है। भाव-चेताके शब्दोंमें "× × × ×—उत्तेजनामें आकर कांचन (न्याय-पीठासीन) ने कहा। उसकी आकृति रोषमें भयंकर होती जा रही थी और ज्यों-ज्यों तक्षशिलाधीश अपराधोंके लिए क्षमा चाहता था, त्यों-त्यों कांचनके रोषमें आवेग उठता जा रहा था। तक्षशिलाधीश मूर्च्छित हो गिर पड़ा।" - (रानी-तिष्यरक्षिता २०वां परिच्छेद दूसरा संस्करण)

इस प्रकार यह दण्डारोपण न्याय सम्मत न होकर क्रोधावेष्टित एवं उत्तेज-नात्मक परिस्थितियोंमें अनुप्राणित है।

इसी प्रकार वहाँ, जहाँ कांचन द्वारा उद्घोषित विप्लव के शमनमें सम्राट

अशोक स्वयं हस्तक्षेप करते समय राजबन्दी होकर वास्तविकतासे अवगत हो प्रायश्चित्तताकी त्याग-भूमि तक पहुँच जाते हैं --भावककी कांचनमाला न कि इतिहासकी कांचनमाला—न्याय-निर्णयनका एकाधिकार लेकर ही, राजनगर पाटलिपुत्र सम्राटके साथ प्रत्यावर्तित होती है। सम्राट द्वारा अनुमोदित एवं निर्णयनके सन्दर्भोंमें सर्वांगीण प्राधिकृत एक सदस्यीय न्यायपीठकी गरिमापर कांचनमालाको पहुँचाकर कृतिका प्रखर कवित्व न्यायकी आत्मासे दूर हो जाता है। किसी मामलेके एक पक्षकारको यदि उसी मामलेके द्वितीयक पक्ष-कारके विरुद्ध 'निर्णयन-क्षमता' दे दी जाय, तो न्यायकी सम्भाव्यता नहीं रह जाती। निर्णायक बना वह सम्बन्धित पक्षकार स्वच्छन्द एवं अनियंत्रित प्रति-शोधमयी स्वेच्छाचारितामें उद्भ्रान्त न्यायके वन्दनीय औचित्यका निर्वाह नहीं कर सकेगा और वह पक्षकार यदि इतनी भावजयी आदर्श प्रेमी हो भी, तब भी न्यायकी परम्परा को पवित्र एवं मान्य बनानेके लिए कभी भी सम्बन्धित पक्ष-कारको निर्णायक- शक्ति प्रदत्त नहीं करनी चाहिए। दृश्य योजनाकी यह समूची उद्भावना 'कुण्ठाग्रस्त' इसलिए है कि प्रबल संवेगाकुला उन्मनी भाव-तंत्री अपनी कांचनमालाके हाथ न्याय सौंपकर मामलेके दूसरे पक्षकार (अभियुक्तगण) के प्रति अपनी घृणा, हुंकृति एवं आक्रोशको अधिक सशक्त, प्रभाविकता एवं दुर्दान्त प्रचण्डतासे व्यक्त करनेके लिए बद्धपरिकर हो चली है। लगता है, यहाँका लेखक निरपेक्ष न्यायमीमाँसी न होकर कांचन-शिविरका विप्लवी कोई सैनिक ही है, जो अपनी नेतृ-शक्तिके हाथों होता न्याय देखकर अति प्रसन्न हो उठा है। तिष्य-रक्षिताके अत्याचारसे न्याय-अभीप्साकी तटस्थता कुण्ठित एवं प्रतिशोधी भावो-द्वगतासे रक्ताभ हो चली है। पर बावजूद उपर्युक्त निर्धारणके, जहाँ तक हो सका है, न्याय ही हुआ है। हो सकता था, सम्राट अशोककी न्यायपीठिका कांचनकी न्यायपीठिका द्वारा धारित दण्डसे अधिक कड़ा दण्ड धारित करती। दूसरे तत्का-लीन सन्दर्भोंमें वैसा दण्ड उपयुक्त भी है। पर यहाँ भी न्याय-प्रक्रियामें कुछ न्यायिक आपत्तियाँ हैं। कांचनमाला न्याय करनेके पूर्व अभियुक्तोंको आत्म-निवेदनका अवसर नहीं देती, जो शुद्ध न्यायकी दृष्टिसे देय है। इन आपत्तियोंका उत्तर यह

नहीं है कि शुद्ध इतिहासनिष्ठ तथ्यकी ऐतिहासिकताको अक्षुण्ण रखने के लिए तद्वत् उद्भावनाकी गयी । इस संकथनकी अमान्यताका कारण है—साहित्य-शास्त्र कुछ ढीलें ऐतिहासिक रूपकोंको देना है, कि ऐतिहासिक तथ्योंको कलात्मक बनानेके लिए अपेक्षित काट-छाँट किया जा सके । यदि शुद्ध ऐतिहासिक विवरण साहित्यकी उपन्यास विधामें दिया जाय, तो इतिहास एवं ऐतिहासिक उपन्यासमें भेदक-तत्व ही क्या रह गया ?

किन्तु न्याय-प्रक्रिया प्रतिशोधात्मक कुण्ठाग्रस्त एवं आपत्तिजनक होती हुई भी प्रथम दृष्ट्या रोचक, औत्सुक्यपूर्ण एवं रोमांचकारी है । न्यायकी अन्य कार्यवाही बड़ी शालीनतासे निष्पन्न होती है । न्यायका चरन आदर्शभगवान तथागतका दिव्य संदेश और सम्राट अशोकका राजसूयक महामन्त्र उस समय उपस्थित होता है, जब कुणाल—मामलेका क्षतिग्रस्त-निरीह एक पक्षकार-न्याय-कार्यवाहीके अन्तिम घटकमें पहुँचकर न्यायका धार्मिक एवं आध्यात्मिक समापन करते हुए, अपराधियोंको क्षमा-दण्ड देता है, यह वह क्षमा-दण्ड है, जो इतना कठोर एवं तिक्त है, वह तिष्यरक्षिताका हृदय बता सकता है । क्षमा जैसी कठोर यातना सम्राट एवं कांचन दोनोंमेंसे कोई भी - नहीं धारित कर सकता था । दृश्यपूर्णताकी यह उद्भावना इतिहासनिष्ठ न होकर भी आदरणीय एवं जीवनके लिए अनुकरणीय सापेक्षता लिए हुए है ।

तिष्यरक्षिताके व्यक्तित्व संगठनमें लेखकने न्याय किया है । उसका रूप-विधान विशुद्ध साहित्यिक है । ''''''' । यह कृति तिष्यरक्षिताके अज्ञात प्रारम्भिक इतिहासपर भी विश्वसनीय प्रकाशपात करती है । अभी तक विवा-दास्पद है कि तिष्यरक्षिता परिचारिकाश्रेष्ठी थी, या कोई राजकुमारी, या भिक्षुणी, या इन तथ्योंसे भिन्न कोई ? एक शोधकर्त्ताके अनुसार कलिंग हारनेपर कलिंग-राजने एक नगरवधूको मौर्य-साम्राज्यके ह्रासके लिए अन्य दास-दासियोंके साथ इसे भी सम्राट अशोकको समर्पित किया था, जिसने अनेक हाव-भाव, हेला-दिक आंगिक चेष्टाओंसे सम्राटकी जितेन्द्रियताको अभिभूत किया और अपने दायित्वका निर्वाह करके ही रही—मौर्य-साम्राज्यको पंगुल करके । पर लेखने

तिष्यरक्षिताके प्रारम्भिक इतिहासका जो उद्घाटन कृतिमें किया है, वह यथार्थ-परक है, जो शोधकर्त्ताओंके लिए एक प्रश्न और उत्तर दोनों हो सकता है और है भी।

सम्राट अशोकके इस तिष्यरक्षिता-प्रकरणपर अब तक अनेक कृतियाँ साहित्य की विभिन्न विधाओंमें प्रकाशित हो चुकी हैं, पर तुलनात्मक दृष्टिसे लेखककी यह कृति अन्यतम् है। अनेकधा कृति कलिकाओंमें रस-मंजरियोंका आस्वाद करनेके पश्चात् इसी कृतिमें काव्य-रस-प्यासी आकांक्षाकी तृप्ति हो पाती है। किसी नाटककी तिष्यरक्षिता एवं इस प्रकरणके सम्बन्धित अन्य पक्षकार अपने संवादोंकी दुरूहतामें खो गए हैं, तो किसी अन्य कृति-मंचकी तिष्यरक्षिता और उसके अशोक तथा उस अशोकके कुणाल 'अतिवादी' चरित्र हो गए हैं। उदाहरणके लिए काशी हिन्दूविश्वविद्यालयके हिन्दी-विभागके प्रवक्ता आदरणीय प्रोफेसर साहबने 'कुणाल' नामसे इसी इतवृत्तको अनुप्रेक्ष्य किया है। यही ऐसी एक कृति मिली, जो भाषा निबन्धकी दृष्टिसे सन्तोषप्रद लगी। साहित्यकी वर्णन परम्परामें मान्यता प्राप्त अप्रस्तुत विधान आपके 'कुणाल' में गतिशील है। संस्कृतके तत्सम् एवं तद्भव रूपोंके प्रयोगसे मौर्य-काल जीवन्त हो उठा है, पर व्याकरण-अनुशासन इतना कठोर है, कि काशी हिन्दू-विश्वविद्यालयका अनुशास्ता कार्यालय याद आ जाता है। व्याकरणके इस कठोरअनु शासनसे भाषाका प्रकृत्प्रवाह एवं भावुकताके आरोहावरोहण दोनों दृश्यवद्तासे विद्रोह करते रहते हैं। जैसे कि विश्वविद्यालय के कुछ छात्र अनुशासन एवं वहाँकी प्रबन्ध-व्यवस्थाके प्रति विरोध एवं हड़ताल करते रहते हैं। कहीं भी व्याकरण एवं भाषा-प्रौढ़ताकी सभ्य व्यवस्थाका यह आपके अनुशासन प्रासंगिक पताका एवं प्रकरियोंसे डग मिलाकर नहीं चल पाते। दृश्यविधानमें जिस ढंगका अनुशासन 'कुणाल' चाहता है, प्रोफेसर साहबकी व्याकरण वादिता, किंवा शब्द-विधानमें संस्कृतमयताके प्रति अप्रतिम मोहमयता वैसा स्वस्थ अनुशासन नहीं दे पाती। किन्तु यह 'तिष्यरक्षिता' कृति भाषा-प्रौढ़ता, भाव-गाम्भीय, एवं साहित्यिक उद्भावनाएँ आदि समेकित तो किए ही है, सबसे अलग अनोखी बात यह है कि कृतिकी भाषा भावोंका स्वागत करती

दीखती है। व्याकरणकी अनुशासन-व्यवस्थाने इस कुशलतासे वाक्य-विन्यास किया है कि वे दृश्यमय हो चले हैं। इस अनुशासनमें कठोरता कहीं भी नहीं दीखती, अपितु ये अनुशासन अपने वर्ण्यसे इतना मिलकर चलते हैं कि लगता है, कि कृतिके हर तद्भव-शब्द, हर वाक्य-पद्धति, व्याकरणका हर अनुशासनिक मोड़ अपनेको दृश्य-विधानोंके अनुरूप करते हुए उनका हार्दिक अभिनन्दन करता है। फलतः दृश्य भावमय हैं, भाव, भाषामय हैं। दूसरे शब्दोंमें भावोंके अनुरूप शब्द-शिल्प-कलाका अद्‌भुत निदर्शन हुआ है। भाव, भाषा एवं दृश्योंकी यह अद्‌भुत काव्य-शाला इतनी रमणीक एवं चित्रमय शिंजना-शक्तिसे इतनी विचित्र हो गयी है कि प्रतीत होता है कि यह लेखक नहीं है, जो मौर्य-साम्राज्यके बीते युगके अध्याय-पृष्ठोंको पलट रहा है; अपितु हमारी तत्कालीन ईस्वीका 'वृहत्तर मौर्य-भारत स्वयं अपने मुँहसे मौर्य साम्राज्यके ह्रासकी मार्मिक कथा सुना रहा है। अथवा मौर्य-साम्राज्य भगवान् बुद्धके सन्देशोंमें रमा हुआ आत्म-निरीक्षण करते हुए अपने 'निर्वाण' का राजद्वार दिखा रहा है !!

इस कृतिकी 'ताम्रपर्णी' (लंका) बड़ी सँवरकर आयी है। कल्पनाके हाथोंपड़कर इसका व्यक्तित्व ही बदल गया है। अरब सागर एवं बंगालकी खाड़ी इस नूतन अभिनयमें मंचपर आते हैं कि पहचानते ही नहीं बनता। इसका उद्धरण देखा जा सकता है :—

" × × अरब सागर—(सिन्धु-सागर) एवं बंगाल की खाड़ीके कलात्मक कोणपर हमारा पुरातन हिन्दमहासागर लहराता मानचित्रपर विस्तीर्ण है। हमारी भारतमाताके एक पग केरल व द्वितीयक चरण तमिलुनाडके वन्दनीय ये पाद-युग्म (जो तत्कालीन चेर, पाण्ड्यके सांस्कृतिक नामोंमें पगे थे) को बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागरके दो शाश्वत एवं सुन्दर-मय सलिल-सूत्रोंमें सजावटसे गाँठ देकर हिन्द महासागरके दिगन्तव्यापी जलराशि-से पखारता नाटकीय ढंगसे हिन्द सागरकी रत्नमणि-सा उभरा हुआ विराट नीली छतरी का जगमगाता नक्षत्र-सा टापू वर्त्तमान् श्रीलंकाका स्वतंत्र देश माँके पवित्र चरणोंके हरित मणिमें जड़े नील-वैदूर्य घण्टकी भ्रान्ति देता है। हरित

महासागर की लोल लहर-मालाएं इस वर्त्तमान् लंकाको चतुर्दिक संगीतों के अर्घ्य अर्पित करती हुई, भारतके चरण-कमलको जल-पुष्पोंसे सँवार जाती हैं। पूरा मानचित्र एक साथ मिलाकर देखनेसे दिव्य झाँकी दीखती है। कल्पना रुक जाती है, भावना बढ़ जाती है। नील गगन एवं नील सिन्धु!—एक शान्तिदूत तो एक विराट गंभीर ध्वनिके घोष-मय नाद-रूपका ईश्वरीय अव्यक्त अस्फुट गान। सह-चारिणी लहरोंके तन्मयतालकी अपनी तालमयताको गीतिकी धारामें डुबोकर तादात्म्यसे स्वतः गानमयी होती ध्वन्यात्मकता। दोनों एक दूसरेमें आत्मसात्! महान् ईश्वर-सा व्यापक भारतके समक्ष बाल-ध्रुव-सा वर्त्तमान् लंका तप-रत अतीतका कथानक बनने लगता है एवं प्रकृति-भंगिमाके इस भावार्थमें सागर-संगीत ध्रुव-से निकले पुण्य-श्लोक-की कविता-मयी ध्वनि ध्वनित करता है। दिशाएँ तपोवनका अभिधान ओढ़ लेती हैं। निर्गुण और साकारकोमथकर सम्पूर्ण दृश्य-सत्ता एक विचित्र भाव-तटपर हृदयको पहुँचा देती है।"—(द्वितीय परिच्छेद)

उपर्युक्त पंक्तियोंमें प्रकृतिके विराट पिण्ड जिस भव्यतासे जटित हैं वह अनुभवगम्य हैं, शब्दीय नहीं।

कृतिके विश्लेषणमें कृतिकारके व्यक्तिगत जीवन-दर्शन-को भी झाँक लेनेसे सिक्केका दूसरा पहलू भी स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि कृति एवं कृतिकार आधार एवं आधेयके बन्धनमें बँधे होते हैं। आर्थिक दृष्टिसे कृतिकार साहित्यकारका पर्यायवाची स्तर प्राप्त 'दरिद्र नारायण' वाली उपाधिमें पूर्णतः अभिषिक्त है, पर साहित्यकारका 'अहं' कभी भी अर्थ-दौर्बल्यसे पराभूत नहीं हुआ, जीवनके संकल्प अर्थशास्त्रके सिरपर चढ़ अन्ततः प्राप्त ही हुए, लक्ष्मीकी उपेक्षा सरस्वतीकी उपासनामें रंच भी व्यवधान डाल ही नहीं सकी जबकि व्यवधान डालनेमें पूर्णतः वह पग-पग-पर हर संभव तत्परता दिखाती रही। साहित्य-कारका परिवार भारतवर्षमें दैनंदिन आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए अभिशप्त परिवार होता है। आर्थिकतया सम्पन्न परिवेश उसके कागजी शाहशाहीकी मखौल उड़ाते हैं, पत्नी वस्त्र एवं पोषण-तत्त्वोंके अभाव-गृहमें बन्दिनी जीवन

काटती है और बच्चे ! डगमगाते भविष्यकी ओर लुढ़के पड़े रहते हैं . क्योंकि आधुनिक भौतिक प्रगतिवाद मुद्रापर निछावर है मुद्राकी पूँजी लगाए बिना शिक्षा नहीं प्राप्त हो सकती है तो और कौन-सा क्षेत्र बच सकता है ? जिसके बाकी रहते हैं सिरपर भूत-सा बड़बड़ाता है। जिसपर बाकी रहते हैं, वह ईश्वरकी तरह अज्ञेय एवं अदृश्य रहता है। ईश्वरकी प्राप्ति तो साधनोंसे हो भी सकती है, पर साहित्यकारको इन उपलब्धियोंके लिए कोई साधन नहीं है। साहित्यकारका जो आर्थिक व्यक्तित्व ऊपर आया है वह इस कृतिकारपर सम्पूर्ण अंशोंमें लागू है। सरकारी सम्मान भी मिलता है। तो प्रतिष्ठापरक, मुद्रादान निर्धन साहित्य-सेवियोंके लिए उपेक्षित रहता है। वे साहित्यकार भले हैं जो अध्यापन आदि में रहते हुए, साहित्य-सेवा करते हैं लक्ष्मी और सरस्वती दोनों---प्रसन्न। पर मात्र सरस्वती ! सेवा आजके युगमें हिमालयपर समाधि लगाकर बैठ, तपस्या करना ही है !

शिक्षा की दृष्टिसे यह कृतिकार स्वाध्यायी है, पितृ-पक्ष-से मिडिल स्कूल तक की शिक्षा मिली। छोटा-सा यह वर्ण-ज्ञान सँभालकर जिजीविषार्थ, भटकते-भटकते न जाने 'लेखक' बननेका संकल्प कहाँसे फूटा। ५० पृष्ठ प्रतिदिन पढ़, ४०-५० मील प्रतिदिन दौराकर पूरे परिवारका आर्थिक भरोसा बनना आदर्शका एक बहुत ऊँचा धरातल है। तीन वर्षके गहन अध्ययन व अपनी भारतीय संस्कृति, सभ्यता, शास्त्रीय-विधान, नियमित आहार-विहार एव अध्ययन व्यवसाय इत्यादिक आदतोंके मिश्रणने संस्कारोंका पूँजी प्रसार किया। जैसा कि आजकी शिक्षा विश्व-विद्यालयों या विद्यालयोंकी प्राचीरमें एव स्वायत्तशासी निकायोंमें बन्दी है, ऐसी बन्दी विदेशों दासता प्रधान पद्धतिपर आधृत नौकरशाही शिक्षासे यह लेखक परिस्थितिवश दूर रह कर विश्वस्तरीय उन्मुक्त सांसारिक विश्व विद्यालयका प्रखर अध्येता बना। व्याकरण, पिंगल-विधान, रस-सिद्धान्त एवं विभिन्नवाद आदिमें लेखक जीवन-संदर्भों तक सीमित रहकर सिद्धान्त सापेक्षतासे हट, निरपेक्ष प्रभाव आत्मसात् करता रहा। यही कारण हैं कि कृतियोंमें कलात्मक श्रृंगार कभी भी हिप्पीवादी य 'फैशनेबुल'

नहीं लगते, अपितु सांकृतिक एवं मार्मिक रहते हैं। व्यापक प्रकृतिके वात्सल्य पूर्ण अध्यापन ने लेखक को एक विचित्र ओजस्विततासे भर दिया है।

जहाँ तक पारिवारिक संस्कृतिका प्रश्न है–लेखकको मिली हैं––वैष्णव सम्प्रदायी सगुणोपासनामें श्लिष्ट तद्विषयक साँस्कृतिक रूढ़ियाँ। सभ्यता भी भारतीय प्रधान रही है, पर पाश्चात्यका घुलनभी लघुतम समापवर्त्य-सा हो जाता है। लेखकको उसके परिवारने मात्र संस्कृति ही नहीं दिया है, अपितु उसे विश्वासघात, भविष्यकी कुण्ठा, व्यंग्यशास्त्रके चुटीले प्रयोग, ईर्ष्या-द्वेष-जलन आदि भिन्न-भिन्न मानवीय वृत्तियोंका अध्ययन भी परिवारकी प्रारम्भिक पाठशालामें विधिवद् मिला। जिस परिवारका पालन पिताकी भाँति करके स्वयं डिग्रीधारी न बनकर परिवारके दूसरे सदस्यों को 'ग्रेजुएट' तक शिक्षितकर पारिवारिक स्तरको शिक्षा, अर्थ, सभ्यता एवं संस्कृतिके सर्वतोन्मुखी व्यक्तित्वको क्रान्तिकारी दिशा दी–उसी परिवारके एक सदस्य (लेखकके अनुज) ने अपना जगत आत्मकेन्द्रित स्वार्थ-सीमाओंमें बँटवारेके कुत्सित विक्षोभको संकीर्णतामें फैलाकर, जो धक्का दिया, इस विस्फोटसे लेखकका पूरा एक-दो दशक हिल उठा। कृतिकारकी बन्धु-विषयक महत्वाकांक्षिणी कल्पनाओं एवं मधुर भविष्यकी दीपमालाओंको ऐसा झञ्झावाती झोंका लगा कि वह बुझ ही गया। संस्कृति एवं सभ्यताके समस्त प्रकाश ह्रासके कुहासेमें जकड़ उठे। पर इस अन्तस्स्पन्दी कठोर तथ्यकी मारको वक्षस्थलपर वीरतापूर्वक कराहकर सहते हुए उसने परिवारके अवशिष्ट अन्य सदस्योंकी असहाय पलटनके साथ जीवन-संग्रामकी ओर मोर्चा खोल दिया। पर इन सन्दर्भोंने उसके सैद्धान्तिकता और निरपेक्ष गहन अनुभूतियोंको धूम्र-द्रष्टा ही न बना ज्योतिर्मय धरातलतक पहुँचा दिया। जीवनके ये विभिन्न संकेत कृतियोंमें गतिशील हो ही गए हैं। मानवीयता, एकता, कुतर्कोंसे हट सैद्धान्तिक गहराई, सत्यप्रियता निष्कपटता आदिने लेखकको एक सशक्त वाणी देकर कृतियोंको अधिक हृद्-देशी कर दिया है। भग्न-परिवारके अनेकधा (आर्थिक, साँस्कृतिक, शैक्षिक आदि-आदि) घावोंसे घायल होकर और अधिक अपराजित वीर-पुरुष-सा लेखक आश्चर्यजनक रूपमें साहित्य-सृजनके आयामपर आयाम पूर्ण

करता जा रहा है। जीवनके घाव भारतीय विचारवादी लेखकके प्रति सश्रद्धकर देते हैं।

यह कृति जिस युगको उघाड़ती है, वह युग भारतवर्षके सम्पूर्ण इतिहासमें एक मौलिक युग है। वोल्गासे जापान तक अशोक सम्मानित है। चीन, तिब्बत, भारत, लंका, वर्मा आदि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक शैलियोंकी अशोक-प्रभावी परम्पराएँ पीढ़ियोंको पार करती आज भी अक्षुण्ण हैं। भिन्न-भिन्न विचार-घटकोंको एकल ग्रन्थिमें बाँध सांस्कृतिक एकताका सफल सूत्रधार अशोक है। आज संयुक्तराष्ट्रसंघके शान्ति-प्रयासोंपर दृष्टि जब जाती है, तो अशोककी ध्वनि एक शाश्वत घोषणा-पत्र-सी सुनायी देती है—शाश्वत शान्तिकी ध्वनि। अपने युगके स्वतंत्र द्रविडियन देश या एशियाके यूनानी-शासक जापान, चीन और वर्मा पर्यन्त उसकी शान्ति-पताका लहराती है। अति शान्तिवादी होनेपर भी अशोकने अपना पाउडर सूखा रखा—विप्लवोंके शमनमें—जैसे तक्किला (तक्षशिला) के विद्रोहको सैन्य-शक्तिसे दबाया। अशोक वह प्रथम शासक है, जिसने प्रथम बार भारतवर्षके मानचित्र-को सभ्य संसारके पटलपर रखा और पाश्चात्य तत्वोंको विशालतासे आत्म-सात्‌कर लिया, जिसका मिश्रित रसायन भारतीय संस्कृतिके स्नायु-संस्थानको अब भी पुष्ट कर रहा है। इसमें भारतीय संस्कृति एवं कलापर पड़े हेलनिक प्रभावको परिगणित किया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीयता तथा विश्व-बन्धुत्वके महान् पुरोहितोंमें अशोक महानतम् है। अशोक यद्यपि मसीहाकी तीसरी शदी पूर्व भारतसे विदा लेता है, परन्तु वह आज भी हमारे साथ धार्मिक, सांस्कृति एवं कला आदिके मध्य जीवित-जागृति पुरुष सा अनुगमन एवं पुरोगमन कर रहा हैं। हम सबके जीवनों और प्राणोंसे भी अधिक प्रिय और सर्वोच्च सम्मानित राष्ट्र-ध्वजके मध्य चक्रमें वह आजभी लहरा रहा है। आज भी वह हमारे राष्ट्र-ध्वजके केन्द्रमें स्थित हमारी संस्कृति, सभ्यताका प्रतिनिधित्व कर रहा है। अशोक अपने सिंहपर आरूढ़ हमारी राजकीय मुहरके मध्य अपना मौलिक प्रभाव आजभी देकर हमारा सर्वोच्च सम्मान पा रहा है। शरद, ग्रीष्म, पावस झेलते

हुए, समय-चकसे गुजरते हुए, आज भी खड़े हुए, शिला-लेखों एवं स्तम्भ-लेखोंके मध्यसे बोलती ध्वनि आज भी सुनी जा सकती है। उस अशोककी ध्वनि जो विजेताकी धरतीसे चलकर महान् नीति-शास्त्रोके रूपमें जीवन जिया। राष्ट्र-पतिके सर्वोच्च आसनके शीर्षपर अंकित 'धर्म-चक्र प्रवर्त्तनाय' के रूपमें अशोक आज भी राष्ट्रके सर्वोच्च पीठपर पीठासीन है। राजनीति, धर्म, संस्कृतिको दिशा-बोधक मोड़ दे रहा है। भण्डारकर साहबका यह उपालम्भ—'इन कांसिक्वेंसेज् आफ द फारेन पालिसी आफ धर्म विजय इनागरेटेड बाई अशोक इण्डिया वाज् लास्ट टु नेशलिज्म एण्ड पोलिटिकल ग्रेटनेश'—अशोकपर हमें मान्य नहीं है। यह वैसा ही त्रुटिपूर्ण होगा, जैसा कि ६६२ के चीनी आक्रमणके समय पराजित भारतके पराभवके लिए गान्धीवाद या अहिन्सा या पंचशीलके सिद्धान्तके मस्तकपर दोष-थोपना। तत्कालीन समाचार पत्र, युद्ध-क्षेत्रकी समाचार बुलेटिनें, हमारे सैनिक, स्थलसेनाध्यक्ष-थापर एवं अनटोल्ड स्टोरी' आदिसे जो परिचित होगा, वह भारतके पराजयको दोषपूर्ण प्रतिरक्षा-व्यवस्थापर आधारित करेगा। जिस राष्ट्रवादको भण्डारकरजी चाहते हैं, वह विश्वबन्धुत्वके भारतीय आदर्शसे मेल नहीं करती। राष्ट्र वस्तुतः भूखण्ड नहीं है। वाग्विलास नहीं है और न है मानसिक संवेग। यह वह महाशक्ति है, जो राष्ट्रका निर्माण करनेवाली कोटि-कोटि जनताकी ज्ञान-विज्ञान, सामान्य चिन्तन-दर्शन, अभिलाशाओं, अपेक्षाओं, संस्कृति, कला एवं सभ्यताओंसे समन्वित व्यष्टिकी शक्तियोंका समष्टि रूप है, वह व्यक्तित्वोंकी जीवन्त समष्टि है। राष्ट्रीयता राजनीतिक चहल कदमी नहीं, वह एक धर्म है, एक सिद्धान्त है। अन्तर्राष्ट्रीयता यदि आकाश है, तो राष्ट्रीयता वह धरती है, जिसपर हमारे पैर आधार बनाते हैं। अशोकने राष्ट्रीयता एवं भारतीय राजनीतिकी महानताको कभी नहीं खोया। अपितु उसने शुद्ध भारतीय आत्माके राजनीति, धर्म एवं संस्कृतिके समवायका व्यक्तित्व विश्वके समक्ष रखा। अपने अतीत-का अभिमान, वर्त्तमान्की वेदना तथा भविष्यकी तीव्र कामना—जो राष्ट्रीयता-के स्कन्ध एवं शाखा-प्रशाखा हैं, से प्रेरित अशोक बौद्ध-धर्मका राजदूत बन

जाता है, तो इससे भारतकी राष्ट्रीयता या भारतीय राजनीतिकी महानतापर आँच नहीं लगती। यदि राम और कृष्णके हाथों राष्ट्रने राष्ट्रीयता एवं राजनीतिक मान्यताकी ज्योति विश्वके अँधेरे परिवेशमें जलाया, तो उन्हीं पद-चिह्नों पर चलकर भगवान् बुद्धके धर्म-ध्वजका दण्डधर अशोक राष्ट्रीयता एवं राजनीतिक आयामोंके प्रति अपने निर्बल उत्तराधिकारियोंके लिए अन्याय नहीं किया। इसने भी रोमकी तरह पाटलिपुत्रको विश्व-शक्तिकी अनूठी सांस्कृतिक राजधानीके रूपमें अपने युगमें ला खड़ा किया।

अशोकके स्तूपोंके आठ भेद किये जा सकते हैं। लिपि सामान्यत: ब्राह्मी है, पर दो शिला लेखोंमें यह खरोष्ठी हो जाती है। भाषा साहित्यिक संस्कृत एवं पाली है। प्रथम वर्गके शिला-लेख उसके जीवनसे संबंधित हैं। दूसरे वर्ग-के शिला-लेख उसकी धार्मिक समीक्षाओंसे सम्बन्धित हैं इनमें भ्रबु-लेख लिया जा सकता है। तृतीय श्रेणीके वे लेख हैं, जिनकी संख्या १४ है और जो उसके शासनके सिद्धान्तों एवं नीतियोंसे बर्त्तते हैं। चौथा वर्ग दो कलिंग शिलालेखोंको लेकर बनता है जो उसके कलिंग-युद्धके बाद अपनाए गये शासन पद्धति पर प्रकाश डालते हैं। पाँचवें श्रेणीके लेख बारबर हि‍ल्के गुफा लेख हैं छठाँ प्रकार तराई-स्तम्भ लेखो का है, जो उसके बुद्धदर्शन-विषयक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालते हैं। सातवें वर्गके लेख सात स्तम्भ लेखोंके हैं, जो सभी, सभी शिला-लेखोंकी विषय-सूची हैं। अन्तिम श्रेणीमें चार लघु स्तम्भ लेख हैं।

लेखोंकी शिल्प-कलासे लगता है कि उस युगका शिल्प उच्चतम् शिखरपर था। स्मिथके अनुसार—'अशोक्'स इन्सक्रिप्शन्स आर मानुमेण्ट्स आफ ग्रेट इञ्जिनियरिंग स्किल।' यही नहीं, डा॰ कौशाम्बी अशोकन कलाके उद्गम् पर अपना निर्णय देते हैं 'अशोक्'स स्कलचर वाज् डिफनेटिली एडाप्टेड फ्राम इण्डियन वुड-वर्क। दिस इज़ टु से द आरचीटिकल्चरल ग्रेटनेस आफ अशोक्'स मानुमेण्ट्स आर ए क्लमुनेशन आफ द आरटिस्टिक ट्रेडीशन्स आफ इण्डिया।'

अशोकके लेख एक उल्लेखनीय समानता पर्सियन शासकोंके 'पेर्सेपोलिस से रखते हैं। शिला-लेखोंका विचार पर्सियाके सम्राट डारिएसके लेखोंसे अशोकको मिला होगा। यद्यपि इस तथ्यके ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं मिलते कि उसके लेख पर्सियन खण्ड-तत्वोंसे अंकित हैं। लेखोंके शब्दोंकी समानतासे लगता है कि वह ईरानी स्तम्भ-लेखोंसे सम्भवतः प्रभावित था। सम्राट डारिएस जहाँ कहता है--'दस सेथ द किंग डारिएस' वहाँ अशोक लिखता है, 'देवानां पिय लाजा पिय दसी अशोक का कहना है।

अशोकके लेख स्थानीय लिपियोंमें भी हैं। तक्षशिला--पेशावरके आस-पासके लेख खरोष्ठी लिपिमें हैं, जो भाषा विज्ञानकी दृष्टिसे पर्सियाकी लिपि अरामिक कुलसे तद्भूत हैं। कान्धार-क्षेत्रमें इसी प्रकार ग्रीक एवं अरामिक दोनोंका प्रधान प्रभाव मिलता है। मध्य भारतके लेख ब्राह्मीमें हैं। इनकी कलात्मकता महत्वपूर्ण है। इन लेखोंकी पालिश भी समीक्षकोंको आकर्षित करती है।

शिला-लेखोंकी उपर्युक्त जानकारी, जो उसकी आत्म-कथा-ग्रन्थसे हैं प्रामाणिक रूपमें लेनेके पश्चात् यह धारणा बन जाती है कि अशोक विशुद्ध रूपमें बौद्ध नहीं था। के० एम० पणिक्करने स्पष्टतः लिख दिया है--'अशोक वाज ए बुद्धिष्ट इन द सेम वे ऐज़ हर्ष वाज़ ए बुद्धिष्ट आर कुमारपाल वाज़ ए जैन।' अशोक बौद्ध धर्मका सन्देश-नायक तो है, पर मूल रूपसे बौद्ध-धर्म हिन्दू-धर्मसे मात्र उतनाही भिन्न है, जितना शैव सम्प्रदाय, वैष्णव सम्प्रदायसे भिन्न है। राव्'स आई० ए० एस० स्टडी सर्किल, पांचवां एडीशन १९७२ ने इस पर मत इस प्रकार दिया है--हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म दोनोंही सम्प्रदाय-जन्य भिन्नता रखते हैं। बुद्ध भगवान् स्वयं एक हिन्दू-सन्त-सा जीवन अपनाए, हां उनके अनुयायी महान् आर्य परम्पराओंके द्वितीयक सम्प्रदाय प्रतीकोंको अनुशासित किए।'

अशोक बौद्ध था--इसके बहुत प्रमाण हैं, पर वह कभी देव तथा ब्राह्मणोंका विरोधी नहीं बना। उसने आजीवकों और ब्राह्मणोंको समान

सुविधा दी। यही नहीं, उसका ध्येय भी 'निर्वाण' नहीं 'स्वर्ग' (हिन्दू धर्म का चरम लक्ष्य) था। सरणियोंकी दृष्टिसे वह बौद्ध-धर्मके दार्शनिक पक्षोंकी अपेक्षा नीति-शास्त्री पक्षोंमें अधिक गया, विचार एवं चिन्तनकी अपेक्षा व्यावहारिक बौद्ध-धर्मका अधिक पक्षधर हुआ।

इस प्रकार पूरी कृतिका विवरणात्मक अनुशीलन कृतिकारके सूक्ष्म जीवन-दर्शी-स्पन्दन एवं कृतिकी वर्ण्य-वस्तुका त्रुट-रहित यथार्थपरक ऐतिहासिक ध्वंसावशेषके विश्लेषणसे यह स्पष्टतः कहा जायगा कि लेखकने मात्र एक औपन्यासिक कथाही नहीं लिख दिया है। अपितु गहन अध्ययन एवं मननके उपरान्त एक व्यावर्तक लेखनी उठाया है। लेखककी यह व्यावर्तकता कुछ मौलिक तथ्योंको भी उद्घाटित कर देती है, जो नवीन कहे जा सकते हैं। पर यह कृति नीरस इतिहास नहीं, किन्तु ऐतिहासिक उपन्यासका रसवन्त प्रवाह है, जिसमें कल्पना एवं हृदयके दो अभिराम तट भी हैं। भाव-विधा, चरित्र-विन्यास, इत्तवृत्त-निरूपण सबमें हृद्-तन्त्री सधी है, बड़े-बड़े एवं लघुतम बिम्ब आते गये हैं। सभी तत्वोंसे यह कृति उत्कृष्ट है--'जड़-चेतन गुन दोषमय' के अधीन रहते हुए।

—हरिहर प्रसाद चतुर्वेदी राजीव
हिन्दी-साहित्य-सृजन-परिषद्
जौनपुर

अतीतके उमड़ते उच्छ्वास

ईसा-पूर्व २३६ सदीका मैं भारतवर्ष हूँ। मौर्य-साम्राज्यका वृहत्तर भारत-वर्ष ! कुछ दिन पूर्व मैं 'धम्म-विवद्धन', भिक्खु-शासक अशोक बौद्धका विशाल भारतबर्ष था; पर उसके निव्वानके अनन्तर मेरे जीवनका भाग्य-सूत्र अशोक मौर्यके हाथसे निकलकर अभी किसीके भी हाथ नहीं लग पाया है। सत्ता संघर्ष छिड़ा है, पर संचालन सूत्र कौन लेगा, स्पष्टतः मैं नहीं कह पा रहा हूँ।

एक ओर ईस्वीपूर्व २२० से २३२ के समानान्तर फैले वर्षोंमें 'बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, शघं शरणं गच्छामि' के राजघोषके महोच्चारमें विचरनेवाले इतिहासवेत्ता मेरे 'मौर्य-पर्व' की गवेषणात्मक मीमांसा अपनी-अपनी मौलिक उद्भावनाओंसे सजाकर इतिहासको समर्पित कर देंगे, तो दूसरी ओर भविष्यके जिज्ञासु शोध-मनीषी शिलालेखों एवं स्तूपोंके खण्डहरोंमें जाकर मेरे इस मौर्य-युगकी, इसके उत्थानकी, इसके पतनकी, अपनी व्यावर्त्तक अध्ययन दृष्टि प्रस्तुत करेंगे। पर, मौर्य-साम्राज्यके ध्वंसका मैं, वृहत्तर कहलाने वाला भारतवर्ष, भी प्रत्यक्षदर्शी एक मौन साक्ष्य रहा हूँ। हाँ कहीं-कहीं स्तूपों एवं शिलालेखोंके साक्ष्य मेरी मान्यताके विरुद्ध भी हैं, पर इस तात्विक विषमतासे मेरी एतद्विषयक दर्शन-पद्धतिमें संशोधन नहीं हुआ। मेरी मान्यता इतिहासनिष्ठ मान्यतासे सामंजस्य न स्थापित कर पावे, यह अलग बात है; पर शुद्ध तथ्योंके निदर्शनमें कैसा वर्गविधान ! अनादि युगसे (मानव इतिहासके पाषाण-युगके आदि-कालसे होता हुआ ईसा पूर्वकी २३६वीं सदीकी इन अर्वाचीन सीमाओं तक) छोटेसे छोटे एवं बड़ेसे बड़े साम्राज्योंका उत्थान-पतन मैंने निर्लिप्त भावसे देखा है। शान्ति-क्रान्तिके परिवर्त्तयोंको झेला है, वह भी निर्लिप्त भावसे। पर, आज निर्लिप्त मौनके निबन्ध ढीले हो चले-से हैं। न जाने क्यों सत्ता-संघर्षके कारण राजनैतिक अस्थिरताके इस आयाममें बौद्ध परिव्राजकका साम्राज्य मेरे

स्मृति-खण्डमें दौड़ रहा है। इस पृष्ठ-भूमिमें रानी तिष्यरक्षिता विशेष संस्मरणीय है। मौर्योत्तर-कालकी साम्राज्ञी तिष्यरक्षिता, अशोककी अन्तिम राज-महिषी तिष्यरक्षिता, और मेरी भाग्य-परिवर्त्तिका— तिष्यरक्षिता ! पर, इस तिष्य-रक्षिता-प्रकरणके उद्घाटनके पूर्व मैं वरीयत: अशोकके विभिन्न व्यक्तित्व खण्डों का वस्तुगत सम्यक् सिंहावलोकन कर लेना चाहता हूं।

लिच्छिवि, शाक्य, मल्ल, ज्ञात्रिक (नाय) आदिके पाश्चिक युगा-रम्भमें मेरे विशाल खण्डपर ईसापूर्व ३२३ से २९६ तक चन्द्रगुप्त (जिसे यूनानी लेखकोंने 'सैन्द्रोकोतस' कहा है) ने राज्य किया और २९६ ईसा पूर्वसे २७४ ईसा पूर्व तक उसके पुत्र बिन्दुसारने २२ वर्ष तक राज्य किया। सम्राट बिन्दुसारने अशोकको १८ वर्षकी आयुमें अवन्ति राष्ट्रका राजा नियुक्त किया था। अवन्तिकी राजधानी उज्जयिनी थी। वहाँ अशोकने विदिशाकी शाक्य-राजवंशोद्भवा महादेवीसे विवाह किया, जिससे महेन्द्र नामक पुत्र एवं संघमित्रा नामक पुत्रीका जन्म हुआ। जहाँ तक स्मृति दौड़ाता हूँ, तक्षशिलाकी प्रान्तीय राजधानीके लोगोंने बिन्दुसारके विरुद्ध विद्रोह किया; जिसके दमनमें उसने अपने पुत्र सुसीमको भेजा और पुन: उसी कायसम्पादनमें अशोकको प्रेषित किया इसी अवधिमें उसकी मृत्यु हो गयी और अपने आमात्य राधागुप्तकी सहायतासे अशोकने अपने अन्य भाइयोंको मारकर राजगद्दीपर अधिकार किया। अपने भाई-बन्धुको मरवाकर उसने 'चण्डाशोक' की उपाधि भी प्राप्त की। पर शिलालेखोंमें इस कटु अध्यायका बहिसाक्ष्य अशोकने नहीं छोड़ा। अपितु शिलालेखोंके अनुसार तो इन्होंने प्रमाणित करनेका सफल प्रयास किया कि इनके भाइयों एवं बहनोंके साथ सम्बन्ध बड़े अच्छे थे, जिन्हें उन्होंने पाटलिपुत्र आदि राजधानियोंमें नियुक्त किया था। अशोकने यद्यपि अपने इस प्रयासमें सफल होनेके लिये अपने शिलालेखोंमें यहाँ तक खुदवा दिया है कि अपने सम्बन्धियोंके साथ सम्बन्ध (समप्रतिपत्ति) रखना चाहिए। पर, यदि यह मैं कह लूं कि यह सिद्ध करना तथ्यको मरोड़ना है, तो अत्युक्तिसे दूर ही रहूंगा। क्योंकि अन्तर्साक्ष्यमें अशोकके राज्यारोहण एवं राज्याभिषेकमें ४ वर्षका

अन्तर है। अतः यह सिद्ध होगा कि अशोकको उत्तराधिकारके लिए रक्तकी होली खेलनी पड़ी थी। बन्धु-मेध करना पड़ा था।

इस प्रकार अशोक २७४ ई० पू० गद्दीपर आये, पर इनका राज्याभिषेक ४ वर्ष बाद २७० ई० पू० में निष्पन्न हुआ। महावंशके अनुसार इनके अभिषेक के ६ वर्ष बाद अर्थात् २६४ ई पू० में इनका ज्येष्ठ पुत्र महेंद्र बौद्ध-धर्ममें २० वर्षकी आयुमें दीक्षित हुआ। सम्भवतः महेंद्रका जन्म २८४ ई० पू० में हुआ था। महेंद्रके जन्म-वर्षको केन्द्र मानकर अनुमान करनेपर अशोकका जन्म भी ३०४ ई० पू० के आस-पास धारित किया जा सकता है।

अशोकको उनके पितामह द्वारा अर्जित विशाल साम्राज्य उत्तराधिकारमें मिला था। सामान्यतः यह सीमा फारसकी सीमासे सुदूर दक्षिण तक और ताम्रपर्णी (लंका) तक विस्तारित थी। अशोकने अपने शिला-लेखोंमें भी अपनी राज्य सीमाओंको उत्कंटित करवाया है। दक्षिणमें चोल, पाण्ड्य, सतियपुत्त, केरलपुत्र तत्पाश्चिक ताम्रपर्णी (लंका) उनके पार्श्ववर्त्ती (पड़ोसी) थे। उत्तरमें सीरियाका अंतियक योनराजा (अंतिओकस द्वितीय थियोस २६१—२४६ ई० पू०) उनका पड़ोसी 'अन्त' कहा गया है।

मौर्य साम्राज्यके जिस बीते अध्यायका मैं पुनरावलोकन कर रहा हूँ, उसका प्रशासनिक मुखिया 'सम्राट' होता था। सम्राटकी साहाय्यी शक्तियाँ क्रमशः 'उपराजा एवं तदनन्तर 'युवराज' में निगमित थीं। प्रान्तोंके लिए नियुक्त 'कुमार' राजाके प्रति उत्तरदायी थे। इनसे सम्बन्धित 'राजूक या 'प्रादेशिक (राज्यपाल) और 'परिषद् (समिति) होते थे। उच्चाधिकारी को 'महामात्र' कहा जाता था! प्रधान मंत्री 'अग्रामात्य' तथा अन्य मंत्री 'महामात्र' कहाते थे। 'महामात्र' अपने-अपने विभोगोंके अध्यक्ष, पदेन, होते थे। 'धर्ममहामात्र' नैतिक आचारके मंत्री होते थे। तक्षशिला, उज्जैनी, तोसली[1] और सुवर्णगिरि[2] नामक प्रांतीय राजधानियी में 'कुमार' नियुक्त किए जाते रहे।

१—उड़ीसा। २—मैसूर

'राजाके वैयक्तिक सचिव 'प्रतिवेदक' कहलाते थे। 'प्रतिवेदक' राजा एवं जनसामान्यके मध्य एक ऐसी कड़ी थी, जिससे दोनों पक्षकार एक दूसरेके निकट आते थे। हर समय एवं हर स्थानपर प्रतिवेदक जन-कष्टको 'प्रतिवेदित किया करता था। 'राजूक' एक लक्ष प्राणियों पर शांति, सुरक्षा एवं न्यायका शासन करते थे।

महामात्र 'ग्रमावास' (ग्रामवासियोंके घर) 'सेतु (सार्वजनिक कार्य) और 'शाला' (भवन, तड़ागादिके) निरीक्षणार्थ यात्रायें किया करते थे। उपराजाओं को ५ वर्षों में एवं प्रादेशिक' को ३ वर्षों में अपनी यात्रायें पूरी करनी अनिवार्य थीं। इस आशयकी विज्ञप्ति अशोकने भी शिलालेख–१ एवं ३ में उत्कंटित कराया है।

'पुरुष पद राजपत्रित कर्मचारीके लिए होते थे, जिनके ३ वर्ग थे—उच्च, मध्यम एवं अधम। निम्न श्रेणी के कर्मकारों को 'युक्त' कहते थे। ऐसा आशय शिलालेख १ में भी खुदाया गया है।

अशोक-स्मारिकाके इस प्रवाह में मुझे वे धर्म यात्रायेंभी स्मरण हो आती हैं, जो राजाओंकी ग्रामवासियोंसे सम्पर्क बनानेके लिए एक भाँतिकी तीर्थ-यात्रायें-सी होती थीं।[1] इन प्रासंगिक यात्राओं में 'जानपदस्य' जनस्य दर्शनम्, अर्थात् धर्मोपदेश करता हुआ, राजा ग्राम-प्रबन्धका निरीक्षण वृढे-यतियोंको दान आदि अर्पित करता था। अशोकको सम्बोधि[2] लुम्बिनी[1] एवं बुद्ध कोनाकमन (कनकमुनि) की यात्रायें स्मरणीय हैं।

धर्ममहामात्र' के अधीन 'नैतिक मंत्रालय' होता था, जिसका कार्य, वर्ग-विधान, श्रेणी-बद्धता, साम्प्रदायिकता एवं स्तरविन्याससे ऊपर उठकर सार्व-जनिक नैतिक मूल्योंको उन्नत करना था।

सार्वजनिक उपयोगिताके क्षेत्रमें अशोकने गमनागमनको अति सरल बनानेका चिरस्मरणीय कार्य किया। सड़कोंके दोनों ओर वृक्षारोपण, प्रति द्विचतुर्थांश योजन (अर्धकोश या एक कोश) पर कुएँ एवं सराय बनवाया। पशु एवं मनुष्य–

१—शिलालेख–८, २—जहाँ बुद्ध ज्ञान पाये।

दोनोंके ही लिए चिकित्सालय खुलवाया। चिकित्सकों, आदिका अच्छा प्रबन्ध किया।[४] अशोक की दूसरी पत्नी चारुवाकी (कारुवाकी) ने भिक्षुक-आराम-विहार, आम्र-बन आदि बनवाये।[५]

पश्चिमी देशोंको भी अशोकने अपनी योजनाओंमें लाभान्वित किया। १३वें शिलालेखमें उसने जैसाकि खुदवाया भी है—१–अंतियोक (सीरियाई अंति-ओकस द्वितीय थियोस—२६१-२४६ ई० पू० १—तुरमय (मिश्रका टोलेमी द्वितीय—२८१-२४७ ई० पू) ३—अंतकिनि मकदूनियाई एण्टीगोनस गोनेतस २७८-२३९ ई०पू) ४—यक (सिरीनका मगस—३००-२५८ई० पू० और ५—अलिक सुन्दरो (एपटिसका एलेक्जेंडर २७२-२५८ ई० पू०) नामक ५ राजाओंके यहाँ दुःख निवारणार्थ चिकित्सक भेजा।

अशोक का धर्म-विजय स्वयंमें एक धार्मिक विप्लव था, जिसमें हिंसा–घृणा-रहित प्रेम वीरताका मार्मिक स्पन्दन निहित था। सैनिक अभियान नहीं, नैतिक अभियान की प्रेरणा जगा-जगा कर जन-जनके स्वाधीन हृदय-देशों को विजित करनेका अद्भुत प्रयास था। रण-घोष नहीं, धम घोष की प्राण वायु से स्वस्थ्य मानव मन 'तरहा (तृष्णा) का हनन कर 'निव्वान' के लिए प्रयत्नीभूत हो, साधना में अग्रसारित था। वस्तुतः सम्राट शान्तिपूर्ण सह अस्तित्वका आदि प्रवर्त्तक कहा जा सकता है।

कलिंगके विलीनीकरणके अनन्तर करुणाकी अजस्र धारा फूटनेकी परिणतियोंसे अशोकने ऐतिहासिक परिवर्त्यका उपर्युक्त धर्म विजयका अभिनव अध्याय खोला। राजकीय भोजनालयमें पशु-बध निसिद्ध किया। मनोरंजनार्थ प्रचलित 'समाज'—प्रथा निषिद्ध कर दी गयी। (जिसमें मनोरंजनार्थ नृत्य संगीतके मध्य पशुओं-पक्षियोंका खूनी खेल होता था एवं उनका वध किया जाता था।) इस स्थानपर मनोरंजनार्थ धार्मिक प्रदर्शनोंकी व्यवस्था दी। शिला लेखोंमें अनुसूचित पशुओंका वध दण्डनीय था।

३ - जहाँ तथागत जन्म लिए, ४–शिलालेख-२, ५— रानीका शि०।

विधानकी तराजूमें सबको समान अधिकार मिले थे। सबको न्याय और दण्डकी समताका अधिकार भी दिया गया।

अशोकका धार्मिक परीक्षण करनेपर उन्हें बौद्ध कहा जा सकता है। यास्कीके शिलालेखमें उन्होंने स्वयंको बौद्ध शाक्य माना है। साँची, सारनाथ और कौशाम्बीके शिला लेखोंमें वे संघैक्यके प्रतिपादक रूपमें संघभेदक श्रमणों को संघ आचार संहिताके उपबन्धोंके अधीन बहिष्कृत करनेकी चेतावनी भी उत्कंटित करवाये हैं।

पाटलिपुत्र में मोग्गलिपुत्र तिस्सके अध्यक्षकत्वमें अशोकके कालमें आयोजित तृतीय बौद्ध संगीतिको मैं, 'बृहतर भारत' विस्मृत नहीं कर सकता। इस संगीतिकामें त्रिपिटकोंके पारायणार्थ कथावत्थु प्रारूपितकी गयी। इसी आयोजनमें एक सहस्र स्थविरोंकी एक विशिष्ट संगीति मनोनीतकी गयी। तदनन्तर उक्त बौद्ध संगीतिने मेरे पूर्ण बृहत्तर स्तरपर एवं विदेशोंमें बौद्ध सिद्धांतोके प्रसारार्थ प्रचारक मण्डल भेजे। इनमें मेरे काश्मीरी बाजू, गान्धार, हिमालय, यवन किंवा बनवासीमें, सुवर्ण भूमि (दक्षिणी, वर्मा, सुमात्रा) सहित मलयप्रायद्वीपपर्यन्त प्रसार अभियान राजकीय स्तरपर किए गये। हिमालयमें मज्झिम, अपरान्तकमें धर्मरक्षित (यवन) और ताम्रपर्णीमें महेंद्र प्रेषित किए गये। अपरान्तक प्रदेशोंमें योन, कम्बोज, राष्ट्रिक, पितनिक आदि रहते थे।

पलाश्रीनी, सुवर्ण सिकता आदि नदियोंके जल अवरुद्धकर इन्होंने बाँध बनवाकर दुर्जयन्त पर्वतपर सिंचाईके लिए जलसंचयन करके 'प्रणालियों' द्वारा खेत खेत पानी पहुँचाया। यह झील सौराष्ट्र स्थित थी। यहाँ अशोकका राज्यपाल यवन राजा तुषाष्प शासन करता था, जो विदेशी था।

शिलाभिलेखोंमें अशोकने अपनी दूसरी पत्नी चारुवाकी (जो राजकुमार तीवरकी माँ थीं और पौत्र दशरथको उत्कंटित करवाया है। अन्य दृष्टियोंसे जहाँ तक जानकारी है, उनके निम्न सम्बन्धी थे—उनकी प्रथम पत्नी महादेवी का पुत्र महेन्द्र, पुत्री संघमित्रा, द्वितीय पत्नी पद्मावतीका पुत्र कुणाल, अन्य पुत्र जलौक पौत्र–सम्प्रति और दो अन्य पत्नियाँ–असंघमित्रा एवं तिष्यरक्षिता।

उपर्युक्त घटनाओं एवं विवरणोंको गिना देने मात्रसे मेरे उच्छ्वास बन्द नहीं हो पा रहे हैं। पूरा युग नाच रहा है। सन्ध्यामें एवं प्रातः उदित-अस्त हो रहे हैं। युग-पुरुष, जन-जीवन, उद्योग, कला, संस्कृति, धर्म, राजनीति, शिक्षा, सभ्यता—जीवनके ये विभिन्न घटक दृष्टिके कोणपर दौड़ रहे हैं। किसी कलाकारकी कल्पना यदि मेरे उभड़ते इन निश्श्वासोंको अपने भावकल्पनाके मंजु-घोषपर बजाए तो ललित कलाकी अनेक विधायें दौड़ पड़ेंगी—आत्मलीन करने हेतु।

पृष्ठ-भूमिके दृश्य-दर्शनके पश्चात् अब मैं कुछ फैलकर स्थिरताके साथ अशोक-युगके उत्तरकालका रेखा-चित्र खींच रहा हूँ, जो बड़ा करुण है, भावमय है एवं—'दुक्खं दुक्ख समुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्कमं।

अरियञ्चट्ठङ्गिकं मग्गं, दुक्खूपसम गामिनं ॥' का विशद व्यावहारिक अनुवाद है।

—बृहत्तर भारत
(सन् ई० पू० २३६ सदी)

रानी निश्चयरर्लिना

१

'हाँ साम्राज्ञी ! मैं ही हूँ।' आमात्यश्रेष्ठ राधागुप्त बोले।

'आमात्यश्रेष्ठ ! आप आए ? मेरी क्या सहायता कर सकेंगे ?' चिन्तातुरा निराशा प्रकट करते हुए अग्रमहिषी असन्धिमित्राने रोग-शय्यापर ही पड़े-पड़े अस्फुट वाणीमें कहा।

आमात्यश्रेष्ठको अपने समक्ष उपस्थित देख, अग्रमहिषीने उठकर बैठनेका प्रयत्न किया, किन्तु वे उठ न सकीं। उनका शरीर सूख गया था, आकृति पीतवर्ण हो गयी थी, दिन-प्रतिदिन वे अस्वस्थ होती जा रही थीं। राज्यवैद्योंने स्वस्थ होनेमें बड़ी निराशा प्रकटकी थी। उनकी अवस्था क्षण-क्षण प्रतिदिन खराब होती जा रही थी। उनके कृश और शिथिल शरीरको सँभालते हुए आमात्यश्रेष्ठ बड़े दुःखी हुए। मौन, भंग करते हुए, आमात्यश्रेष्ठ बड़ी विनम्र वाणीमें बोले—'धीरज धरें अग्रमहिषी ! आपके स्वास्थ्यमें शीघ्र ही सुधार हो जायगा।'

'आमात्यश्रेष्ठ ! अब धीरजसे क्या होगा ? अब जीवनशक्तिका ह्रास हो चुका है, अब सब व्यर्थ है।' कहते हुए अग्रमहिषीने बड़े कष्टका अनुभव किया।

महामात्यने कहा -'अधिक बोलनेका प्रयत्न न करें देवि ! भिषग्शिरोमणि वैद्यने मना किया है।'

'इतने दिनों तक चुप रहनेसे ही आज मुझे अपने प्राणोंसे हाथ धोने पड़ रहे हैं, महामात्य ! चिन्तामें गल-गलकर भी मैंने आजतक कभी मुँह नहीं खोला। आपका सम्बन्ध इस साम्राज्यसे है और इसके संचालनमें आपका महत्वपूर्ण स्थान है, इसलिए अब जीवनके अन्तिम

क्षणोंमें ही सही, अपनी व्यथाका रहस्य बता देना आवश्यक समझती हूँ। इस साम्राज्यका अनिष्ट न हो, इसलिए आपको मेरी व्यथाका और मेरे मरणका कारण जान लेना आवश्यक है।' इधर-उधर दृष्टि दौड़ाकर अग्रमहिषीने परिचारिकाओंकी ओर देखा और वैद्यप्रवरकी ओर भी। वे पुन: बोलीं—

'एकान्त चाहती हूँ, महामात्य ! एकान्त।'

परिचारिकाएँ और वैद्यजी कक्षसे बाहर चले गए।

विस्फारित नेत्रोंसे अग्रमहिषीने पुन: कक्ष देखा। वहाँ अकेले ही महामात्य मौन बैठे थे। साम्राज्ञी टूटते स्वरमें कहकर सुस्ता रही थीं।

हाथ जोड़कर अभिवादन करते हुए आमात्यश्रेष्ठने बड़ी विनम्र वाणीमें कहा 'आपको क्या कष्ट है अग्रमहिषी ? अवश्य ही श्रेष्ठ वैद्योंने आपके रोगका ठीक-ठीक निदान करनेमें सफलता नहीं प्राप्त की है। सर हिलाते हुए थोड़ा रुककर महामात्य पुन: बोले—'यदि मानसिक कोई गुप्त वेदना न रही होती, तो अवश्य ही अब तक आप स्वस्थ हो गयी होतीं।'

'इसीलिए आपको बुलाया गया है। आपसे सब कुछ कह देना चाहती हूँ महामात्य ! सब कुछ। साम्राज्यका समग्र भार आपपर है, आप महामात्य हैं। मेरी सारी व्यथाका रहस्य सुनें। मेरी मृत्युके पश्चात् आप मेरी बातोंको ध्यानमें रखें, साम्राज्यका जिससे अहित न हो।' धीरे-धीरे सुस्ता-सुस्ताकर अग्रमहिषी असन्धिमित्राने कहा।

'मैं प्रतीक्षाकर रहा हूँ, आपके आदेशका साम्राज्ञी ! मैं बड़ा उत्सुक होकर आज्ञा सुननेके लिये तत्पर हूँ महारानी !' महामात्यने सम्मान-प्रदर्शित करते हुए कहा।

'आप जानते होंगे, काफी समयमें मेरा स्वास्थ्य गिरते-गिरते इस

अवस्था तक पहुंचा है ! क्या इसका रहस्य बता सकते हैं कि ऐसा क्यों हुआ ?' साम्राज्ञीने कहा।

'हाँ, काफी समयसे श्रीमतीजीका स्वास्थ्य गिरता आ रहा है, मैं यह तो देख ही रही हूं, किन्तु कारण नहीं जानता।'

'ओह ! क्या मेरे चिन्तामें घुल-घुलकर मिटनेका कारण नहीं जानते ? और नहीं जानते आप मेरे सुहागके लुटनेकी करुण कथा ! ओह ! मेरे मानसिक सन्तापका आपको पता नहीं।' गम्भीर वाणीमें बड़ी शिथिलताका अनुभव करते हुए अग्रमहिषीने कहा।

आँखें मस्तकपर चढ़ाते हुए, महामात्यने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'देवि ! आपकी मानसिक अशान्तिका रहस्य सुननेकी मेरी उत्सुकता बढ़ती जा रही है। मैं अवश्य सुनना चाहता हूँ वह कथा; जिससे आपकी दशा शोचनीय हो गयी है।'

'तो सुनो आमात्यश्रेष्ठ ! सुनो। मेरे मानसिक सन्तापका कारण है—प्रियदर्शी* सम्राट्का युवती तिष्यरक्षितासे अनुचित सम्बन्ध।'

महामात्य स्तब्ध रह गए। क्षणभर मौन रहकर उन्होंने कहा—'देवि, ऐसा गर्हित कार्य प्रियदर्शी सम्राट नहीं कर सकते। क्या आप स्वस्थ चित्तसे ऐसा कह रही हैं ? मुझे तो जान पड़ता है कि आपको भ्रम हो गया है।'

* प्रियदर्शी ('पियदसी') सम्राट अशोकका नाम था। देखिए 'बौद्ध-धर्म' पुस्तक (पृ० ८३) श्री गुलाबराय एम० ए० कृत। उन्हें 'देवानां पियदशी लाजा कहा गया है, जिसका तात्पर्य (शाब्दिक) अर्द्ध पशुवत्, आकृति कठोर मूढ़ होता है। सम्राट अशोक कुरूप थे। उनकी आकृति कठोर तथा भयानक थी। इसीलिए लोग इन्हें देवानांपिय कहते थे। दे० सूर्यकुमार वर्म्मा-कृत 'अशोकका जीवन चरित', पृष्ठ—१०।

'भ्रम नहीं आमात्यश्रेष्ठ ! मैंने भी यही सोचा था कि सहसा इस बातपर कोई विश्वास नहीं करेगा। एक तो सम्राट वृद्ध हैं, दूसरे उनकी उज्वल कीर्ति है, भला उनके इस घृणित कार्यपर कौन विश्वास कर सकता है ?' ऐसा कह थकानका अनुभव करती हुई, दीवालमें दृष्टि गड़ाए साम्राज्ञी सुस्ताने लगीं।

मौन होकर उनकी ओर महामात्य देखते रहे।

साहस एकत्र कर अग्रमहिषी बोली—'आमात्यश्रेष्ठ ! सब कुछ मैंने अपने नेत्रोंसे देखा था। मेरे नेत्र मुझे धोखा नहीं दे सकते। यह भ्रमकी बात नहीं, घटना मेरी आँखोंके सामनेकी है। तिष्यरक्षिताके भी संबंधमें मैंने गुप्त ढंगसे राजकुमारी अनुलासे जो अतिथि-शालामें रुकी बौद्ध-दर्शनका अध्ययन कर रही है, पूरी जानकारी ले लिया है। इसके माता-पिता परिवारका पता नहीं है। ताम्रपर्णीमें परिचारिका बनकर उन्नति करके परिचारिका सेट्ठी हुई और महाराज तिष्यकी जीवन-रक्षा करनेसे 'तिष्यरक्षिता' पद पायी। आपके सम्राट बौद्धभिक्षु उस अज्ञात कुल-शील युवतीसे यौवनकी भिक्षा मांगते हैं। उनके पैरोंपर पूरा साम्राज्य लोटता है, वे एक पुत्री सरीखी युवतीके पैरोंपर लोटते हैं आमात्य श्रेष्ठ !' वे उद्दीप्त हो उठी थीं।

महामात्य मौन थे। साम्राज्ञीने पुनः कहा—'आज तक मैंने किसीसे उस दिनकी और अनेक दिनोंकी घटनाओंका कथन नहीं किया है। यह एक बारकी घटना नहीं, अनेक बारकी है। तभी तो चिन्तामें गली जा रही हूँ। उसी दिनसे मेरी भूख-प्यास और नींद सब कुछ मुझसे दूर हो गयी है। मेरा तन सूखकर कांटा हो गया है।' असन्धिमित्राकी ध्वनिमें उग्रता थी। थोड़ी ही देरमें वे बोलते-बोलते मूर्च्छित हो गयीं, वे तीव्र शोकवेगसे आहत हो गयी थीं। अचेत होकर उन्होंने नेत्र बन्द कर लिया।

आमात्यश्रेष्ठ चुपचाप सुनते रहे, किन्तु साम्राज्ञीको चेतनाहीन होते देख घबरा गए। सेविकाएँ दौड़ीं, वैद्यवर आ पहुंचे। साम्राज्ञीकी चेतना पुनः न लौटी।

दूसरे दिन साम्राज्ञीकी दशा और खराब हो गयी। राज्य-परिवारमें भी चिन्ता व्याप्त हो गयी। सम्राटके समक्ष महामात्य उपस्थित हुए। उन्होंने सम्राटको अभिवादन किया।

प्रियदर्शी सम्राट अशोक बोले—'महामात्य !'

'आज्ञा सम्राटदेव।'

'क्या अग्रमहिषी अब स्वस्थ नहीं हो सकती ? दो माह से वे रोगग्रस्त हैं, उपचार हो रहा है; किन्तु उनकी हालत खराब होती जा रही है। अब क्या होगा ?' घबराकर सम्राटने नेत्रोंमें आँसू भरकर पूछा।

नीचे दृष्टि किए हुए महामात्य मौन थे।

'बोलिए आमात्यश्रेष्ठ !'

'महाराज ! अग्रमहिषी युवराज कुणालको बहुत मानती हैं। कोई उनके प्रति किए गए व्यवहारोंको देखकर नहीं कह सकता कि वे अग्रमहिषी असन्धिमित्राके गर्भसे नहीं पैदा होकर स्वर्गीया अग्रमहिषी पद्मावतीके गर्भसे पैदा हुए हैं। अतः आज्ञा हो, तो इस समय उनके पास उज्जैयिनी अग्रमहिषीको अस्वस्थ्यताका समाचार भेज दिया जाय।'

अग्रमहिषी असन्धिमित्राकी सेवामें तत्पर एक परिचारिकाने आकर अभिवादन किया और आज्ञा पाकर कहा—'श्रीमन्त सम्राटदेव ! साम्राज्ञीकी दृष्टि घूमने लगी है। उनकी दशा बहुत खराब हो चली है।'

महामात्य और सम्राट अशोक घबराकर अग्रमहिषीके समीप जा पहुंचे। अग्रमहिषीके प्राण-पखेरू उड़ गये थे।

राज्य-भवनमें शोक छा गया। सबकी आँखोंसे आँसू गिर रहे

थे। उसी दिन अवंति* प्रदेशके उपप्रजापति एवं युवराज—कुणाल (जो अपनी पत्नी कांचनमाला और पुत्र सम्प्रतिके साथ उज्जैन रहते थे) के पास यह अप्रिय समाचार भेजने दूत भेजा गया।

युवराज कुणाल प्रियदर्शी सम्राट अशोकवर्द्धनके पुत्र थे, जो राजमाता पद्मावतीके गर्भसे पैदा हुए थे। पद्मावतीके देहान्त हो जाने पर अग्रमहिषी असन्धिमित्राने पाल-पोषकर कुणालको बड़ा किया था, जिससे वे कुणाल पर बड़ी ममता रखती थीं।

युवराज कुणाल बड़े लोक-प्रिय शासक थे। वे समय निकालकर प्रजाके दुःख-सुखका तथा अधिकारियोंके कार्योका स्वयं निरीक्षण किया करते थे। उज्जयिनी-निवासी योग्य शासक पाकर हर्षका अनुभव करने लगे थे। सारी प्रजाका प्रेम कुणाल पर था।

युवराज बाहर गये थे। सम्प्रतिके साथ काँचनमाला अपने प्रकोष्ठमें बैठी थी। वह उसकी बालक्रीड़ा में मुग्ध थी।

राजभवनके प्रमुख द्वारपर धर्म विवर्द्धन युवराजका रथ आ

*अवन्ति राज्यके दो खण्ड थे। अवन्तिआमात्यने बीति होत्र राजाको मारकर अपने पुत्र प्रद्योतको राष्ट्राधिप बनाया, जो क्रूरकर्मा 'चण्ड प्रद्योत' नामसे प्रसिद्ध हुआ। अवन्तिका उत्तरांचल अवन्ति नामसे प्रख्यात् था। इसकी राजधानी उज्जैनी थी। अवन्तिका दक्षिणांचल दक्षिणांपथ था राजधानी माहिस्सती (महिष्मती) थी। कालांन्तरमें यह मगधमें मिला। ई० पू० ६ठीं शताब्दीमें गांधारपति 'पुक्कमाति' थे गांधारमें पूर्व अफगान एवं उत्तरी पंजाब था, राजधानी तक्कशिला (तक्षशिला) यह वर्त्तमान पश्चिमी पंजाब रावलपिण्डी जिलेके सराय काला—स्टेशनके निकट थी। यह प्रान्त चन्द्रगुप्त कालसे ही मौर्य सामाज्यका प्रमुख अस्तित्व बनाए रखे आ रहा था (वैशालीकी नगर-बधू पृ० ७३१)

पहुंचा। अभिवादनकर प्रतिहारीने फाटक खोल दिया। युवराज रथ लेकर भीतर प्रविष्ट हुए।

रथके घोड़ोंकी टापें सुन काँचनमालाने प्रकोष्ठसे उद्यानमें दृष्टि-पात किया। सम्प्रति भी उधर देखने लगा और युवराज कुणालको देख; बोला—'पिताजी आ गये।'

कांचनमाला मुस्कुरा उठी। सम्प्रति प्रसन्नतामें उछलने लगा। रथसे उतर कुणाल प्रकोष्ठकी ओर चले। उन्हें सामने आता देख कांचनमालाकी दृष्टि उनके उन्नत ललाट और अपूर्व सौन्दर्यपर जा पड़ी। दिन भरके थके होनेपर भी कुणालके चेहरेपर उत्फुल्लता झलक रही थी, थकानका नाम न था। वृषभ-स्कन्ध युवराज रथसे उतर तीव्रगतिसे चलकर प्रकोष्ठके द्वारपर पहुंचे। श्रुति-मधुर वाणी में 'पिताजी आ गए', 'पिताजी आ गए।' कहता हुआ सम्प्रति दौड़-कर कुणालके पास पहुंचा। उसे गोदमें युवराजने उठा लिया। युवराजके पीछे-पीछे संतरी आ रहा था, उसने परदा हाथसे उठाया, सम्प्रतिके साथ युवराज कक्षमें प्रविष्ट हुए सामने मुस्कुराती कांचन खड़ी थी। मधुरवाणीमें वह बोली—'आ गए देव !'

'हाँ देवि शुचिस्मिते ! मैं आ गया।'

'इस बार देव शीघ्र ही निरीक्षण कार्य समाप्तकर आए !'

'हाँ शुभदर्शने ! प्रजा सुखी है। बौद्ध-धर्मका हृदयसे वह स्वागत करती है। बौद्ध-धर्मके प्रभावसे प्रजा और अधिकारियोंका हृदय पवित्र हो गया है। सभी सदाचरणमें स्थित हैं।'

'सम्प्रति कहता था—मैं भी पिताजीके साथ इस बार चलूँगा।' मुस्कुराकर काँचन बोली।

'क्यों तू भी चलेगा हमारे साथ सम्प्रति ?' बोले मुस्कुराकर युवराज कुणाल।

सम्प्रति चुप था, देख रहा था--कभी कांचनकी ओर तथा कभी युवराज कुणालको।

कांचन बोली--'देव ! बौद्ध-धर्मका इधर कैसा प्रचार हो रहा है ? उस वर्ष चयन, व्यापार, रौष, यरिपु और आष्ट्रिय आदि देशोंके बौद्ध विद्वान् तथा तक्षशिला, काश्मीर, वाराणसी, सिंहल, विदर्भ और कलिंग आदि प्रदेशोंके भारतीय भिक्षुओं और आचार्योंके बड़े ही प्रभावशाली भाषण हुए थे। उस महासभासे प्रेरणा ग्रहणकर देश-विदेशमें धर्म-प्रचारके लिए दूत भेजे गए हैं। बौद्ध-धर्मकी उन्नतिके लिए अपने-अपने दृष्टिकोणोंसे सभी प्रचार-कार्यकर रहे हैं। प्रियदर्शी महाराज सम्राटको यहाँका धर्म-प्रचार-कार्य सुनकर बड़ी प्रसन्नता होगी। जब महाराजको पता चलेगा, कि इस बर्बर प्रान्तमें भी राजा-प्रजामें पिता-पुत्रका सम्बन्ध स्थापित हो गया है, धर्म-राज्यमें हिंसाको स्थान नहीं मिल रहा है, प्रेमके बलपर प्रजाका हृदय जीत लिय गया है, शिक्षा तथा न्यायका समुचित प्रबन्ध है, श्रद्धा और विश्वासके पवित्र वातावरणमें रामराज्यका अनुभव होने लगा है, ऊँच-नीचका भेदभाव मिट गया है, किसीकी उपेक्षा नहीं की जा रही है, धार्मिक पाखण्ड मिट गए हैं, सत्य और अहिंसाके प्रतीक महाप्राज्ञ बुद्धके पवित्र नाम--गौतम, अमिताभ, महाश्रमण, सारिपुत्र तथागत और सुगत स्मरण करते हुए सभी आकांक्षा करते हैं कि 'देवानां प्रियदर्शी सम्राट अशोककी जय हो, धर्म-विवर्द्धन युवराज कुणालकी जय हो।' तब महाराजकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहेगा।'

प्रतिहारीने प्रकोष्ठमें काँचन और सम्प्रतिके साथ बैठे हुए युवराजको अभिवादन किया और हाथ जोड़कर कहा--'राजनगर पाटलिपुत्रसे प्रियदर्शी सम्राटदेवका सन्देश लेकर एक दूत खड़ा है. वह युवराजदेवसे मिलना चाहता है।'

'उसे भेजो।'

प्रतिहारी मस्तक नवा, बाहर आया।

सन्देश-वाहकने युवराज और युवराज्ञीको सम्मान प्रदर्शित करते हुए अभिवादन किया।

युवराज—'क्या सन्देश लाये हो तुम ?'

'युवराजदेव ! यह लीजिये, समाचार निवेदित है।'

भोजपत्र पर लिखा पत्र हाथमें थामकर युवराज पढ़ने लगे। उनकी आकृति मलिन पड़ने लगी। उनके नेत्रोंमें आँसू भर आए। उनकी घबड़ाहट देखकर कांचनने पत्र ले लिया और वह पढ़ने लगी। पत्रमें लिखा था—'उज्जयिनीके उपप्रजापति युवराज कुणालको सम्राट अशोकका आशीर्वाद। आगे विदित हो कि अग्रमहिषी असन्धिमित्राका देहान्त कल हो गया। तुम्हारा पाटलिपुत्र आना आवश्यक है।' कांचन भी रो पड़ी। दोनोंका रोना सुन सम्प्रति घबरा गया।

युवराज बोले—'प्रिये ! सच पूछो तो मेरी माताका आज ही देहान्त हुआ है। माता पद्मावतीको तो मैं भूल ही गया था और मुझे असंधिमित्राने ही पाला था। पर हाय ! मरते समय मैं वहाँ पहुंच नहीं सका; पता नहीं, वे मुझे क्या कहतीं। मैंने उनकी एक भी सेवा नहीं की। यह है क्षणभंगुर शरीर ! मैंने नहीं समझा था, इस प्रकार अचानक माता असंधिमित्राका देहान्त हो जायगा।'

गम्भीर युवराज कुणालको इस अशुभ संदेशने विचलित कर दिया ! उनके चेहरेपर शोक छा गया।

युवराजने संदेश-वाहकसे पूछा—'माताजीके अचानक मृत्युका कारण क्या है ?'

'अचानक नहीं देव ! वे काफी समयसे बीमार थीं, बहुत ही दुर्बल होकर मरी हैं। कहते हुए संदेश-वाहकने एक दूसरा पत्र देते

हुए पुनः कहा—'महाराज ! यह गुप्तपत्र आपको आमात्यश्रेष्ठने दिया है।'

आश्चर्य प्रकट करते हुए युवराजने पत्र ले लिया और घबराहटके साथ उसे पढ़ने लगे। लिखा था—

'युवराज कुणालके चरणोंमें आमात्यश्रेष्ठका प्रणाम। अग्रमहिहिषीके मरणका कारण है–ताम्रपर्णीके अंतःपुरकी परिचारिकाश्रेष्ठी तिष्यरक्षिताके प्रेममें जो इस समय राजभवन में रह रही है। सम्राट देवका अत्यन्त आसक्त हो जाना। अग्रमहिषीने मरनेके पहले ही मुझे बुलाकर यह सब कहा था। इसी चिन्तामें दग्ध हो-होकर उन्होंने अपना प्राण त्याग किया है। अग्रमहिषीका स्वास्थ्य सुधारनेके लिए जितने भी प्रयत्न किए गए, वे सब निष्फल हो गए। अग्रमहिषीने अपना प्राण त्याग दिया, किन्तु सम्राटकी मर्यादाको विकृत नहीं होने दिया। उनकी मृत्युके कारणको मुझे छोड़ और कोई नहीं जानता। मैंने यह गुप्तपत्र आपकी सेवामें इसलिए भेज देना आवश्यक समझा, जिससे आप कोई सुगम मार्ग निकालें, क्योंकि बढ़ती घटनाएं साम्राज्यके लिए घातक हैं।

२

जिस इतिहासकी धरतीपर खड़ा मैं श्वास ले रहा हूं, उस युगके भारतवर्षका मानचित्र इस बीसवीं सदीके भारतवर्षके नक्शेसे बहुत कम रूपमें अलग था। भारतीय उपमहाद्वीपके दक्षिणी छोरकी ओर उज्जैनी दक्षिण पाद, कलिंग होते हुए नीचे चोल तक उतर आइए; बस यही हमारे अशोकके साम्राज्यका अन्त है। ये वर्त्तमान कालके बंगलौर, पुट्टचेरीके दक्षिणी तथा पश्चिमी छोर जोड़कर केरलके उत्तारी-पश्चिमी एवं तमिलुनाडके पूर्वोत्तर इलाकोंको जोड़कर समझे जा सकेंगे। आजका समग्र केरल तमिलुनाडका समस्त पूर्वी-दक्षिणी और कुछ पश्चिमी भाग मिलाकर 'चेर' व 'पराड्य' नामोंसे पृथक राज्य थे, जो अशोककी सीमामें न थे। इसके पश्चात् अरब सागर एवं बंगालकी खाड़ीके कलात्मक कोणपर हमारा पुरातन हिन्दमहासागर लहराता मानचित्रपर विस्तीर्ण है। हमारी भारत-माताके एक पग केरल व द्वितीयक चरण तमिलुनाडके बन्दनीय ये पाद-युग्म (जो तत्कालीन चेर, पाराड्यके सांस्कृतिक नामों में पगे) को बंगालकी खाड़ी तथा अरबसागरके दो शाश्वत एवं सुन्दरमय सलिल-सूत्रोंमें सजावटसे गाँठ देकर हिन्दमहासागरके दिगन्तव्यापी जलराशिसे परवारता नाटकीय ढंगसे हिन्दसागरकी रत्नमणि-सा उभरा हुआ नीली छतरीका जगमगाता नक्षत्र-सा टापू वर्त्तमान् श्री लंकाका स्वतंत्र देश माँके पवित्र चरणोंके हरित मणिमें जड़े नील-वैदूर्य घाटकी भ्रान्ति देता है। हरित महासागरकी लोल लहरमालाएँ इस वर्त्तमान् लंकाको चतुर्दिक संगीतों के अर्घ्य अर्पित करती हुई भारतके चरण-कमलको जल-पुष्पोंसे सँवार जाती हैं। पूरा

मानचित्र एक साथ मिलाकर देखनेसे दिव्य झांकी दीखती है। कल्पना रुक जाती है भावना बढ़ जाती है। नीलगगन एवं नील सिन्धु :—एक शान्तिदूत तो एक विराट गंभीर ध्वनिके घोषमय नाद रूपका ईश्वरीय अव्यक्त प्रस्फुट गान : सहचारिणी लहरोंके तन्मय-तालकी अपनी तालमयताको गीतिकी धारामें डुबोकर तादात्म्यसे स्वतः गानमयी होती ध्वन्यात्मकता ! दोनों एक दूसरेमें आत्मसात्। महान् ईश्वर-सा व्यापक भारतके समक्ष बाल-ध्रुव-सा वर्त्तमान् लंका तप-रत अतीतका कथानक बनने लगता है एवं प्रकृति-भंगि-माके इस भावार्थमें सागर-संगीत ध्रुव-द्वारा निकले पुण्य-श्लोककी कवितामयी ध्वनि ध्वनित करता है। दिशाएँ तपोवनका अभिधान ओढ़ लेती हैं। निर्गुण एवं साकारको मथकर सम्पूर्ण दृश्य-सत्ता एक विचित्र भाव-तट-पर हृदयको पहुंचा देती है।

आर्य-ग्रन्थों, वैदिक अवैदिक प्रकरणों एवं अन्य पुरातन संस्कृतियों का यथार्थपरक अध्ययन करके यूनानी मिश्री आदि विदेशी तत्कालीन इतिहासोंका तुलनात्मक अनुशीलन करनेके पश्चात् ताम्रपर्णी या लंकाके सम्बन्धमें निम्नांकित इत्तवृत्त बनेगा।

यह लंका इतिहासके प्रारम्भमें दैत्योंकी नगरी थी। माली, सुमाली एव माल्यवान्—तीनों सहोदर भाइयोंने दक्षिणी समुद्र तट-पर त्रिकूट सुबेल पर्वतपर—जो इस समय उजाड़ बीहड़ एक वन-प्रदेश-सा था—काट-छाँटकर बसने योग्य समतल करके तीस योजन चौड़ी और एक सौ योजन लम्बी पुरी बसाकर हिरण्यपुरके सब स्वर्ण, धन, रत्न, मणि आदिसे समृद्धकर इस दुर्गम स्थानको जन-प्रदेशमें परिवर्तित कर दिया। काश्यप सागर-तटमें प्राप्त स्वर्ण-खादोंके विभाजनके प्रश्नपर प्रथम देवासुर संग्राम होने पर 'लक्ष्मी-प्रकरण, से दैत्य छले जाकर युद्धमेंभी पराजित हुए। इधर उसी हिरण्यपुरके स्वर्ण-प्रकरणमें द्वितीय देवासुर संग्राम होने पर देवता जीते। बड़ा-

भाई माली रण-भूमिमें मरा। सुमाली एवं माल्यवान् भी सहायकोंके मारे जानेपर विक्षुब्ध हो पाताल--(अबीसीनिया) चले गए और लंका न लौटे। इस कारण लंका लम्बी अवधि तक सून, उजाड़ तथा अनाथ रही। इसी सूनी लंकापर वैश्रवणने स्वयं तृणविन्दु (जो तत्कालीन आंध्रालयका महिदेव था) एवं उसके दायाद पुलस्त्यके समप्रयाससे धनेश कुबेरका पद प्राप्तकर लंकाका पुनरुद्धार किया। लंकाके चतुर्दिक समुद्र, वन-प्रान्तर, खाई प्राचीर तथा विशाल चतुष्पथोंपर गज, रथ, अश्वारूढ़ योद्धा, यक्ष-किन्नर, देव, दैत्य, नगर-जनोंसे पुनः परिपूर्ण किया। वीथी-पथ, चतुष्पथ राज-पथ आदि बने। नगर-द्वारपर लौह कपाट जड़े गए। लौह भुशुण्डिकाएँ, फलक-संयत्रोंसे लंका पुनः रक्षित हुई। प्रासाद अलौकिक पच्चेकारी एवं कलात्मक चित्रकारी में विश्वके महानगरों में बढ़कर हो गए थे। कुन्दन-विनिर्मित स्तम्भ, स्फटिकमयी रत्न-जटित सीढ़ियाँ आकर्षण करतीं। यत्र-तत्र यज्ञशालाओं एवं वेदिकाओंका निर्माण कुबेरने किया।

इसी कुबेरका भाई कैकसी-पुत्र रावण आन्ध्रालय महाद्वीपसे उत्तरपश्चि द्वीप-समूहोंको जय करता हुआ दक्षिणी द्वीपसमूहों—अंगद्वीप (सुमात्रा), यवद्वीप (जावा), मलय द्वीप (मलाया), शेखद्वीप (बोर्नियो) कुशद्वीप (अफ्रीका) और वाराहद्वीप (मेडागास्कर) अपने अधीन करके स्वर्णमयी लंकाको अपनी राजधानी बनाकर इसे विश्व-राजनीतिका केन्द्र बना दिया। यहींपर राम-रावण-युद्धने (रावण वधसे) रामको चम्पा, कम्बोडिया, थाईलैण्ड, वर्मा, इंग्लैण्ड, स्पेन, स्वीडेन, नार्वे, स्केण्डेनविया, ग्रीक और इटली--(जो सप्तद्वीप-पति रावणके अधीन थे) पर्यन्त प्रभावकारी सांस्कृतिक छाप छोड़ने दिया। इसीसे लंका का प्रभाव आँका जा सकता है। परन्तु इस युद्धने लंकाकी कला-कौशल, संस्कृति और समृद्धता सबको अवमूल्यितकर ऐसा

निष्प्राणित किया कि कल्प-कल्पान्तरोंके बाद भी उसकी क्षतिपूर्ति नहीं की जा सकी। तबसे आजतक यह उतार-चढ़ाव देखता हुआ धरतीके नक्शेपर निर्लिप्त है। तभीसे लंका अपने छोटे-से द्वीपको छोड़कर आगे विस्तार नहीं कर सका।

'लंकासे ताम्रपर्णी' का शब्दान्तर साँस्कृतिक अर्थोंके परि-वर्त्तनसे जुटा है या प्राकृतिक व्यक्तित्वको ही ध्वनित प्राणके शब्दोंमें अनुबद्ध किया गया है—ये दोनों ही सन्देहास्पद हैं। इतिहासकार इस प्रश्नको लांघ जाते हैं मेरी दृष्टिमें ताम्रपर्णी (ताम्र+पर्ण+क्विप प्रत्यय) से ताम्रपर्णी शब्द निर्मित हुआ। इस वैयाकरणिक विश्ले-षणसे स्पष्ट है—ताम्र (ताड़, भूर्ज आदि लम्बे वृक्षोंकी अधिकता-जन्य) पत्रोंकी छतरीसे प्राच्छादित प्राकृतिक कुटीस्सा सजा मनोहारी एक देश। ताम्रपर्णीके इस भावार्थकी कोई ऐतिहासिक भूमि नहीं है। मात्र एक विचार है, जो इतिहासके इस विषयगत मौन-भंगसे भिन्न भी हो सकता है।

इसी ताम्रपर्णीके उन दिनोंकी ओर जो आजसे लगभग बाईस सौ वर्ष पूर्व अशोक-युगमें बीते थे—यह उपन्यास अपने उद्देश्यके लिए उन्मुख हुआ है। आजकी लंका, कोलम्बो जिसकी राजधानी है कलकी (उस कलकी, जो कल—सदियों, सहस्राब्दियों पीछेका है) उपर्युक्त विवरणोंके अनुसार ताम्रपर्णी नामसे प्राख्यात् थी। उस समय इस देशमें प्रजातंत्र नहीं, अपितु राजतंत्र था। महाराज तिष्य राष्ट्राध्यक्ष थे। यहाँ कोई राजनीतिक उथल-पुथल नहीं थी; इसका बहुत कुछ कारण भौगोलिक है। प्रकृति जिसकी स्वयं पहरेदार है, उसपर प्राक्रमण कौन करनेकी मूढ़ता करेगा भला ? शासन एक-तांत्रिक था। प्रमुख कार्य राष्ट्राध्यक्षके शासन तथा न्याय सम्बन्धी थे। औद्योगिक दृष्टिसे यह राज्य अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य चतुष्पथ था। वर्मा, चीन, जापान, कोरिया एवं पूर्वी-पश्चिमी द्वीप-समूहोंको

जोड़ता हुआ यह राष्ट्र तत्कालीन जलमार्गका ऋजुपथ था।

उपन्यासको तिष्यरक्षिता अशोकके जीवनमें आनेके पूर्व एक कारुणिक अध्यायका समापनकर चुकी थी। सम्भवतः उसके माता-पिता अल्पायुमें ही काल-कवलित हो गए थे। माता-पिताकी मृत्युके पश्चात् निस्सहाय अज्ञात नामवाली अनाथ बालिकाका किसी तरह इसी ताम्रपर्णीके राजगृहमें जिसकी भौगोलिक एवं ऐतिहासिक चौहद्दी ऊपर खींची गयी है, सम्बन्ध जुटा तथा ताम्रपर्णीके अन्तः-पुरकी परिचारिकाश्रेष्ठी पदपर कर दी गयी थी। परिचारिकाश्रेष्ठी वह बाला यौवनके समानान्तर चल रही थी।

एक बार संयोगवश ताम्रपर्णी सम्राट तिष्य राजमहिषीके साथ अम्बस्थलके सघन कुंजमें विचरण कर रहे थे; इसी समय राज्यके वरिष्ठ गणपतिने परिचारिका श्रेष्ठीको किसी राज-कार्यसे महाराज तिष्यके पास भेजा। ज्योंही वह महाराजके समक्ष उपस्थित हुई और उन्हें अभिवादन करते हुए निवेदन करना चाहती थी, त्योंही उसकी दृष्टि महाराजके अति पार्श्ववर्त्ती विषधरपर जा पड़ी, जो क्रुद्ध एवं फणोन्नत हो, आक्रमण करनेकी भूमिकामें दिखायी दे रहा था। ज्योंही वह चीखकर महाराजका ध्यान आकृष्ट करती कि उसके पूर्व ही विषधरने महाराज तिष्यके चरणमें डस लिया। महाराज अभिभूत होने लगे। राजमहिषी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो आर्तनाद कर उठीं। नागराज अदृश्य हो चुके थे। अकस्मात् परिचारिकाश्रेष्ठीका मुख-मण्डल अज्ञात् दृढ़ निश्चय से दीप्त हो उठा। तत्काल उसनें महाराजके पैरमें सर्प-दंशित स्थानको दाँतोंसे काटकर माँसल भाग-को निकालकर अलग कर दिया और वहाँका रक्त चूस-चूसकर बाहर थूक दिया। इस तात्कालिक प्रक्रियासे राजा तिष्यकी रक्षा तो हो गयी, किन्तु जिह्वासे विषका स्पर्श होनेसे परिचारिकाश्रेष्ठी भी प्रभावित होनें लगी। राज्यके वरिष्ठ चिकित्सकोंके सतत् प्रयाससे

वह भी महाराजके साथ ही स्वस्थ हो गयी।

यह विष-प्रकरण परिचारिका श्रेष्ठीके जीवन-विकासका गौरव-पूर्ण समारम्भ था। जिस बिन्दुसे उसके जीवनने एक ऐतिहासिक मोड़ लिया। परिचारिका श्रेष्ठीके इस अपूर्व त्याग-भावना, स्वामि-भक्ति निर्भीकता आदिसे समन्वित, संगठित सौन्दर्य-पूरित व्यक्तित्वसे महाराज तिष्य समेत पूरी राज-सभा उसकी बड़ी आभारी हुई। पूरे राजकुलमें परिचारिका श्रेष्ठी सम्मान एवं चर्चाका प्रकरण बन गयी। राजमहिषी द्वारा भी उसका सम्मान बढ़ गया। महाराजकी जीवन-रक्षाके कारण राजपरिषदने भी परिचारिका श्रेष्ठीको अंतरंग-अधिवेशनमें आमंत्रितकर मान-पत्र अर्पित करनेका प्रस्ताव किया, जिसका ज्ञापन महाराज तिष्यको भी दिया गया। महाराज भला इस प्रस्तावका अनुमोदन कैसे न करते ! इस अन्तरंग अधिवे-शनमें राज-सभाने परिचारिका श्रेष्ठीको मान-पत्र देकर 'परिचारिका श्रेष्ठी' पद निरस्त कर दिया एवं महाराज तिष्यकी जीवन-रक्षा करनेके कारण 'तिष्य-रक्षिता' की सम्मानित उपाधिसे विभूषित किया। अन्तरंग-अधिवेशनके इस प्रस्तावका अभिनन्दन करते हुए महाराज तिष्यने भी अपनी हार्दिक शुभकामनाएं देवि 'तिष्य-रक्षिता' को अर्पित करते हुए उसके भरण-पोषण तथा भावी उन्नतिके लिए राजकीय-व्ययनकी प्रस्तावित योजना घोषित किया।

तिष्यरक्षितामें महत्वाकांक्षाएं हिलोरें ले रही थीं। डेढ़ वर्ष पश्चात् जम्बू द्वीप पुष्पहपुर-(पाटिलपुत्र) से बौद्ध-धर्मके प्रचारार्थ सम्राट अशोकने अपने पुत्र महेन्द्रको ताम्रपर्णी भेजा। महेन्द्रका यह बौद्ध-शिष्ठ-मण्डल पाटलिपुत्रसे चल नालन्दा, राजगृह, बोधगयापर पड़ाव डालता हुआ तागुलिपीको बगलसे छोड़ता हुआ, महानदी पारकर दक्षिणापथ-प्रान्त एवं कलिंग प्रान्तमें रुक-रुक थेरी धर्मका संदेश प्रसारित करता गोदावरी नदी पार किया। यहाँसे आगे बढ़

कृष्णा नदी को भी पार किया। पुनः हिषव प्रान्तमें पूरा एक पक्ष विश्राम एवं धर्म प्रचारके उपरान्त मण्डल प्रान्तसे आगे बढ़ विदेशी सीमा चोलपर जा रुका। यहाँके राष्ट्राध्यक्षसे मिलकर चेर, पाण्ड्य, विदेशी राज्यके आगे पुटट्टुचेरी समुद्रतलीय बन्दरगाहसे जलयान द्वारा ताम्रपर्णी पहुंचा। इस लम्बी यात्रामें इस शिष्ट-मण्डलको आठ मास लगे। छत्तीस पड़ाव पड़े तथा २१ धर्म-भाषण हुए। दो राष्ट्राध्यक्षोंसे धार्मिक सम्मेलनके पश्चात् ताम्रपर्णीपतिके देशपर चरण रखा। महाराज तिष्य अपने वरिष्ठ सहयोगियों समेत उनका स्वागत् करने प्रमुख द्वारपर पधारे। स्वागत्-समारोह-समापनके पश्चात् अतिथि श्रमणने अपनी यात्राका उद्देश्य स्पष्ट किया। महाराज बड़े प्रसन्न हुए।

काषाय चीवराच्छादित महातेजस्वी युवक महेन्द्रके आकर्षक व्यक्तित्वकी ओर सबकी दृष्टि स्थिर हो गयी। सम्राटतिष्यने महेन्द्रके लिए 'महामेघवन' में 'निवर्त्तन चैत्य' निर्मित करानेकी घोषणा की। कुछ समयमें ही वह बन भी गया। धर्म-प्रचारका कार्य प्रारम्भ भी हो गया। सम्राट तिष्यकी सहायतासे अल्पकालमें ही भिक्षुक महेन्द्रने 'चूलहत्थि पदोपम सुत्त' का उपदेश दिया। चौबिस सहस्र कर्मचारियों समेत केश मुड़ा भिक्षापात्र, मेखला, उस्तरा, सुई एवं छन्ना सभी एक-एक भिक्षु-सामग्री ले आपाद-कटि अन्तर्वासिक (नीचेका वस्त्र) पहन, स्कन्ध, वक्ष एवं जघन-युग्म उत्तरासंघसे ढँक संघाटी वस्त्र द्वारा कटिमें बाँध—पूरा मण्डल अपने राष्ट्राध्यक्ष का महाराज तिष्यका अनुगत हुआ, प्रव्रज्यित होने भिक्षु महेन्द्रके समक्ष प्रस्तुत हुआ। सब पीत या काषायधारी उँकड़ू, बैठ उपाध्याय महेन्द्रको प्रणामकर 'बुद्धं शरणं गच्छामि', 'धम्म शरणं गच्छामि' एवं 'संघं शरणं गच्छामि' तीन महावाक्य बोले। अपने अन्तेवासी इस मण्डलको आठ गुरुधर्मोंका उपदेश दे प्रव्रज्या-

संस्कारकी उपसम्पदा की। सब एक साथ बौद्ध-धर्ममें दीक्षित हुए। ताम्रपर्णीमें भी भगवान् बुद्धका दिगन्त-व्यापी शान्ति-ध्वज फहरा उठा।

महामेघवन स्थित निवर्त्तन चैत्य महाराज तिष्य अपनी भगनी अनुकलादेवी तथा तिष्यरक्षिताके साथ भिक्षु महेन्द्रसे मिलने गए। महेन्द्रने उन तीनोंको ससम्मान बैठाया। सम्राट तिष्यने कहा—'भद्र ! मेरे साथ ये दोनों भी प्रव्रजित होने आयी हैं।'

'परन्तु भन्ते ! यह सम्भव नहीं। शास्ता (बुद्ध) की स्वीकृति नहीं है।' महेन्द्र बोले।

'भद्र ! ऐसा क्यों ?' पूछा सम्राट तिष्यने।

'प्रिय शिष्य आनन्दके पूछनेपर भगवान् तथागतने कहा था—'नारी आगे पड़ जाय तो उसकी ओर देखो नहीं। अपनी दृष्टि फेर लो।'

आनन्दने पूछा—'यदि दृष्टि पड़ ही जाय तो देव !'

'उससे बोलो नहीं।' तथागतने कहा।

'यदि बोलना ही पड़े।' आनन्दने पूछा।

सजग होकर अपनी राह लेनी चाहिए। नारी निर्वाणमें बाधा है।' तथागतने कहा।

सम्राट तिष्य एवं उनकी भगिनी निराश हो गई। थोड़ी देर में सम्राट पुनः बोले—'परन्तु भद्र तुम्हारी बहन संघमित्रा कैसे प्रव्रजित हो गई ?'

'भन्ते ! मेरे पिता धर्मका दायाद बनना चाहते थे, दायाद वही व्यक्ति हो सकता है, जिसके औरस पुत्र विश्वमें घूमकर धर्म-प्रचार करें। संघमित्रा सम्राटकी औरस पुत्री है तथा विश्वमें भ्रमणकर धर्म-प्रचारके लिए प्रसन्नतासे प्रस्तुत है। इसीलिए वह प्रव्रजित हो सकी।'

'मेरी बहन भी ऐसा करनेके लिए प्रस्तुत है।' महाराज तिष्यने कहा।

'पुष्पुहपुरमें मेरी बहन संघमित्रा थेरी धर्म-प्रचार कर रही है। आप मेरे पिताको पत्र लिखकर संघमित्राको आमंत्रित करें। वह बोधि गयाके अश्वत्थकी शाखा लेकर यहाँ आ जाय, तो आपकी बहनको वही प्रव्रजित कर सकती है। संघने उसे नारी प्रव्रजित करनेकी आज्ञा प्रदान कर दी है, मुझे नहीं। इस कारण असमर्थ हूं भन्ते!' सुझाव देते हुए महेन्द्रने कहा।

उपाय सुन महाराज तिष्य प्रसन्न हो उठे। सायंकाल महाराज तिष्य, उनकी बहन अनुलादेवी, राजमहिषी एवं तिष्यरक्षिता इकट्ठा हुए। अनुलादेवी भगवान् तथागतकी श्री चरणोंमें अपनेको अर्पित करनेको उद्यत थी पर नयी समस्यासे वह निराश हो गई थी। आज सायं उसीने सबको बुलाया था। उसने निवेदित किया—संघकी 'आचार-संहिता' के व्यवधानको दूर करना ही होगा। मुझे भिक्षुणी संघमित्राकी अनुमति लेनी अनिवार्य है। पर, उनका आगमन ताम्रपर्णी असंभव है। अतः मुझे ही संघमित्रा तक जाना होगा। मेरी उपस्थिति अनिवार्य है; नहीं तो सम्भवतः उसे संघ में प्रवेशसे निषिद्ध ही रखा जानेका निर्णय लिया जा सकता है? उपस्थित रहनेपर वह अपना पक्ष तो प्रस्तुत कर सकेगी। महाराज तिष्य प्रगतिशील विचारके थे। उनकी सहमति मिल गई। तिष्यरक्षिताने राजमहिषीको समझा-बुझाकर तैयारकर लिया। अतः देवि अनुलाके राजकीय यात्राकी तैयारी हो गयी। महेन्द्रके साथ ही प्रत्यावर्त्तनके समय वह भी उनके साथ हो ली। तिष्यरक्षिताको भी देवि-अनुलाने यात्रामें साथके लिए अपने साथ रखा। तिष्यरक्षिताकी यह प्रथम भारत-यात्रा थी। पुष्पहपुर (पाटलिपुत्र) पहुँचनेपर नव प्रव्रज्जित संघकी 'सामणेर' देवि अनुलाका राजसम्मान हुआ।

थेरी धर्म प्रचारिका देवि संघमित्रासे देवि अनुलाने व्यक्तिगत रूपसे भेंटकर अपने जीवनका उद्देश्य प्रस्तुत किया। अन्ततः संघमित्राने संघमें अनुलाको दीक्षितकर ही लिया। पर, बौद्धधर्मके सम्यक् अनुशीलनमें अनुलाको पुष्पहपुर रुककर कुछ समय व्यतीत करना अपेक्षित था—ऐसा संघमित्राने आत्मीयतासे स्पष्ट कर दिया था। देवि अनुलाने स्वीकृति देकर, इस आशयका एक पत्र ताम्रपर्णी अपने बन्धु महाराज तिष्यको भी भेज दिया। सम्राट अशोककी व्यक्तिगत संस्तुति संलग्न थी।

देवि अनुलाके रुकनेका तात्पर्य तिष्यरक्षिताके रुकनेतक समानार्थी था पुष्पहपुर आनेसे लेकर अब तक एकसे अधिक बार अनुला श्री सम्राट देव अशोकसे भेंट कर चुकी थीं। इस अवसरपर प्रत्येक बार तिष्यरक्षिता साथ थी। तिष्यरक्षिता-विषयक प्रमुख जानकारियाँ श्री सम्राट देवको भिन्न-भिन्न अवसरोंपर वार्ता-सन्दर्भो के मध्य देवि अनुलासे हो गई थी। श्री सम्राटदेव प्रथम दर्शनमें ही तिष्यरक्षिताके सौन्दर्यके अभिलाषी हो चले थे, पर उनकी अधेड़ आयु एवं अपना पद उच्छृङ्खलताका नियामक अंकुश था। तिष्यरक्षिताकी भी परख लेनी ही थी।

कुशलक्षेम की जानकारी लेनेके बहाने सम्राटका आगमन इधर प्रतिदिन होने लग गया। सम्पर्क घनिष्ठ करना उनके आगमनका मन्तव्य था। यद्यपि राजपुत्रि अनुलाकी दृष्टिमें सम्राटके इस आचार-पद्धतिको वात्सल्यगर्भित शुद्ध स्नेहकी संज्ञा दी जाती, पर तिष्यरक्षिता आँखोंकी भाषा हृदयंगम करनेमें पूर्ण समर्थ थी। उसने सम्राटको हृदय-स्थलका हर कोण झाँक लिया था और सम्राटके बाह्य व्यक्तित्वके गर्भमें स्फुटित वासनाके स्फुलिंगों का मौन उद्घाटनकर लिया था। यद्यपि सम्राटके अधेड़ व्यक्तित्व-संगठनमें तुष्टिदायक अपेक्षाओं के तात्विक मापदण्ड वह न पा सकी थी; (क्योंकि

'देवानांपिय लाजा' बाची सम्राट अशोकमें 'देवानां पिय' पदके शाब्दिक अर्थोंके ही अनुसार—अर्धपशुवत् कठोरता, मूढ़ता कुरूपता-के–विशेषण वह पायी) पर वह प्रारंभसे ही महत्वाकांक्षिणी बाला थी, जो जीवनके उच्च शिखरतक पहुंचनेमें प्रत्येक त्याग करनेमें दृढ़ थी। सम्राटको यौवन अर्पितकर देने मात्रसे वह विशाल चक्रवर्त्ती-मौर्य–साम्राज्यकी पट्टराजमहिषी कहलाती इस रहस्य-दर्शनकी अनुभूति उसे हो गयी थी। उधर प्रणय-आमंत्रण विशाल साम्राज्य स्वयं अशोकके रूप में उसे दे रहा था। वह शुद्ध भौतिकवादी थी। अतः महत्वाकाँक्षासे प्रेरित अशोकके बाह्य व्यक्तित्वसे आंतरिक घृणा रखती हुई भी, उसने विरोधके स्थानपर प्रणय-अभीप्सा के रागात्मक अवसर देना प्रारम्भ किया।

ताम्रपर्णी-पति तिष्य भगिनी राजकुमारी अनुला अशोक एवं तिष्यरक्षिताकी हृदय-घाटियों तक नहीं उतर सकी थी, अतः नवोदित प्रेम-कथा उसके कान तक न पहुंची एवं न तिष्यरक्षिताने बताया ही।

प्रेम-योगियों का यह मिलन-क्रम चलता रहा, चलता रहा एवं हर नए मिलन-क्रमकी कड़ीमें जीवनके दो मूल विरोधी किनारे—वार्धक्य एवं यौवन अपने तात्विक अन्तर्विरोधोंके बावजूद निजी स्वार्थोंके सेतुसे एकाकार हो जानेको प्रयत्नशील रहे।

३

कुछ समय बीत गए, देवि अनुलाके अध्ययन कालका अन्तिम दौर पूर्ण होनेमें कुछ ही दिन शेष थे। अब तिष्यरक्षिता ऊबनेके कारण भ्रमणका बहाना लेकर सम्राटसे मिलन-महोत्सव मनानेका अभिसरण करने लगी। अनुला चूँकि दत्त-चित्त हो अध्ययनमें लगी थी, अतः उसे न तो आवश्यकता थी— तिष्यरक्षिताकी गतिविधियों पर शंका करनेकी और न उसने शंका की ही। उधर तिष्यरक्षिताके अनुपम सौन्दर्यने सम्राटके हृदयसे अग्रमहिषी असंधिमित्राकी स्मृति-को निकाल बाहर किया। सम्राट अशोककी इस समय पचास वर्षके ऊपर अवस्था हो चुकी थी, किन्तु अनुपम सुन्दरी परिचारिकाश्रेष्ठी तिष्यरक्षिताके उभरते हुए यौवन, उसके विशाल विस्फारित मादक नेत्रों, नितम्ब तक मणिमुक्ता-लसित लहराती हुई वेणी, उसके सुन्दर सुकोमल गलेमें पड़ा हुआ अमूल्य हीरक हार, कपोल और अधरोंकी रक्तिम रमणीयता, गोली-गोली भुजाएँ और हाथीके सूँड़की तरह सुन्दर और पुष्ट जाँघों और उस सर्वाङ्ग सुन्दरीके अत्यन्त आकर्षक वस्त्राभूषणोंने धर्मविवर्द्धन जितेन्द्रिय सम्राट अशोकको विचलित कर दिया। वे उसके रूप और यौवनपर आकृष्ट हो गए थे; या यों कहा जाना अच्छा पड़ेगा कि उस अनुपम सुन्दरीने सम्राटके हृदयको मथकर नयी जवानीको उभार दिया था!

परिचारिका तिष्यरक्षिताको सम्राटके वैभवकी भूख थी और सम्राटको उसके अभूतपूर्व लावण्यसे प्रस्फुटित प्रेमकी आकांक्षा; क्योंकि सम्राट हृदयमें प्रबलवेगसे उभरी हुई वासनाको दमन करनेमें असमर्थ थे; उनके हृदयमें वासना-जनित जो यौवन-ज्वरका उभार

था, उसकी एकमात्र औषधि थी तिष्यरक्षिता ! तभी तो वे तिष्यरक्षितापर अपना सर्वस्व निछावरकर देनेपर प्रस्तुत थे। राजकाजमें मन वे न लगा पाते थे। उनका मन, उनकी दृष्टि, तिष्यरक्षितापर ही केन्द्रित हो गयी। अपने अन्तःपुरमें स्वर्ण पलंगपर सम्राट पड़े हैं, सामने तिष्यरक्षिता कभी दो चरण शीघ्रतासे रखकर और कभी मन्दगतिसे चलकर, शृङ्गारिक वेशमें नूपुरोंकी मधुर झंकार और पायजेबकी ध्वनियोंको, अनुरणित करती हुई क्षुद्रघण्टिकासे लसित कटिप्रदेशको कुछ तिरछा किए, सम्राटको विशेष अपनी ओर आकृष्ट करते हुए अँगड़ाई लेती, चली आ रही थी। उसके अरुण कपोलोंपर मधुर सौम्यता, ओठोंपर मीठी मुस्कान देख और विशाल नेत्रोंकी विशेष चितवनसे सम्राट अशोक उसके वक्षःस्थलकी ओर निहारते हुए काम-वासनासे अत्यन्त पीड़ित हो, उठकर बैठ गए। हाथमें जलपात्र लेकर तिष्यरक्षिता सम्राटके समक्ष खड़ी हो गयी। सम्राटने उससे कहा—'जलपात्र दीपदानके पास रख दो और इधर आ जाओ।'

तिष्यरक्षिताके ओठोंपर विशेष प्रकारकी मुस्कान छा गई, उस समय उसने अपनी नयन-प्रत्यंचासे कटाक्षका एक-एक बाण छोड़कर सम्राटको आहत कर दिया। जलपात्र रखकर वह सम्राटके पास आ खड़ी हुई। सम्राट उठकर उसे अपने बाहुपाशमें एक बार कसकर फिर बोले–'देवी !'

तिष्यरक्षिताने कहा—'एक क्षुद्र दासीका इतना आदर न करें श्रीसम्राटदेब ! यह इस सम्मानकी अधिकारिणीं नहीं।'

'तुम दासी ? दासी नहीं हो तिष्ये ! तुम मेरा प्राण हो, हृदयेश्वरी हो, प्राणवल्लभे !'

'एक परिचारिकाके साथ आपका यह सम्बन्ध प्रजा-परिषदको सह्य न होगा सम्राटदेव !'

'तिष्ये ! इसकी चिन्ता न करो, क्योंकि शीघ्र ही तुम्हें राज-महिषीका पद प्रदान करना चाहता हूं। सारा राज्य, सारा बैभव, तुम्हें सौंपकर और स्वयँ मैं भी तुम्हारे आधीन हो जाना चाहता हूँ।'

यही तो तिष्यरक्षिता चाहती थी, इसी लोभसे उसने अपना यौवन एक वृद्धको सौंप देना चाहा था। अवसर समझकर उसने कहा—'यह क्या सुन रही हूँ, सम्राटदेव ! क्या ये स्वप्नकी बातें तो नहीं हैं ?''

'स्वप्न ? नहीं भद्रे ! यह निश्चय ही होगा। पहले तुमने त्याग किया है, मुझे उस त्यागका मूल्य चुकाना ही है। मुझ वृद्धपर तुमने अपना यौवन उत्सर्ग कर दिया है।'

दृष्टि नीचे किए हुए, तिष्यरक्षिता अत्यन्त प्रसन्न थी और अधरों-पर मन्द-मन्द मुस्कान दिखाई पड़ रही थी। सच तो यह था कि सम्राटके प्रति उसके हृदयमें कुछ भी प्रेम न था। उसने अपना यौवन वृद्ध सम्राटको इसलिए समर्पित कर दिया था, जिससे राज-महिषी बननेकी आकांक्षा उसकी पूर्ण हो।

तिष्यरक्षितामें जितना ही वाह्य आकर्षण था, उतना ही उसका अन्तःकरण कलुषित था, वह निम्नवर्गकी नारी थी।

सम्राट बोले –'तिष्ये ! तुम्हें मैंने कभी कुछ माँगते हुए नहीं देखा। तुम्हें जो कुछ भी आवश्यकता हो माँग लिया करो।'

'यों तो इस समय कुछ नहीं चाहिए; किन्तु सम्राटदेवकी यदि कुछ देनेकी ही कृपा है, तो माँगती हूँ।''

''आज्ञा करो भद्रे !''

''आज्ञा नहीं, प्रार्थना कहिए। मैं सम्राटदेवसे प्रार्थना करती हूँ कि मुझे अपनी कृपाकी अधिकारिणी समझते रहें।'' बहुत ही धीमें स्वरमें वह बोली।

"यह तो मैं पहले ही कह चुका हूँ तिष्यरक्षिता ! मेरा सब कुछ तुम्हारा है।"

राजभवनके अतिरिक्त सम्राट और तिष्यरक्षिताका सम्बन्ध प्रजामें भी प्रसार पाने लगा पर दबे स्वरमें सम्राट इस समय तिष्य-रक्षिताके साथ विलासितामें डूबे थे, आमात्यश्रेष्ठको छोड़कर अन्य कोई राजकीय पुरुष उनसे नहीं मिल सकता था।

कार्य-विशेषसे आमात्यश्रेष्ठ वहां आ पहुँचे। सशस्त्र प्रहरी द्वारपर उन्हें अभिवादनकर सतर्कतासे दोनों ओर खड़े हो गए।

थोड़ी देर पश्चात् आमात्यश्रेष्ठ बोले—'अन्तःपुरके द्वारपर सूचना दो कि द्वारपर आमात्यश्रेष्ठ पधारे हैं, जो इसी समय सम्राटदेवसे मिलना चाहते हैं।'

एक सन्तरी भीतरी प्रकोष्ठके द्वारपर परिचारिकासे जाकर बोला—'सम्राटदेवको अवगत करो कि आमात्यश्रेष्ठ इसी समय विशेष कार्यसे मिलना चाहते हैं।'

सन्तरी लौट आया और ससम्मान कहने लगा—'आमात्यश्रेष्ठ ! आप अन्तर्द्वारपर पधारें देव !'

अनेक विशाल द्वारोंको पार करते हुए, अन्तःद्वारपर आमात्यश्रेष्ठ आ पहुंचे। परिचारिकाओंने सम्मान प्रदर्शित करते हुए उनको अभिवादन किया।

आमात्यश्रेष्ठ बोले—'सम्राटदेवसे मेरे आनेकी सूचना दो और कहो कि मैं इनसे इसी समय मिलना चाहता हूं।'

अपने भीतर प्रविष्ट होनेका संकेत करते हुए थोड़ा रुककर परि-चारिकाने अन्तःपुरमें प्रवेश किया और इधर द्वारपर गम्भीर मुद्रामें आमात्यश्रेष्ठ खड़े थे। तिष्यरक्षिता सम्राटसे अलग हट गई।

परिचारिकाने अन्तःपुरसे लौटकर आमात्यश्रेष्ठके समक्ष मस्तक

नवाकर कहा—'देवी तिष्यरक्षिताकी आज्ञा है कि इस समय सम्राट-देवसे कोई भी नहीं मिल सकता।'

आमात्यश्रेष्ठ सुनकर क्षुब्ध हो उठे और बोले—'देवी तिष्यरक्षिता मत कहो। परिचारिकाश्रेष्ठी तिष्यरक्षिता कहो।'

परिचारिकाने नतमस्तक होकर कहा—'जो आज्ञा देव !'

'परिचारिकाश्रेष्ठी आमात्यश्रेष्ठको आज्ञा दे सकती है?' मस्तकपर आँखें चढ़ाकर परिचारिकाकी ओर देखते हुए आमात्य-श्रेष्ठ रुष्ट होकर बोले।'

परिचारिका घबरा गई। हाथ जोड़े हुए नतमस्तक हो वह आमात्यश्रेष्ठके समक्ष मौन खड़ी थी।

बोले आमात्यश्रेष्ठ—'सम्राटदेव प्रकोष्ठमें हैं?'

'हाँ श्रीमन्त !' ससम्मान बोली परिचारिका।

'मेरे आगमनकी सूचना उन्हें मिली?'

'हाँ देव !'

'उन्होंने कुछ कहा नहीं?'

'वही जो देवी तिष्य.........भूल हो गई देव !' दाँतोंसे जिह्वा दाबकर, परिचारिका गलतीपर पाश्चात्ताप करते हुए सँभलकर फिर बोली—'परिचारिकाश्रेष्ठी तिष्यरक्षिताने जो कहा श्रीमन्त !'

आमात्यश्रेष्ठ क्रोधसे पागल हो उठे और अपनी उँगलीसे रत्न-जटित हीरक मुद्रिका निकालकर उन्होंने परिचारिकाको दिया और कहा—'इसे सम्राटदेवके समक्ष उपस्थित करो।'

परिचारिका अपने अन्तःपुर-प्रवेशका संकेतकर भीतर चली गयी और द्वार पर प्रतीक्षा करते हुए आमात्यश्रेष्ठ खड़े थे।

सम्राट और तिष्यरक्षिता दोनों सजग हो गए। परिचारिकाने नतमस्तक होकर अभिवादन किया और उस हीरक मुद्रिकाको, जो

विशेष प्रयोजनके सन्देशका परिचायक थी, सम्राटके समक्ष रख दिया।

'यह क्या है देव ?' तिष्यरक्षिताने पूछा।

'आमात्यश्रेष्ठ किसी विशेष आवश्यक कार्यसे पधारे हैं।'

'उन्हें आज्ञा दें, इस समय वे नहीं मिल सकते।'

'ऐसा नहीं हो सकता भद्रे।' यह मुद्रिका आवश्यक कार्यकी नितान्तताका प्रतीक है।'

तिष्यरक्षिता आमात्यश्रेष्ठपर क्रुद्ध हो उठी, क्योंकि वह उसी समय सम्राटदेवको वशीभूतकर वरदान ले लेना चाहती थी।

परिचारिकाको सम्राटने आज्ञा दी--'बुलाओ आमात्यश्रेष्ठको।' आमात्यश्रेष्ठको सूचना देने परिचारिका लौट गयी। तिष्यरक्षितासे सम्राट बोले—'भद्रे! तुम बगलके कक्षमें शीघ्र जाकर विश्राम करो। इस समय आमात्यश्रेष्ठ आ रहे हैं।'

तिष्यरक्षिता सम्राटको अभिवादनकर दूसरे कक्षमें चली गयी। सम्राट आमात्यश्रेष्ठकी प्रतीक्षा करने लगे। आमात्यश्रेष्ठने सम्राटके कक्षमें प्रवेश किया और सम्मान प्रदर्शित करते हुए अभिवादन किया माणिक-मरकतमय आसनपर बैठनेका संकेत करते हुए सम्राटने कहा—'कहो आमात्यश्रेष्ठ!'

आमात्यश्रेष्ठने आजानुभुज, उन्नत ललाट, विशालनेत्र सम्राट अशोक की ओर निहारा। आमात्यश्रेष्ठका मुखमण्डल कुछ म्लान था। उन्होंने अपने बहुत बड़े अपमानका अनुभव किया था। जिससे वे चंचल हो उठे थे, उन्होंने कहा—'सम्राटदेव!'

सम्राट उनकी ओर देखने लगे।

'मेरा अपमान परिचारिकाश्रेष्ठी तिष्यरक्षिताने किया है। एक परिचारिका मुझे आज्ञा दे?' भौंहें मस्तकपर चढ़ाकर आमात्यश्रेष्ठ बोले। उनकी वाणीमें कुछ तीव्रता थी और ग्लानि भी।

सम्राट मौन थे। आमात्यश्रेष्ठ पुनः बोले—'मेरी इतनी अवस्था बीत गयी, किन्तु इतना बड़ा अपमान मेरा नहीं हुआ कभी। यह सहन नहीं हो सकता सम्राटदेव !'

सम्राट कुछ न बोले।

'बोलिए सम्राट ! यदि मुझे अपमानित देखना चाहते हों, तो मैं राज्यकार्यसे अलग हो सकता हूँ, किन्तु ऐसा अपमान कदापि सहन न होगा।' कहते हुए आमात्यश्रेष्ठका आत्मगौरव जागृत हो उठा, आमात्यश्रेष्ठ कुछ उत्तेजनामें आ गए थे।

सम्राट मौन थे, गम्भीर थे, और कुछ सोचने लगे थे।

आमात्यश्रेष्ठने देखा; उनकी कटु वाणीने सम्राटको प्रभावितकर दिया है और वे स्वयं सोचने लगे—मुझसे कुछ ज्यादती हो गयी है। मैंने स्वयं उत्तेजनामें आकर सम्राटदेवकी मर्यादाका ध्यान नहीं रखा। स्वयं सम्राटदेवका अपमानकर वही अपराध किया है, जो तिष्यरक्षिताने हमारे साथ, किया था।

आमात्यश्रेष्ठ मौन हो पश्चात्ताप करने लगे। सम्राटने मौन भंग किया बोले—'त्रुटि हो गई आमात्यश्रेष्ठ ! क्षमा करें वृद्धवर !'

आमात्यश्रेष्ठका क्षोभ दूर हो गया था, उन्होंने मस्तक नवाकर सम्राटसे कहा—'मेरे बचनोंमें जो आपने कटुताका अनुभव किया हो, उसे क्षमा करें देव ! उत्तेजनामें आकर उचित-अनुचित मर्यादाका ध्यान नहीं रह गया था। परिचारिकाश्रेष्ठी तिष्यरक्षिताकी वाणीने मेरे संयत मनको उद्वेलित कर दिया था, मौर्यशिरोमणि ?'

मुस्कुराते हुए सम्राटने कहा—'हीरक मुद्रिकाका संकेत तिष्य-रक्षिताके द्वारा अपमानित होनेके कथनका ही द्योतक है आमात्यश्रेष्ठ ?

'नहीं देव ! कुछ दूसरा ही सन्देश निवेदन करने आया हूं।'

'तो कहिये मुझे। तिष्यरक्षिताके कथनपर विचार करूँगा।' बोले सम्राट।

मन्त्रिवरने कहा - 'सम्राटदेवके आचरणके विरुद्ध प्रजा-परिषदने सम्राट और तिष्यरक्षिताके अत्यधिक सम्पर्कके कारण प्रस्ताव उपस्थित किया है। प्रजा-परिषद कहती है—इस अवस्थामें भी एक नवयुवतीके प्रेममें विभोर, विषय-वासनामें आचूड़मग्न सम्राट को क्या अधिकार है, जो वे अपने प्रजाको धर्म-पालनका सर्वदा आदेश देते रहते हैं ? वे पहले स्वयं धर्मका आचरण करें, तब औरोंको आदेश दे सकते हैं।'

मौनावलम्बनपूर्वक सम्राट सुनते रहे।

आमात्यश्रेष्ठ फिर बोले—'प्रजा-परिषदके हृदयमें सम्राटदेवके प्रति जो आस्था थी, वह जाती रही। उसकी दृष्टिमें सम्राटदेवका आचरण दोषग्रस्त हो गया है।'

सम्राट कुछ चिन्तित हो गए। सोचने लगे आमात्यश्रेष्ठ ठीक कहते हैं। मेरे आचरणमें त्रुटि अवश्य आ गयी है। क्या तिष्यरक्षिताको अलग किया जा सकता है ? सिर हिलाते हुए सम्राटने दृढ़तासे निश्चय किया - 'नहीं।' 'कहीं शरीरसे प्राण अलग हो जाने पर चेतना रह सकती है। तिष्यरक्षितासे अपनेको अलग रखकर मैं तड़प-तड़पकर मर जाऊँगा। किसी तरह वह मुझसे अलग नहीं की जा सकती। हमारा उसका अविचल प्रेम है। अभी उसे राजमहिषी बनानेका वचन दिया है मेरे असंगत जीवनका आधार अब तिष्य-रक्षिता ही है। तिष्यरक्षितासे रहित नीरस जीवन लेकर क्या करूँगा'—सोच रहे थे सम्राटदेव।

'और प्रजा परिषदकी यह घृणा-भावना जो सम्राटदेवके प्रति उत्पन्न हो गयी है, वह कभी मौर्य साम्राज्यके लिए अहितकर हो सकती है सम्राटदेव !' कहा मंत्रिप्रवरने।

सम्राट सोचते रहे तिष्यरक्षिता, तिष्यरक्षिता ! तिष्यरक्षिता अलग नहीं की जा सकती है। मैं इसका मोह त्यागनेमें असमर्थ हूं।

यह मेरे रग-रगमें व्याप्त हो गई है। भला मैं इसे कैसे त्याग दूँगा ? यद्यपि तिष्यरक्षिता वहाँ समक्ष नहीं थी, किन्तु उसकी मादक प्रतिमा सम्राटदेवकी दृष्टिमें समा गई थी। उसके अलग हो जानेकी कल्पनासे सम्राट व्याकुल हो गये। उन्हें मर्यादाका ध्यान न रहा और वे बोल उठे - 'नहीं मन्त्रिप्रवर ! वृद्धवर !! तिष्यरक्षिताको हमसे अलग करनेकी बात न सोचिए। उसका त्याग करनेमें मैं अपनेको सर्वथा असमर्थ पा रहा हूँ। किसी भी दशामें यह मुझसे अलग नहीं की जा सकती। मेरा दृढ़ निश्चय है।'

आमात्यश्रेष्ठ आश्चर्यचकित थे, मौन थे।

सम्राट फिर बोले - 'प्रजा-परिषदकी घृणाका तो आप निवारण कर ही देंगे आमात्यश्रेष्ठ ! मैं पागल हो जाऊँगा। मेरे ऊपर कृपा कीजिए। मेरी दुर्बलता देखकर। आपसे कभी कोई बात छिपा नहीं रखी है मैंने। तिष्यरक्षिताको मुझसे अलग करनेको न कहिए। वही मेरा प्राण है, वही; वही जीवनाधार हृदयेश्वरी·····। हृदय निर्बल है। त्याग नहीं हो सकता उसका। हाँ, उसके द्वारा जो आपका अपमान हुआ है, मेरी ओर से उसे सहनकर क्षमा प्रदान करें। वह आपकी महिमा नहीं जान सकी थी। मैं समझा दूंगा। फिर बोले सम्राट।

आमात्यश्रेष्ठने अपना अपमान विस्मृत कर दिया। वे प्रसन्न हो उठे, सम्राटदेवकी कोमल वाणीसे। वे दयार्द्र हो उठे, बोले-'तो आज्ञा दें, सम्राटदेव !'

'हाँ, तो आप इस सम्बन्धमें अपना निश्चय बतावें।'' सम्राटने कहा—

'जो आज्ञा देव !''

''अपना कर्तव्य निश्चित कीजिए। मैं तिष्यरक्षिताका त्याग नहीं कर सकता और आपको प्रजा-परिषदका विचार बदलना होगा, इस सम्बन्धमें आमात्यश्रेष्ठ !''

आमात्यश्रेष्ठ बोले--'यदि सम्राटदेव तिष्यरक्षिताका त्याग करने में असमर्थ हैं, तो उसे शीघ्र ही राजमहिषीका पद प्रदान करें। ऐसा करनेसे प्रजा-परिषदके भ्रमका निवारणकर सकता हूँ और सम्राटके प्रति उत्पन्न हुई, उसकी घृणा दूर हो जायगी।

सम्राटका सारा क्षोभवेग दूर हो गया, वे आनन्दमें आ गए। बोले-'आमात्यश्रेष्ठ ! आपने बाल्यकालमें भी मुझे प्यार किया है और अब भी मैं आपकी कृपा चाहता हूं वृद्धवर !'

सम्राटकी सरल विनीत वाणीने आमात्यश्रेष्ठको वशीभूतकर लिया। वे गद्गद् हो गए, उनके मनकी अपमानजनित व्यथा दूर हो गयी।

सम्राटने परिचारिकाश्रेष्ठी तिष्यरक्षिताको पुकारा।

वह अभिवादन करती हुई सम्राटके समक्ष उपस्थित हो गयी।

सम्राटने कहा--'तिष्ये ! आमात्यश्रेष्ठको तुम्हारे कटु व्यवहारसे जो व्यथा हुई और उनका मन दुःखी हुआ, उसके लिए क्षमा माँग लो। तुम्हें इन वृद्धवरकी महिमाका पता नहीं था, इसलिए अनजानमें तुमसे अपराध हो गया। क्षमा माँग लो और आमात्यश्रेष्ठका आशीर्वाद भी।'

ज्योंही तिष्यरक्षिता आमात्यश्रेष्ठके समक्ष क्षमा माँगनेके लिए प्रस्तुत हुई, त्योंही वे बोल उठे, नहीं राजमहिषी ! ऐसा न करो। आपने मुझे भविष्यमें राजमहिषी होनेकी प्रतिष्ठासे आज्ञा प्रदानकी है। जिसमें मेरे अपमानका प्रश्न ही नहीं उठता।

'धन्य हैं आमात्यश्रेष्ठ ! आप विशाल हृदय हैं, तभी तो मौर्य-साम्राज्यका सुचारु रूपसे संचालन हो रहा है।' सम्राट बोले।

'हाँ, मंत्रिप्रवर ! आपने अभी तिष्यरक्षिताको आशीर्वाद नहीं दिया।' पुनः कहते हुए मुस्करा पड़े सम्राट।

गद्गद् कंठसे आशीर्वादकी झड़ी लगा दी आमात्यश्रेष्ठने और अपनी सारी शुभकामनाएँ प्रकट कर दीं उन्होंने।

सम्राट प्रसन्न थे, प्रसन्न थी तिष्यरक्षिता और आमात्यश्रेष्ठ तो आनन्द में थे ही।

निस्तब्धता भंग करते हुए आमात्यश्रेष्ठ बोले—'सम्राटदेव! अब क्यों विलम्ब करते हैं, लीजिए राजमहिषी पदका द्योतक रत्नजटित किरीट अपने हाथोंसे देवी तिष्यरक्षिताको पहना दें।'

सम्राटने अपने हाथोंसे तिष्यरक्षिताको राजमहिषी-पद सुशोभित करनेवाला किरीट पहनाया।

आमात्यश्रेष्ठ, सम्राट और नवसाम्राज्ञीको अभिवादन करते हुए बोल उठे—'सम्राटकी जय हो। राजमहिषीकी जय हो।'

सम्राट बोले—'आमात्यश्रेष्ठ।'

'आज्ञा सम्राटदेव!' विनम्र होकर आमात्यने निवेदन किया।

'साम्राज्यभरमें शुभ विवाहोत्सव की घोषणा हो जानी चाहिए।'

'जो आज्ञा देव।'

'हाँ युवराज कुणालको भी सूचना दें। तिष्यरक्षिताने कहा।

'जो आज्ञा देवि!' कहकर सम्मानपूर्वक दोनोंको अभिवादनकर आमात्यश्रेष्ठ प्रकोष्ठके बाहर हो गए।

तिष्यरक्षिताको सम्राटने हृदयसे लगा लिया। तिष्यरक्षिता बोली—'देवका सच्चा अनुराग इस सेविकापर है। मैं उस प्रकोष्ठसे मंत्रिप्रवर और श्रीसम्राटदेवकी वार्त्ता सुन रही थी।'

तिष्यरक्षिताकी घटना विद्युतगतिसे फैल गयी। उसने अनुलासे भी बतानेमें अन्यथा न समझा। सुनकर अनुलाभी प्रसन्न हुई, पर अन्दरही अन्दर इस विवाहकी विषमताओंपर भी वह देर तक सोचती रही।

●

४

देवानाँप्रिय प्रियदर्शी सम्राट अशोक और तिष्यरक्षिताका विवाहोत्सव था। नगरके राज-पथ सजाए जा रहे थे। सगे-सम्बन्धी एवं अधीनस्थ दूर-दूरके प्रमुख राजकर्मचारी आमंत्रित हो गए। ताम्रपर्णी भी विशेष दूतसे निमंत्रण भेजा गया।

यथावसर सभी आमंत्रित बड़े-बड़े सामन्त, श्रेष्ठी, माण्डलीक तथा सम्मानित व्यक्ति पधारने लगे। उनका स्वागत्कर राजमहालयके अतिथि प्रकोष्ठमें ठहराया जाने लगा। राजमहिषी सहित ताम्रपर्णी पति महाराज तिष्य भी पधारे, जिनकी अगवानी स्वयं सम्राट अशोकने की। अनुला भी उपस्थित थी। तिष्यरक्षिता भी प्रशान्त बनी साथ थी। सम्राट तिष्यने वर-बधूको शुभ कामनाएँ अर्पित कीं।

कलिंग देशके उपप्रजापति कुमार दशरथदेव भी आ गए, परन्तु अभी तक युवराज कुणालका आगमन नहीं हुआ।

संदेश पायक पत्र लेकर उज्जैनी गया तो था, किन्तु युवराज वहाँसे दूर चले गए थे। युवराज्ञी कांचनमाला और युवराजपुत्र सम्प्रति भी साथ थे। ये लोग नए स्थापित औषधालयका निरीक्षण करने दूर चले गए थे।

औषधालयके विशाल भवनमें कितने ही रोगी पड़े थे, जिनकी उचित ढंगसे चिकित्सा हो रही थी। कुछ रोगी स्वस्थ हो रहे थे जिन्हें दो एक दिनोंमें ही घर चले जानेका आदेश हो जायगा और कुछ नये रोगी चिकित्सा करानेके उद्देश्यसे औषधालयमें भर्ती होना चाहते थे। थोड़े ही दिनोंमें इस औषधालय की इतनी अधिक ख्याति

हो गयी थी कि दूर-दूरके भी लोग आरोग्यता प्राप्त करनेके उद्देश्यसे यहाँ आने लगे थे।

चिकित्सक बड़े दक्ष थे। उनका निदान और औषधोपचार विलक्षण था। बड़ेसे-बड़े रोगी भी शीघ्र अच्छे हो जाते थे।

युवराज कुणाल सपत्नीक सम्प्रतिके साथ वहाँ अचानक पहुंचे थे। चिकित्सक महोदयने उनको अभिवादन किया और सम्मान प्रदर्शित करते हुए औषधालयका निरीक्षण कराने लगे। रोगियोंमें युवराज और युवराज्ञीके दर्शनसे अपार हर्ष छा गया। थोड़ी देरके लिए वे कराहना भूल गए—उनकी पीड़ा दूर हो गयी।

युवराज्ञीने कहा—'युवराजदेव!'

'हाँ प्रिये!' बोला कुणाल।

'इन रोगियोंकी सेवा सबसे बड़ा धर्म है।'

'निःसन्देह भद्रे!'

'सच्ची सेवा तो जनताकी औषधालयमें ही होती है।'

चिकित्सकसे बोले युवराज—औषधालयके लिए जो राजकीय सहायता मिलती है, यदि पर्याप्त न हो, तो कुछ और बढ़ा दी जाय।'

'हाँ श्रीमान्! दूर-दूरसे आते हुए रोगियोंकी संख्या देखते हुए यही कहना पड़ेगा कि कुछ कर्मचारी और बढ़ा दिए जायँ और औषधिका भी अधिक मात्रामें संग्रह हो। ऐसा करने पर जो राजकीय सहायता प्राप्त है, वह कम पड़ेगी।'

औषधियोंके पौधे लगाए गए हैं? क्या वे कमी पूरी नहीं कर सकते?'

'अभी उनका भी निरीक्षण कराता हूं, श्रीयुवराजदेव! उनसे अभी कमी पूरी नहीं हो सकती, वे तो अभी रोपे गए हैं।'*

---

*'हर जगह देवताओंके प्रिय अशोकने चिकित्साका दो तरहका प्रबन्ध किया है—मनुष्योंकी चिकित्सा एवं पशुओंकी चिकित्सा।' देखिए—'अशोक' श्री भगवतीप्रसाद पाँथरीकृत पृ० १६२।

'अच्छा आपका क्या अनुमान है ? कितनी और वृद्धि कर दी जाय सहायतामें ?'

'यदि डेढ़गुनी सहायता बढ़ा दी जाय तो भी किसी तरह काम चल सकता है, श्रीमन्त !'

'ठीक है। सोचा जायगा।' चलिए औषधि-वृक्षोंका उद्यान देखना चाहता हूं। इसके पश्चात् पशुचिकित्सालय भी देखना है।'

युवराज जाने लगे। रोगीगण जो एकटक उन्हें और देवी कांचनमालाको देख रहे थे और समझ रहे थे कि पृथ्वीपर कोई देवता और देवी स्वर्गसे उतर आई है, जयजयकार करने लगे। औषधालय जयजयकारकी ध्वनियोंसे निनादित हो उठा।

ठीक इसी समय कुछ लोग एक जले हुए रोगीको लिए औषधालयमें आ पहुँचे। रोगीकी दशा शोचनीय थी—उसकी आँखें, नाक और मुँह जल गए थे, उसे असह्य वेदना हो रही थी।

युवराज और देवी कांचनका हृदय उस रोगीको देखकर काँप गया। उस रोगीकी आकृति भयावह हो गई थी। उसके अच्छे होनेकी संभावना नहीं थी। चिकित्सक महोदयसे बोले युवराज—'क्या यह रोगी भी आपकी चिकित्सासे ठीक हो जायगा ?'

'हाँ श्रीमन्त ! संभावना तो ऐसी ही है, किन्तु अच्छा हो ही जायगा यह भी नहीं कहा जा सकता '

'आप तब किस आधार पर ऐसा कह रहे थे कि इसके अच्छे हो जानेकी सम्भावना है।'

'हमारे पास औषधि इतनी अच्छी है कि एक बार इससे भी अधिक खराब दशामें एक रोगी आ गया था, जिसकी चिकित्साकी गई और वह अच्छा हो गया। उसे देखकर युवराज ! कोई नहीं कह सकता था कि उसे फिर आँख मिल जायगी, वह अच्छा हो जायगा;

किन्तु इसी औषधिके प्रभावसे वह बहुत थोड़े समयमें अच्छा हो गया।'

वार्त्तालाप करते हुए युवराज औपधियोंका उद्यान देखने चले गये, माली सिंचाई कर रहा था। आकर उसने युवराज और युवराज्ञीके चरणोंमें प्रणाम कर प्रसन्नताका अनुभव किया। यत्र-तत्र उद्यानका निरीक्षण समाप्तकर युवराज पशु-चिकित्सालय पहुंचे। वहाँ अभी कोई रोगी पशु नहीं आया था। वह अभी-अभी निर्मित किया गया था। प्रचार हो जानेपर अपना रोगी पशु-चिकित्साके लिए जनता लावेगी।

सन्ध्याका समय था। युवराज उज्जैनके लिए चल पड़े। युवराज थोड़ी ही दूर गए थे कि डाकुओंका एक दल सामने आ मार्ग रोक खड़ा हुआ। डाकुओंके अधिनायककी दृष्टि कांचनमाला पर पड़ी। उसने कहा—देखो वीरों! यह किसी युवतीको भगाए जा रहा है, इस व्यक्तिसे इसका उद्धार कराना आवश्यक है। फिर युवराजकी ओर संकेत कर वह बोला—'इस युवतीको तुम कहाँ भगाए जा रहे हो? सावधान! इसे छोड़ दो, नहीं तो तुम्हें अपने प्राणोंसे भी हाथ धोनें पड़ेंगे।'

कांचन घबरा गयी। उसकी घबराहट युवराजसे छिपी न रही। इसी बीच युवराजके संरक्षकोंकी वह टुकड़ी आ पहुंची जो पीछे-पीछे चली आ रही थी। कुछ देर तक डाकुओंसे युद्ध हुआ, किन्तु डाकू संरक्षकों द्वारा बन्दी बना लिये गए। उन्हें निकटके जनपदीय बन्दी-गृहमें पहुंचानेका आदेश देकर युवराज आगे बढ़े।

कांचन बोली—'युवराज! अब रातका समय हो आया है, अतः यहीं कहीं रुककर रात बिता ली जाय, तब दूसरे दिन फिर चलना आरंभ किया जाय। मार्ग ठीक नहीं है।'

'प्रिये! तुम डर गयीं।' बोले युवराज।

'डरकी तो बात ही है, स्वामी ! यदि डाकुओंका वह दल मुझे आपसे छीन ले गया होता, तो आप मुझे जीवित भी न पाते।'

'तब तुम्हारे लिए मुझसे भी अधिक सम्प्रति दुःखी होता।' मुस्कुरा कर बोले युवराज।

'दुःखकी तो बात ही है स्वामी !'

डाकू यदि तुम्हें पकड़ हो ले गए होते, तो तुम क्या करतीं ?'

'मैं अपने प्राणोंका मोह त्यागकर एक बार तो वीरतासे उनसे अवश्य लड़ती और जब हार जाती तब निश्चय ही अपना प्राण त्याग देती। और यदि मैं आपसे यही प्रश्न करूँ कि यदि डाकू मुझे पकड़ ले गए होते तो आप क्या करते ? इसके उत्तरमें आपका क्या कथन है, प्राणनाथ !'

'मेरे जीवित रहते हुए ऐसा संभव ही नहीं है भद्रे !'

'मान लें यदि ऐसा होता तो ?'

'न होनेवाली बातोंकी कल्पना ही क्यों की जाय, प्रिये।'

कल्पना ही सही स्वामी ! उसका उत्तर तो आपको देना ही है।'

'तो मैं भी तुम्हारे साथ डाकुओंके यहाँ चला चलता और तुम्हारा साथ न छोड़ता।' कहकर युवराज मुस्कुरा पड़े।'

कांचन सन्तुष्ट हो गयी। युवराजका रथ एक गाँवके निकट पहुंच गया। कांचन यहाँ रुक जाना चाहती थी। उसने सारथीसे रथ रोकनेको कहा और बोली—'प्राणनाथ ! बस अब मेरा साहस आगे बढ़नेमें असमर्थ है। अतः रात यहीं बिता ली जाय।'

रात शुक्लपक्षकी थी। सारे भूमण्डलमें चाँदनी उतर रही थी। गर्मीके दिन थे। रथ एक ग्रामवासीके द्वार पर जा खड़ा हुआ।

सारथीने घोड़ा रोक दिया और उतरकर घरके स्वामीसे कहा—'भद्र ! मैं आज आपके यहाँ रुककर रात्रि व्यतीत करना चाहता हूं।'

इस परिवारके लोग पहले तो भयभीत हो गए; सोचा—डाकुओं-

का दल आ गया। कैसे प्राण और धन बचेंगे, किन्तु सामने एक अनुपम सुन्दरीके साथ एक बच्चे और युवकको देखकर वे बोले—'भाई रातमें तुम कहाँसे चले आ रहे हो ?'

'यह सब तुम पूछकर क्या करोगे ?' बोला सारथी।

'अरे भाई इसलिए पूछ रहा हूँ कि कभी-कभी डाकू लोग इधर ऐसे ही आ जाया करते हैं। जनता डाकुओंसे पीड़ित है।'

'क्या डाकुओंके दमनके लिए राज्यकी ओरसे कोई व्यवस्था नहीं है भद्र ?' बोले युवराज रथसे उतरकर।

युवराजको आपादमस्त देखते हुए ग्रामवासी बोला 'नहीं भदन्त; राज्यकी ओरसे इसका इन्तजाम तो है, लेकिन राजकर्मचारी डाकुओंसे मिल जाते हैं। युवराज कुणालदेव सुना है, भेष बदलकर राजकर्मचारियों की जाँच तो किया करते हैं, फिर भी राजकर्मचारी सुधर नहीं सकते।'

'क्या कभी युवराज इधर नहीं आए, भेष बदलकर ! युवराज बोले।

'इधर तो युवराजका आना कभी नहीं हुआ भद्र !'

'तब उनके भेप बदलनेकी बातें आप कैसे जानते हैं ? युवराज वोले।

'भद्र ! उनके राज-काज देखने और बौद्ध-धर्मके प्रचारकार्यको सुना है। सभी उन्हें देवता कहते हैं, ऐसा न्यायप्रिय राजा कौन होगा ? प्रियदर्शी सम्राट अशोकवर्द्धनसे भी बढ़कर युवराजदेव हैं ! उनकी जगह यदि दूसरा कोई होता, तो आरामसे रहता, मौज उड़ाता; उसे प्रजासे क्या काम ? प्रजापर जो कुछ भी बीतत', उससे कोई सरोकार न होता; लेकिन युवराजदेवका यश फैलता जा रहा है, वे लोकप्रिय होते जा रहे हैं। प्रजाके कष्ट दूर करनेके लिए वे सदैव प्रयत्नवान् रहते हैं। धन्य हैं युवराज, सुखकी गोदमें पलकर

भी उन्हें प्रजाके कष्टका ज्ञान कैसे हो गया ! समझमें नहीं आता।'

'आप कभी युवराजसे मिले थे भद्र !'

'नहीं श्रीमन्त ! इतना सौभाग्य नहीं है मेरा कि उनसे मिल पाऊँ। सबसे बड़ा विघ्न तो उनसे मिलनेमें कर्मचारी ही डाल देते हैं। वहाँ तक कौन पहुंच सकता है ? युवराज जो ठहरे।'

ग्रामवासीको युवराजसे बातें करनेमें आनन्द आ रहा था। उसके प्रति अपने सम्बन्धमें बातें सुनकर युवराज भी प्रसन्न थे। युवराजने पूछा 'भद्र ! आपने कभी युवराजसे मिलनेका प्रयत्न किया ?'

'नहीं श्रीमन्त ! जब उनसे मिलनेमें अड़चनें वहुत हैं, तब कैसे मिलता ?'

मिलना चाहते हैं ?'

'क्यों नहीं। यदि देवतुल्य युवराजसे मिल पाता, तो जरूर मिलता और पहले तो मैं राजकर्मचारियोंके बारेमें ही उनसे निवेदन करता और तब इधर डाकुओंद्वारा जो अशान्ति-अराजकता फैली है, इस सम्बन्धमें भी बातें करता।'

'किन्तु भद्र ! आप उनसे मिलनेकी कठिनाइयोंका अनुभव करके ही नहीं मिलना चाहते ! श्रेष्ठ पुरुषोंका उत्साह कार्यकी कठिनाइयों का स्मरण करके ही नहीं भंग हो जाता। कठिनाइयाँ तो मार्ग प्रशस्त करती हैं भद्र !'

'हाँ श्रीमन्त ठीक कहते हैं।'

'तो आप मिलेंगे उनसे।'

'हाँ, हाँ ! अवश्य मिलूँगा अवश्य।'

'हमारे साथ हो लें, मैं उन्हें आपसे मिला दूँगा। कोई कठिनाई नहीं होगी। कठिनाइयाँ हमारे समक्ष इस बातकी जाँच करने उपस्थित हो जाती हैं कि हमारे हृदयमें हमारी कामना कितनी दृढ़ है।

जिनको अभिलाषा प्रबल होती है, उनको कठिनाइयाँ प्रेरणा प्रदान करती हैं।'

'क्या आपभी युवराजदेवसे मिलने चलेंगे श्रीमन्त?'

'मैं वहीं रहता ही हूं भद्र!'

ग्रामवासी घबरा गया। सोचा उसने 'राजकर्मचारियोंकी अनायास मेरे मुँहसे निन्दा निकल आई। यदि यह कोई श्रेष्ठ राजकर्मचारी है, तो अवश्य मेरे कथन पर अप्रसन्न हो गया होगा।' उसने राजकर्मचारियोंके सम्बन्धमें जो बातें कह दी थीं, उसका वह सुधार करना चाहता था, किन्तु अब वह प्रसंग समाप्त हो चुका था। हाथसे फेंका ढेला कैसे वापस आता? एक बार उसने सोचा—'फिरसे राजकर्मचारियोंके संबंधमें वार्ता कर ली जाय।' जिसमें अब वह उनकी प्रशंसा अवश्य कर देगा; किन्तु फिर सोचा इतनी देरसे इस भद्र पुरुषसे बातें हो रही हैं। एक ही बात बार-बार दुहरानेसे यह और भी अप्रसन्न न हो उठे। खैर, जो कुछ हुआ सो हुआ; अब तो उसका कोई सुधार न होगा।

वह प्रकट होकर फिर बोला—'श्रीमन्त! यदि क्षमा करें, तो मैं आपका परिचय आपके ही द्वारा जानना चाहता हूँ।'

'परिचय मिल जायगा भद्र! अभी तो मैं रात्रिमें यहाँ रुक रहा हूँ।'

'किन्तु श्रीमान्‌जी; आपका परिचय जान लेनेके लिए हृदयमें बड़ी प्रबल जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी है। श्रीमान्‌जी कौतूहल शान्त करें।'

'मैं तो आपलोगोंका सेवक हूं। आपलोगोंकी सेवाके लिए ही प्रियदर्शी सम्राट अशोकवर्द्धन द्वारा मेरी नियुक्ति हुई है।'

'ठीक है श्रीमान्‌जी; यह परिचय अपूर्ण है। क्षमा करेंगे।' एक बार ग्रामवासीने फिर बड़ी ही सावधानीसे युवराज और युवराज्ञीकी

ओर देखा। सोचा उसने—'कहीं युवराजदेव ही तो नहीं आ गए हैं। यह व्यक्ति भी देवताकी तरह दिखाई पड़ रहा है और बात-चीतसे भी व्यवहारमें मृदुल स्वभाव दिखाई पड़ रहा है। हाँ, किन्तु युव-राज यहाँ कैसे आ जायँगे ? इस व्यक्तिकी सम्राट द्वारा नियुक्ति हुई है, अतः स्वयं युवराजदेव भी तो हो सकते हैं। अन्य राजकर्मचारियों की नियुक्ति तो स्वयं युवराजदेवके ही हाथोंमें है, अतः यह व्यक्ति अवश्य युवराज ही है।'

उसकी जिज्ञासा और तीव्र हुई, तीव्रतर हुई। हाथ जोड़कर मस्तक झुका उसने पूछा—'श्रीमन्त; क्या आप स्वयं युवराजदेव ही तो नहीं हैं ?'

युवराज मुस्करा उठे और मौन हो गए।

'बोलिए श्रीमन्त !'

'भद्र ! आपकी कल्पना ठीक है।'

वह व्यक्ति दौड़कर युवराजके चरणों पर गिर पड़ा और बोला—'श्रीमन्त धर्मविवर्द्धन युवराजदेवकी जय हो।'

'क्या युवराजदेवके साथ युवराज्ञी भी पधारी हैं; महाराज ?' उसने कांचनाकी ओर संकेत किया।

सारथीने परिचय दिया—'हाँ भद्र ! युवराज्ञी ही हैं और ये युवराजपुत्र सम्प्रति हैं।'

ग्रामवासियोंमें हर्ष छा गया। वे युवराज और युवराज्ञीकी जय बोलने लगे। सारे गाँवमें समाचार फैल गया सब लोग दर्शनार्थ एकत्र होने लगे। सब लोग मिलकर युवराजके आकस्मिक आगमनमें हर्ष मना-मनाकर उनकी सेवामें तत्पर हो गए। ग्रामवासियोंके क्रिया-कलापसे युवराज बड़े प्रभावित हुए। रात्रि चहल-पहलमें व्यतीत हो गयी।

प्रातःकाल होनेपर युवराज उज्जैन लौटनेके लिए तत्पर हो गए। गाँवके लोग उन्हें विदा करनेके उद्देश्यसे आ पहुंचे।

युवराज एक आदमीसे बोले– 'रथ तैयार हो गया है भद्र! अब हम किस मार्गसे जायँ। मैं आश्वासन देकर कहता हूं कि इस प्रदेशमें अब डाकुओंका भय नहीं रह जायगा। आप लोगोंने कभी भी आकर अपनी पीड़ा हमारे पास तक नहीं पहुंचाई। खैर, देखा जायगा।

युवराजको चलनेके लिये तत्पर देख एक आदमी बोला–'युवराज-देव! यदि इस मार्गसे जायँ, तो सुविधा होगी। आगे चलकर यह कच्ची सड़क राजमार्गसे मिल जायगी।'

दूसरा आदमी बोला—'वह मार्ग ठीक नहीं है, इस मार्गसे जानेमें सुविधा होगी।' हाथ उठाकर उसने संकेत किया।

पहले आदमीने सोचा मेरा बतलाया मार्ग गलत होना चाहता है, उसने आगे बढ़कर प्रतिवाद किया–'वाह; यह मार्ग कैसे ठीक होगा?'

दूसरा—'तब क्या वह ठीक होगा?'

पहला—'युवराज उस मार्गसे न जायँगे।'

दूसरा—'तब क्या उस मार्गसे जायँगे।'

दोनों व्यक्तियोंमें कहा-सुनी होने लगी। गाँवके अन्य लोग और युवराज मौन होकर सुनने-देखने लगे और सोच रहे थे–किस मार्गसे चला जाय। मार्ग दोनों ही हमें गन्तव्य स्थानपर पहुंचा देंगे। दोनों ही व्यक्ति श्रद्धापूर्वक मार्ग बतानेमें तत्पर हैं। युवराज किसीके भी प्रेमको ठुकराना नहीं चाहते थे।

देवी कांचनाने मुस्कराकर युवराजसे कहा—'देव किस मार्गसे चलेंगे?'

युवराज बोले– 'प्रिये! अभी इसका निर्णय स्वयं हो जाता है।' पहला आदमी अपनी धोती लपेटते हुए कुछ क्रुद्ध होकर बोला—'मैं कहता हूँ, युवराज इसी मार्गसे जायँगे।'

दूसरा–मैं कहता हूँ, युवराज इसी मार्गसे न जायँगे, उस मार्गसे जायँगे।'

'क्या, इस मार्गसे युवराज उज्जैन न पहुंचेंगे।' पहला आदमी बोला।

'यही तो मेरा भी प्रश्न है, क्या इस मार्गसे जाने वाला उज्जैन न पहुँचेगा?' दूसरा उसे घूरते हुए बोला।

पहला—'यह और वह दोनों मार्ग उज्जैन पहुंचेंगे, लेकिन मैंने युवराजसे पहले कह दिया था और यह मार्ग ज्यादा सुविधानक है।'

दूसरा–'और इस मार्गमें कौन-सी कठिनाई सामने आ रही है!' मुस्कुराकर कांचन बोली—'जान पड़ता है आज फिर यहीं रहना पड़ेगा!' युवराज बोले–'देखो; दोनों प्रेमपूर्वक मार्ग बता रहे हैं, किसको ठुकराया जाय। मैं अपनी ओरसे दोनोंका सम्मान करूँगा। जबतक ये लोग एकमत होकर मार्ग न बता देंगे, तबतक तो रुकना ही पड़ेगा।' पहला आदमी बोला—'भले ही वह मार्ग ठीक हो, सब सुविधा हो, लेकिन तुम्हारे बताए मार्गसे युवराज नहीं जायँगे।'

'मुझसे युवराजसे कौन शत्रुता है, जो मेरी बात युवराज न मानेंगे।'

'और मुझसे शत्रुता है?'

'अच्छा; शत्रुताका यहाँ कुछ प्रश्न नहीं है। इसका निर्णय स्वयं युवराजदेव ही कर लेंगे। मानते हो मेरी बात?'

'ठीक है, मानता हूँ।'

दोनों युवराजसे हाथ जोड़कर बड़े ही विनम्र भावसे बोले-'आप किस मार्गसे जाना अच्छा समझते हैं युवराजदेव!'

'आप लोग जिस मार्गको निश्चित कर कहेंगे। एक साथ दोनों मार्गसे मैं जा नहीं सकता। मैं तो आप दोनोंकी श्रद्धासे प्रभावित हूं भद्र!'

सब लोग हँस पड़े। सब लोगोंने कहा–तुम दोनों ही मूर्ख हो। अरे चाहे जिस मार्गसे युवराज जा सकते हैं। मार्ग दोनों ही अच्छे हैं। तब एकमत होकर तुम लोगोंको अपना-अपना हठ छोड़ देना चाहिए। पहलेने कहा—'युवराज चाहे जिस मार्गसे जायँ, लेकिन मुझे इस बातकी परेशानी है कि यह आदमी हमारा सही कहने पर भी विरोध करता है। हमें दुःख इस बातका है।'

'सब लोगोंने कहा—'अच्छा भाई तुम्हारे बतलाए मार्गसे ही युवराज जायँगे। बस अब ठीक है न ?'

दूसरा आदमी हार नहीं सकता था, किन्तु हारना चाहता था सोचा—'अब बहुत हो गया। युवराज हम लोगोंकी बातोंमें अब तक उलझे रहे। सब लोग उसका (पहले आदमीका) समर्थन भी कर रहे हैं, अब मान लेना चाहिए !'

प्रकट होकर वह बोला—'अच्छा युवराज अब उसी मार्गसे चले जायँ।'

युवराज हँसकर बोले—'इस बार इस मार्गसे जा रहा हूँ, अब फिर कभी आने पर उस मार्गसे भी चला जाऊँगा।' कांचन सहित सब लोग हँस पड़े। गाँववालोंने कहा—'युवराज और युवराज्ञीकी जय ! युवराज-पुत्रकी जय ?' सबसे विदा लेकर युवराज उज्जैनके लिए चल पड़े।

५

उज्जैन पहुंचनेपर युवराजको मस्तक नवाकर परिचारक बोला—'युवराजदेवकी जय, युवराज्ञीकी जय; युवराज-पुत्रकी जय। युवराज-देव! राजनगर पाटलिपुत्र (पुष्पहपुर पटनाका प्राचीन नाम) एक संदेशपायक आया है, जब युवराजदेव यहाँसे चले गये तभीसे वह भी आ पहुंचा है।'

'संदेशपायक!'

'हाँ देव!'

'भेजो उसे।'

संदेशवाहकने युवराज और युवराज्ञीको अभिवादनकर पत्र उनके समक्ष बढ़ा दिया।

'क्या है?' बोले युवराज।

संदेशपायक खड़ा हो गया। युवराज पत्र पढ़ने लगे। पत्र पढ़कर वे बोले—'लो प्रिये! तुम पाटलिपुत्र चलना चाहती थीं। अब तो चलना ही होगा।'

कांचनकी उत्सुकता बढ़ी, वह बोली—'पत्रमें क्या लिखा है देव?'

'पत्र, पत्र ही नहीं है, यह निमंत्रण-पत्र है प्रिये!'

'कैसा स्वामी!'

'यही कि सम्राटदेवका यह वैवाहिक निमन्त्रण-पत्र है।'

मस्तक पर भौंहें चढ़ाकर कांचन बोली—'सम्राटका विवाह?'

'हाँ प्रिये!'

'किससे?'

'परिचारिकाश्रेष्ठी तिष्यरक्षितासे।'

'आप हँसी तो नहीं कर रहे हैं युवराजदेव ? क्या सचमुच सम्राट इस अवस्थामें विवाह कर रहे हैं और वह भी परिचारिकाके साथ ?'

'इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये प्रिये !'

'तो इस उत्सवमें निश्चय ही हम लोगोंको सम्मिलित होना चाहिए।'

'हाँ प्रिये ! शीघ्र ही चलूंगा।'

'इस शुभ विवाहसे युवराजदेव ! मुझे अनिष्टकी आशंका हो रही है।'

'ऐसा न सोचो प्रिये !'

'नहीं युवराजदेव! इस अवस्थामें सम्राटका विवाह करना हम-सब लोगोंके लिए हितकर नहीं हो सकता। विवाह करके सम्राट अपने स्वतन्त्र विचारोंकी रक्षा करनेमें असमर्थ हो जायँगे। परिचारिका तिष्यरक्षिताने सम्राटको अपने वशमें करके अपनी सन्तानको ही यौवराज्यपद पर अभिषिक्त करा आपको पदच्युत करा दे तो ? उस समय सम्राट उचित-अनुचितका निर्णय करके भी उचित पर आचरण न कर सकेंगे। यह सम्राटकी ही बात नहीं है, ऐसा होता रहा है।' बोली कांचनमाला।

'और यदि तुम्हारी कल्पनाके विपरीत बातें हुईं तो ?'

'यह भी हो सकता है, किन्तु अधिकांश हमारी कल्पना ही घटित होती देखी गई है, स्वामिन् !'

'हो सकता है देवि ! किन्तु पहले तो मैं भविष्यकी कल्पना ही नहीं करना चाहता। और यदि तुम्हारी कल्पना सत्य भी हुई, तो मैं इस क्षणभंगुर युवराजपदकी ही बात नहीं करता, प्राणोंका भी पिताकी सन्तुष्टिके लिए उत्सर्ग कर सकता हूं भद्रे ! मैं नवजननी तिष्यरक्षिताको पाकर माता असन्धिमित्राके वियोगसंभूत मातृविही-

नताकी उदासी भूलकर प्रसन्नताका अनुभव किए बिना न रहूंगा प्रिये !' बोले युवराज कुणाल।

'क्षमा करें युवराजदेव !' कांचनमालाने कहा।

'उदासीनताका परित्यागकर देवि ! राजनगर पाटलिपुत्र चलनेकी शीघ्र तैयारी करो। समय थोड़ा रह गया है।'

दूसरे दिन प्रातःकाल युवराज पुत्र एवं पत्नी सहित सशस्त्र अश्वारोहियोंके साथ चल पड़े। जब वे नगरके निकट आ पहुंचे, तब एक परिचारक द्वारा उन्होंने आगमनकी सूचना भेजी। समाचार पाते ही सम्राटने महाभण्डागाराधिकृत एवं महाबलाधिकृतको अगवानी हेतु भेजा।

युवराज और युवराज्ञीको सम्मान प्रदर्शितकर वे लोग सादर इन्हें लिवा ले गए। आज राजनगर विशेष शोभासंकुलित जान पड़ रहा था। नगरकी साजसज्जा देखते हुए, युवराज चले आ रहे थे। वे भव्य राज्यप्रासादके अतिथि प्रकोपमें ठहराए गए। कलिंगप्रदेशके उपप्रजापति कुमार दशरथदेव युवराज कुणालसे आकर गले लगे और उन्होंने देवी कांचनमालाको प्रणाम किया तथा कुमार सम्प्रतिको गोदमें उठा लिया। आज अनेक वर्षोंके पश्चात् दोनोंके मिलनमें स्नेह उमड़ पड़ रहा था, दशरथदेवसे मिलकर युवराज सम्राटको अभिवादन करने दशरथदेव कांचना और सम्प्रतिको साथ लेकर चल पड़े।

प्रमुख द्वारपर इन लोगोंको देख प्रतिहारीने अभिवादन किया।

युवराज बोले—'मेरे आगमनकी सूचना सम्राटदेवको दो।'

मस्तक नवाकर प्रतिहारी चला गया और सम्राटको सम्मान प्रदर्शितकर बोला—'प्रमुख द्वारपर दशरथदेवके साथ युवराजदेव, देवी युवराज्ञी तथा युवराजकुमार सम्प्रति उपस्थित हैं। ये सब श्रीसम्राटदेवके दर्शनार्थी हैं।'

'आने दो उन्हें।' प्रसन्नता प्रकट करते हुए बोले सम्राट।

'जो आज्ञा।' कहकर प्रतिहारी द्वारपर आया और विनम्रतासे बोला—'युवराजदेव चलिए श्रीसम्राटदेव आपकी प्रतीक्षाकर रहे हैं।'

सबोंने सम्राटको अभिवादन किया। सम्राट प्रसन्न थे, इन लोगोंको हृदयसे लगाकर बोले—'कैसे थे तुम लोग?'

'हमलोग आनन्दपूर्वक थे पिताजी!'

'उज्जैनका क्या समाचार है? राज-कार्य सुचारुरूपसे तो चल रहा है?' बोले सम्राट।

'हाँ पिताजी! वहाँ सुख-शान्ति है?'

'राजकीय औषधालयोंका क्या समाचार है? और बौद्धधर्मका प्रभाव कैसा है?'

'औषधालयोंमें चिकित्सक बड़ी तत्परतासे कार्य कर रहे हैं, दूर-दूरके रोगी आ-आकर आरोग्य प्राप्त कर रहे हैं, औषधियोंके वृक्ष रोपे जा रहे हैं। मैं स्वयं औषधालयोंका निरीक्षण करने गया था और उधर दो दिन लग गए। इसीसे यहाँ आनेमें विलम्ब हुआ पिताजी! दयालुताके कारण बौद्धधर्मके प्रति जनता बड़ी आस्था रखती और आदरसे उसे ग्रहण करती जा रही है। युवराजने नतमस्तक होकर उत्तर दिया।

'मार्गकी थकानसे युवराज पीड़ित हैं, इन्हें ले जाओ आराम दो दशरथ!' कहते हुए सम्राटने सम्प्रतिको गोदमें उठा लिया। सम्राटको अभिवादन कर सब लौट पड़े।

'प्रमुख द्वार पर महामात्य उपस्थित हैं। श्रीसम्राटदेव!' परिचारक बोला।

'आने दो।'

'जो आज्ञा देव!'

आकर आमात्यश्रेष्ठने अभिवादन किया।

'आमात्यश्रेष्ठ !' बोले सम्राट।

'आज्ञा देव !'

'महापरिचारकसे बोलिए कि वह युवराज कुणाल और युवराज्ञी काँचनमालाको उचित परिचर्याका प्रबन्ध कर दें। इन लोगोंको कोई कष्ट न होने पावे।'

'जो आज्ञा सम्राटदेव।' कहकर आमात्यश्रेष्ठ युवराजसे मिलने चले गए।

दूसरे दिन प्रातःकालसे ही सम्राटके विवाहकी तैयारी हो रही थी। सारा नगर स्वर्गकी भाँति सुशोभित हो उठा। स्थान-थानपर मंगलवाद्य बज रहे थे। सारी प्रजा हर्षमें निमग्न थी। राजनगरके बड़े-बड़े लोग आमन्त्रित थे। नगाड़े बज रहे थे। विवाहमण्डपके प्रवेश द्वारपर युवराज कुणाल स्वयं सबके स्वागतार्थ खड़े थे। महाराजतिष्य, उनकी धर्मपत्नी, राजकुमारी अनुला भी समारोहमें अपना-अपना स्थान ग्रहण कर लिये थे। देवि अनुला तिष्यरक्षिताके पार्श्वमें दीख रही थीं।

प्रमुख लोगों, सभी विद्वानों और पुरोहितकी उपस्थितिमें सम्राट और तिष्यरक्षिताका विवाहकार्य सम्पन्न हुआ। लोगोंके जयजयकार से दिशायें प्रतिध्वनित हो उठीं। सभी कह उठे—'सम्राटकी जय।'

'साम्राज्ञीकी जय।'

उपस्थित बड़ेसे बड़े व्यक्तियोंके मुखसे सम्राटके साथ अपना जयघोप सुनकर तिष्यरक्षिताके हर्षका ठिकाना न था, आज उसके मनकी एक बहुत बड़ी साध पूरी हो चुकी थी। आजसे वह ताम्रपर्णी जैसे लघुद्वीपकी परिचारिकासे ऊपर उठकर मौर्य-साम्राज्यके वृहत्तर देशकी राजमहिषी है। वह सम्राटके हृदयकी, सारे साम्राज्यकी अधिष्ठात्री है। सबके सब राजकर्मचारी उसकी कृपाकी आकाँक्षा रखेंगे। सब उसके संकेतोंपर चलेंगे।

उधर सम्राट भी प्रसन्न थे। सौन्दर्य-प्रतिमा तिष्यरक्षिताको पाकर। विवाह हो जानेपर अब प्रजा-परिषदको उनके आचरणपर सन्देह करनेका सम्राटको भय नहीं है। अब तिष्यरक्षिताका विशेष सम्पर्क जो प्रजा-परिषदके हृदयमें सम्राटके प्रति श्रद्धाके स्थानपर घृणाका कारण बन रहा था, वह सब दूर हो गया था।

युवराज कुणालने पहले सम्राटके पश्चात् राजमहिषीके चरणोंका स्पर्श किया। सम्राटने पूछा—'सब कार्य सम्पन्न हो गया वत्स कुणाल ?''

'जी हाँ पिताजी ! सब कार्य समाप्त हो गया। अतिथि यथास्थान पधारे।''

विवाहोत्सव सम्पन्न हुआ। सर्वत्र आमोद उत्साहित था। सब अतिथि नव दम्पतिके दीर्घ जीवनकी मांगलिक अभीप्सायें अर्पित करते हुए अपनी राजधानियोंमें लौट गए। विशेष आग्रहसे ताम्रपर्णी-के महाराज तिष्य सपरिवार रुक गए थे। थेरी-धर्म-पीठिका संघ-मित्राके निदेशनमें भिक्षुणी देवि अनुलाका बौद्ध-दर्शनपर शोध-अध्य-यन पूर्ण हो गया था। अतः महाराज तिष्य एवं उनकी राजमहिषीके साथ वह भी स्वदेश रवाना होने वाली थी। आज महाराज तिष्यकी विदायी थी प्रस्थानके पूर्व तिष्यरक्षिता महाराज तिष्य एवं राज-महिषीके चरणोंपर गिरकर खूब रोयी। महाराज तिष्य भी तिष्य-रक्षिताके जीवनसे प्रभावित हो मानव-जीवनमें नियतिकी महत्ता स्वीकारकर लिए थे। तिष्यरक्षिताके करुण-आँसू महराजके हृदय स्थलमें करुणा प्लावितकर दिए। वे गद्गद् हो गए। करुणामें गोते लगाती हुई उनकी वाणी फूटी 'महारानीजी, तिष्यरक्षिता ! आज आप पैरोंपर गिरकर ''राजमहिषी-पदका अनादर कर रही हैं। मौर्य-साम्राज्यके गौरवकी रक्षा करें। हाँ, ताम्रपर्णीको आपपर गर्व है। अपनी ताम्रपर्णीको न भूलना, क्योंकि वही आपकी मातृ-भूमि

है। जिस प्रकार आपने मेरे जीवनकी रक्षाकरके 'तिष्य-रक्षिता' पद प्राप्त किया, उसी तरह मौर्य-साम्राज्य एवं ताम्रपर्णी देशके मध्य सम्बन्धोंकी प्रगाढ़ताके लिए प्रयत्नशील रहना। आपके प्रयास एवं पारस्परिक सहयोगसे दोनों राष्ट्रोंकी जनताका व्यापक हित होगा तथा जन-कल्याणार्थ नयी सामूहिक योजनाएँ क्रियान्वित होंगी। आपपर हमें विश्वास है। मैं ताम्रपर्णीकी जनता एवं शासनकी ओरसे आपके नव जीवनका अभिनन्दन करता हूं।' ताम्रपर्णी-राज-महिषी भावरंजित हो चली थीं, उनके मुँहसे निकल पड़ा—'बेटी तिष्यरक्षिता। यद्यपि तूने मेरे सुहागकी रक्षाकरके मुझे चिर ऋणी कर दिया है, तथापि यदि अपने अन्तःपुरमें मेरे द्वारा परिचारिका श्रेष्ठी समझकर अपमान हो गया हो, तो उसपर ध्यान न देना। मैं क्षमा- याचना करती हूं।'

प्रत्युत्तरमें तिष्यरक्षिता चरणोंपर गिर गयी और भावविभोर हो बोली—'ताम्रपर्णी विशालदेशमें आपलोगही मेरे माता-पिता बने। क्या माता-पिता भरण-पोषण करते हैं, तो डाटते नहीं, काम नहीं लेते? माता-पिताकी डाटमें कैसी अपमानकी अनुभूति? आप मुझे अन्यथा न समझें। मैं तो आपका स्नेह चाहती हूँ। अब यहाँ आपकी वह मूल्यवान् डाट-फटकार कहाँ मिल पाएगी!'

देवि अनुला बौद्ध-दर्शनमें पगी धीर गम्भीर बैठी रही।

विदायी का दृश्य करुणासे भरा था। सबके नेत्र सजल थे। उस दिन तिष्यरक्षिता ताम्रपर्णीकी स्मृतिमें रोती रही।

६

राजमहिषी तिष्यरक्षिता अब सम्राटकी स्वचालित एक प्रेम-पुत्तलिका मात्र बनकर रह गयी थी। उसकी हावभाव हेलादिक अंग चेष्टाएँ निर्लिप्त हृदयसे सम्राटकी इच्छापूर्ति-परिधि तक ही सक्रिय थीं। सम्राट इस एकांगी प्रेम-स्रोतको अपनी बूढ़ी आँखोंसे न देख सके, वे यह भी न देख सके कि राजमहिषीके संभोगेच्छाभिव्यंजक आंगिक विन्यास उनके प्रति उन्मादके फेनिल नदमें आलोड़ित-विलोड़ित हो जानेके पश्चात् अर्पित न होकर विवशतावश प्रस्तुत किए गए केलि-प्रदर्शन मात्र थे। उस प्रदर्शनमें नैसर्गिकता न थी और न था संतुष्ट आत्म-समर्पण !

जिस भाँति एक दरिद्रको राज-वैभवकी आकांक्षा होती है, उसी तरह यौवनकी उन्मादिनी अवस्था यौवन एवं सौन्दर्यकी अपेक्षा रखती है। तिष्यरक्षिताके हृदयमें राजमहिषी होनेका लोभ था, यौवनके तिरस्कार से उसकी प्राप्ति हुई, किन्तु यौवन और राज्य ? राज्यसे तृष्णा-वासना कहाँ शान्त हो सकती है ? यौवनकी मादकता उसे एक राज-पुत्रमें मिली। वह भी साम्राज्यके राज-पुत्र सम्राट अशोक के दायद युवराज कुणालमें !

युवराजके आलोकिक सौन्दर्यपर दृष्टि पड़ते ही तिष्यरक्षिता मुग्ध हो गयी। उनके सुगठित हृष्ट-पुष्ट शरीर, मुक्तालसित राजकीय वस्त्राभूषण मण्डित व्यक्तित्व, मधुर मुस्कान, शालीनता वर्त्तुल केश राशिने युवती तिष्यरक्षिताको विचलित कर दिया।

आज तिष्यरक्षिताकी दृष्टिमें यौवनकी मादकताका प्रश्न प्रमुख था। बौद्ध-भिक्षुकी वीतराग धार्मिक ऋचा न होकर प्रेमका मादक

संगीत वह होना चाहती थी। संसारकी सुन्दरियां बिना राजमहिषी पद पाए सुखी हैं। यौवनकी मांग यौवन है। राजमहिषी होकर भी वृद्ध सम्राटसे वह निराश है नवयुवती राजमहिषी उन्मादिनी तिष्यरक्षिता तरंगाकुल तरंगिणीकी भांति विक्षुब्ध थी।

'युवराज !' एक दिन बोली तिष्यरक्षिता।

'हां माता राजमहिषी !' मस्तक झुकाकर युवराज कुणालने निवेदन किया और सम्मान प्रदर्शित किया।

कुणालकी अमृतमय वाणीने तिष्यरक्षिताकी श्रवणेन्द्रियको तृप्त करते हुए उसके चित्तको आन्दोलितकर दिया। उसके नेत्रोंमें अनेक भाव-चित्र खिचने लगे। कुणालकी सौन्दर्यमयी छविने उसके हृदयमें एक हलचल पैदा कर दी। वह अपनेको खो बैठी।

'तुम उज्जैनसे लौटनेपर मुझसे नहीं मिले। अतः मेरा उपालम्भ स्वीकार करो, यदि मुझसे अप्रसन्न न हो तो।'

नहीं मातः आपसे न मिल पानेका कारण अप्रसन्नता नहीं। मैं राज-कार्योंमें इतना व्यस्त था कि आ न सका। इसके लिए क्षमा चाहता हूँ जननी, राजमहिषी ! आप मेरी माता हैं, अतः मेरा भी भार आपको ही वहन करना है। मैं निश्चिन्त हो गया ? कहते हुए कुणालने मस्तक झुका दिया।

युवराज कुणाल आज्ञा लेकर अपने प्रकोष्ठमें चले गए, परन्तु तिष्यरक्षिताने उनका सौन्दर्य हृदयमें रख लिया।

उन्मादिनी तिष्यरक्षिताकी दशा अकथनीय थी वासनाजनित अतृप्त व्याकुलताकी आँचमें उसका हृदय दग्ध होने लगा।

× × ×

घटनायें तेजीसे घट रही थीं।

युवराज कुणालके रूपका आसव पानकर कामपीड़िता राज-

महिषी तिष्यरक्षिता सम्राट अशोकवर्द्धनकी अंकशायिनी उस कक्षमें पड़ी थी; जो अत्यन्त कान्तियुक्त मणिमय सोपानों एवं स्वर्णके वातायनोंसे सुशोभित था, स्फटिकमणिसे निर्मित फर्श जिसमें यत्र तत्र हाथीदांत लगे थे। मोती, वज्र, प्रवाल, मणि, स्वर्ण एवं रजतसे बने हुए स्तम्भ जगमगा रहे थे, फर्श मूल्यवान् बिछौनोंसे वेष्ठित थी, और फर्शके ऊपर स्फटिकमणिकी बनी हुई रत्नोंसे विभूषित पलँगके लिए एक वेदी बनी थी। पलँगके ऊपर सुन्दर मालाओंसे युक्त चाँदीके श्वेत छत्रके नीचे तिष्यरक्षिता पड़ी थी। दीपकके प्रकाशमें उसकी शोभा द्विगुणित हो उठी थी। सम्राट अशोक क्रीड़ाके पश्चात् पड़े सो रहे थे, किन्तु राजमहिषी तिष्यरक्षिता क्रीड़ासे निवृत्त होकर भी युवराज कुणालकी रूप-माधुरीका स्मरणकर थोड़ा आसव पीकर अस्त-व्यस्त अवस्थामें पड़ी तड़प रही थी, उसके वस्त्र खिसक गए थे, वह इधरसे उधर करवटें बदल-बदलकर भी शान्ति नहीं पा रही थी। ये सभी सुखकी अगणित वस्तुएँ उसे फीकी लग रही थीं। वह व्यथित थी, उसके नेत्रोंमें नींद नहीं थी। वह धीरेसे एकबार उठी युवराजको भूलनेके लिए फिर थोड़ा-सा उसने आसव लिया, किन्तु आसवकी मादकता फिर भी युवराजके स्मरणकी मादकतापर अपना प्रभाव न जमा सकी। वह रातभर युवराजको स्मरण करती हुई जागती रही। उसके नयनोंमें युवराज कुणालकी सौन्दर्य-प्रतिमा, प्राणोंमें मधुर कल्पना, वक्षःस्थलमें मिलनकी प्रबल उत्कण्ठा और अंग-अंगमें कामवासनाकी बेचैनी बढ़ती चली जा रही थी। अन्तःपुर का हास-विलास उसे दुःखदायी हो गया था।

इस प्रकार कितने ही दिन बीत गए।

स्वर्णछत्रके नीचे माणिकमरकतमय सिंहासनपर विशालनेत्र, उन्नतललाट, आजानुभुज सम्राट अशोक बैठे थे, शीशपर मणियुक्त किरीट सुशोभित था, सामने सामन्त, सभासद, मंत्रिगण विराजमान्

थे, उसी समय युवराज आए और सम्राटको अभिवादन करके आसनपर बैठ गए ।

सम्राट बोले—'कुणाल ! आ गए तुम ?'

'हाँ पिताजी; अब उज्जैन जानेकी अनुमति लेने आया हूँ।'

'सोच रहा हूं कुणाल; बौद्धमहासभा तक रुक जाओ।'

'जो आज्ञा पिताजी !'

'आमात्यश्रेष्ठ !' बोले सम्राट।

'हाँ सम्राटदेव !'

'बौद्धमहासभाके सम्बन्धमें क्या प्रबन्ध हो रहा है ?'

'जो श्रीसम्राटदेव ! कश्मीर, गांधार, महिसामण्डल (दक्षिणी मैसूर), यवन (यूनानी प्रदेश), अपरन्तका (पैठानिकोंका निवास स्थान), हिमालय प्रदेश, महाराष्ट्र, बनवासी (उत्तरी कनारा), सुवर्णभूमि (बंगाल) और लंका प्रदेशमें गए धर्मप्रचारकोंको सूचना दे दी गयी है कि श्री सम्राटदेवके संरक्षण एवं मोगालिपुत्त तिस्स (उपगुप्त) की अध्यक्षतामें बौद्धधर्मकी तीसरी महासभाकी आयोजना की जा रही है;† समय पर आप लोग उपस्थित होकर कार्यक्रम सफल बनाएँ।'

'विदेशमें धर्मप्रचारके लिए इस बार विशेष रूपसे विचार करना होगा आमात्यश्रेष्ठ !' बोले सम्राट।

'उचित ही होगा श्रीमान्।' आमात्यश्रेष्ठने कहा।

राज-सभासे सम्राट उठकर चले गए। सभी सभासद भी अपने निवास-स्थानको पधारे।

कुछ दिनोंके पश्चात् दोपहरका समय था, सम्राट अन्तःपुरमें राजमहिषी तिष्यरक्षिताके साथ बैठे थे और उसकी सुन्दरतामें

---

† देखिए 'अशोक' श्रीभगवतीप्रसाद पांथरीकृत पृ० २०२।

आनन्द ले रहे थे, उसी समय द्वारपर परिचारिकाने अपने प्रवेशका संकेत किया।

राजमहिषीसे सम्राट अलग हट गए। परिचारिकाने अभिवादन किया और सम्राटको सूचित किया कि 'द्वारपर आमात्यश्रेष्ठ खड़े हैं।'

'उन्हें भेजो।' सम्राटने आज्ञा दी।

प्रतिहारिणीने अभिवादन किया और वह बाहर द्वार पर आ गयी।

आमात्यश्रेष्ठ आकर सम्राटको अभिवादन कर खड़े हो गए।

'मैंने असमयमें आकर श्रीमान्‌को कष्ट दिया; इसके लिए देव क्षमा करेंगे।' आमात्यने कहा।

'आपका आगमन अकारण नहीं हो सकता वृद्धवर ! बोलिए क्या समाचार लाए ?' मुस्कुराकर सम्राटने कहा।

'यही बौद्ध-महासभासे सम्बन्धित सन्देश लाया हूँ सम्राटदेव !'

'कल ही तो बौद्धमहासभाका अधिवेशन है, आमात्यश्रेष्ठ ! सब प्रबन्ध हो गया ?'

'हाँ श्रीमान् ! सब हो गया। आमन्त्रित लोग आ रहे हैं। अब-तक लगभग दो सहस्र बौद्ध परिव्राजक उपस्थित हो चुके हैं।'

'महेन्द्र और संघमित्राका समाचार मिला ?'

'हाँ सम्राटदेव ! मैंने स्वागतार्थ युवराज कुणालको भेज दिया है। उनके आगमनकी सूचना मुझे अभी-अभी एक परिचारक द्वारा प्राप्त हुई है।'

'महासभामें आमन्त्रित लोगोंको कोई कष्ट न होने पाए। ध्यान रखिएगा।'

'जो आज्ञा देव !'

आमात्यश्रेष्ठने सम्राटको अभिवादनकर प्रत्यावर्त्तन किया और इधर-उधर जाकर महासभाकी व्यवस्थामें वे तल्लीन हो गए।

सम्राट बोले—'तिष्ये !'

'आज्ञा सम्राटदेव !' कहती हुई तिष्यरक्षिता उपस्थित हुई।

'बौद्ध-धर्मके इस अधिवेशनमें यदि सफलता मिली, तो अब विदेशोंमें भी इसका प्रचार होने लगेगा।'

तिष्यरक्षिताको बौद्ध-धर्मका यह सब बखेड़ा प्रिय नहीं लगता था, फिर भी वह सम्राटका इसके प्रति अनुराग देखकर उपेक्षा न कर सकी। दिखावटी प्रेम दिखाकर वह बोली—'यह सब सम्राटदेव के प्रयत्नका फल है।'

'तुम्हारे प्रेमके कारण मेरे चित्तमें शान्ति है भद्रे ! अब मैं तुमसे बल पाकर धर्मकार्यमें पूरा समय दूंगा।'

राजमहिषी खिन्न हो गई। वह यह सुनना नहीं चाहती थी।

'बोलो प्रिये; ठीक है न ?'

'श्री सम्राटदेवका कथन उचित जान पड़ता है। ऐसा ही होना चाहिए।' दिखावटी वाणीसे सम्राटको प्रसन्न करने हेतु तिष्य-रक्षिताने निवेदन किया।

'कल तुम्हें भी काषायवस्त्र धारण करके महासभामें चलना है।'

' ···।' मौन थी राजमहिषी।

भद्रे ! तुम्हारे सुन्दर शरीरपर यह बड़ा भव्य जान पड़ेगा।'

तिष्यरक्षिता मुस्कुरा पड़ी। उसके मुस्कराहटसे सम्राट कामा-हत हो गये। उन्होंने अपनी भुजाओंमें राजमहिषीको पकड़ लिया। तिरछी दृष्टि किये तिष्यरक्षिता भूमिकी ओर देखती रही।

'देखना भद्रे; सभा-मण्डपमें कहीं ऐसी मुस्कराहटकी मुद्रामें न हो जाना।'

'नहीं तो कितने ही लोग विचलित हो जायेंगे ? यही न सम्राट-देव कहना चाहते हैं ?' कहा तिष्यरक्षिताने ।

'चाहे और कोई भले ही विचलित न हो, किन्तु मैं तो धैर्य नहीं रख सकता प्रिये !'

'यह तो हमारे ऊपर श्रीसम्राटदेवकी महती कृपाका ही लक्षण है।'

'इसका श्रेय तुम्हींको है प्रिये ! तुमने हमारे लिये महान् त्याग किया है। राज्य तो तुच्छ वस्तु है, तुमने राज्यके लोभसे मुझे नहीं अपनाया है, बल्कि मैं तो तुम्हारी इसमें बड़ी उदारता देखता हूँ।'

'सम्राटदेव महान् हैं। उनके मुँहसे छोटी बातें नहीं निकल सकती।'

इसी प्रकार आनन्दमें वह दम्पति डूबा था ? प्रतिहारिणीने आनेका संकेतकर कक्षमें प्रवेश किया और अभिवादन कर खड़ी हो गई।

'बोल; क्या संदेश लाई है ?' सम्राटने पूछा।

'प्रमुख द्वार पर सम्राट-कुमार महेन्द्र और सम्राट-कुमारी संघमित्रा उपस्थित हैं, वे श्रीमान्का दर्शन करना चाहते हैं।'

'आने दो।' सम्राट बोले।

सम्राट प्रसन्न हो गये। पुत्र और पुत्रीसे मिले बहुत दिन बीत गए थे। ये लोग विवाहमें उपस्थित न हो सके थे। सम्राटको महेन्द्र और संघमित्रा सम्मान प्रदर्शित करनेके लिए अभिवादन करना ही चाहते थे कि सम्राटने उठकर उन्हें हृदयसे लगा लिया। हर्षातिरेकमें सम्राटके नेत्र जलसे परिपूर्ण हो गए। बहुत दिनोंके पश्चात् सम्राट की दोनों सन्तानें उन्हें नयन-विषय हुई थीं। थोड़ी देर मौन होकर सम्राट बोले—'तुम लोग आनन्दसे थे न ?'

'हाँ पिताजी।' दोनों ने कहा।

तिष्यरक्षिता उन दोनों के समक्ष उपस्थित हुई। उसे दोनोंने अभिवादन किया। उन दोनों काषायवस्त्रधारी सम्राटकी प्रिय सन्तानों को देखकर तिष्यरक्षिता मुग्ध हो गई। दोनों स्वभावतः सुन्दर थे, नेत्रोंमें विशेष प्रकारके आकर्षण थे और उन दोनोंके आचरणसे पवित्रता आभासित हो रही थी। दोनोंके व्यक्तित्व महान् थे। तिष्यरक्षिता बड़ी प्रभावित हुई उनसे। वह बड़ी विनम्र वाणीमें बोली—प्रियवर महेन्द्र ! और बेटी संघमित्रा ! क्या तुम्हें निमन्त्रण नहीं मिला ?'

'मिला माता राजमहिषी ! किन्तु विवाहकी तिथि समाप्त हो जानेके पश्चात्।'

'मैंने सोचा तुम लोग हमारे ऊपर अप्रसन्न होनेके कारण ही उस विवाह-समारोहमें नहीं सम्मिलित हो सके।'

'माता इसमें अप्रसन्नताका कोई कारण नहीं। हम लोगोंको आपकी आवश्यकता थी माता ! मातृ-वियोग-जनित उदासीनता हमारी अब दूर हो गयी ! हम लोगोंको तो अब आपका ही भरोसा है। हम लोगोंका ही नहीं, अब तो पूरे राज-परिवारका सम्पूर्ण भार आपपर ही आ पड़ा जननी ?' बोले कुमार महेन्द्र।

तिष्यरक्षिता गम्भीर मुद्रामें मौन होकर सुनती रही। कुमार महेन्द्रकी बातोंका उसपर प्रभाव तत्काल पड़ा। उसमें कुछ आत्मीयताके भाव-स्फुरित हो आए। उसने महेन्द्रको हृदयसे लगा लिया और पवित्र अन्तःकरण संघमित्राका हाथ पकड़कर अपने समीप बैठा लिया। संघमित्राकी पीठपर हाथ फेरते हुए राजमहिषीने कहा—'बेटी ! यात्राकी थकानसे तुम थक गई होगी। चलो स्नान करो। शरीरमें स्फूर्ति आ जायगी।

प्रतिहारिणीने पुनः प्रवेश किया और अभिवादनकर सम्राटसे कहा—'द्वारपर युवराज कुणाल खड़े हैं देव !'

'भेजो !' सम्राट बोले।

युवराजको प्रवेशकी सूचना देने वह बाहर चली गई। युवराज भीतर प्रविष्ट हुए। उन्होंने राजमहिषी और सम्राटको अभिवादन किया।

तिष्यरक्षिता बोली—'युवराज !'

'हाँ माताजी !'

'कुमार महेन्द्रको लिवा जाकर स्नानादिका प्रबन्ध कर दो। बेटी संघमित्राकी व्यवस्था मैं यहीं कर दे रही हूं।'

'जो आज्ञा माताजी !'

तिष्यरक्षिता युवराजको देखते ही विचलित हो जाया करती थी, उसके हृदयमें वासना थी, पाप था। कुणालके हृदयमें श्रद्धा थी, पवित्रता थी।

सम्राटकुमारी संघमित्राने कहा—'माता अभी मैं भाभी कांचनमालासे नहीं मिल सकी हूं, अतः उनसे जा रही हूँ मिलूँगी और यह उन्हींको कष्ट दूंगी। मैं फिर अवकाश लेकर आपकी सेवामें उपस्थित हो जाऊँगी।'

तिष्यरक्षिताने आग्रह नहीं किया। उन सबोंने सम्राट और राजमहिषीको अभिवादन किया और कक्षके बाहर चलना आरम्भ किया। तिष्यरक्षिताने द्वार तक उन सबोंको पहुंचाया।

राजभवनसे दूर एक विशाल मैदानमें बौद्धमहासभाके अधिवेशन की व्यवस्था की गई थी। सारा मण्डप खूब सजा दिया गया था। स्थान-स्थानपर प्रतिहारीगण नियुक्त कर दिए गए थे। सभामण्डपके प्रवेश द्वारपर महाप्रतिहार खड़े होकर आगत् विद्वानों एवं भिक्षुओं का स्वागत् कर उचित स्थान पर बैठा रहे थे। इस प्रकार महासभा में सम्मिलित होनेके लिए बाहरसे आए हुए परिव्राजकों, आचार्यों, विद्वानों एवं भिक्षुओंको यथास्थान बैठा दिया गया। सब शान्तचित्त से बैठे थे। चयन, ज्यापान, योरिपु, रौष, आष्ट्रीय आदि देशोंसे विदेशी योग्य बौद्ध विद्वान् तथा तक्षशिला, वाराणसी, उज्जैन, काश्मीर, सिंहल, बिदर्भ और कलिंग आदिके भारतीय बौद्ध विद्वान् उपस्थित थे।

मोग्गालिपुत्त तिस्स (उपगुप्त) सभापतिके आसनपर बैठे थे। उनके पार्श्वमें परिव्राजकाचार्य भिक्षुश्रेष्ठ महात्मा यश विराजमान् थे।

सम्राट अशाक, राजमहिषी तिष्यरक्षिता एवं युवराज कुणाल अभी तक सभामण्डपमें न पधारे थे। उनकी प्रतीक्षा हो रही थी।

कुछ समय पश्चात् एक सुन्दर रथ पर आरूढ़ हुए युवराज कुणाल और राजमहिषी तिष्यरक्षिताके साथ काषायवस्त्र धारणकर प्रियदर्शी सम्राट अशोकवर्द्धन् सभामण्डपके प्रमुखद्वार पर आ पहुंचे।

महाप्रतिहारने झुककर सम्मान प्रदर्शित करते हुए उन्हें अभिवादन किया। आमात्यश्रेष्ठने सम्राटके निकट पहुंचकर उनका स्वागत् किया और सादर उन्हें लाकर स्वर्णसिंहासनपर बैठा दिया। उनके पार्श्वमें युवराज और राजमहिषी तिष्यरक्षिता भी बैठ गयी। दाहिनी ओर महामात्य राधागुप्त, उनके पश्चात् राष्ट्रीय (राज्यपाल)

प्रदेष्टी (राज्य कर्मचारी), अन्तमहामात्य (ग्राम कर्मचारी), ग्राम-कूट (सीमांतके उच्चकर्मचारी) अनुस्यानयनो (प्रजाके प्रतिनिधि) के आसन लगे थे। सारा सभामण्डप काषायवस्त्रधारी बौद्धोंसे देदीप्यमान् हो उठा। सम्राटके हृदयमें हर्ष छा गया।

सभाका कार्यक्रम आरम्भ हो गया। विद्वानोंके भाषण एक दूसरेके पश्चात् प्रारम्भ हो गए। बौद्धधर्मके प्रसरणके लिए सभी विद्वानोंने अपना-अपना दृष्टिकोण उपस्थित किया। अपने सिंहासन से सबसे पीछे सम्राट उठ खड़े हुए और बोले—'आगत् विद्वानों! आपलोगोंने बौद्धधर्मकी उन्नतिके लिए जो दूर-दूरसे कष्ट उठाकर पदार्पण किया और अपने अमूल्य उपदेशोंसे सबको लाभान्वित किया है, मैं अत्यन्त आभारी हूं। विगतकालके राजाओंकी कामना थी कि धर्मके साथ उन्नति करें, किन्तु धर्मकी उन्नति न हो सकी। किस प्रकार धर्मकी यथेष्ट उन्नति हो? किस प्रकार लोगोंको धर्मके साथ उच्च बनाऊँ? इस पर मैंने विचार किया है—धर्म-सन्देशों अथवा अनुशासनोंको प्रकाशित कराऊँगा एवं धर्म-विधान अथवा धर्मकी शिक्षा दूंगा। धर्मकी शिक्षा सुनकर लोग उसपर आचरण करेंगे। इस प्रकार धर्मके साथ उनका स्तरोन्नयन होगा। मेरे पुरुष जो हजारों मनुष्योंके ऊपर शासनके लिए नियुक्त हैं—धर्म-प्रचार करेंगे, रज्जुकको भी, जो सौ सहस्र प्राणियोंके ऊपर शासनके लिए नियुक्त हैं, वे भी धर्मकी शिक्षा लोगोंमें मिलकर देंगे। इसके लिए मैं धर्म-स्तंभ, धर्ममहामात्र स्थापित करूँगा तथा शिलालेख लिखाऊँगा। इस प्रकार मैं धर्मके प्रचार हेतु १—धर्मानुशासन, धर्मलिपि, धर्म-स्तंभ, २—धर्मविधान और ३—धर्म-महामात्र आदि उपायोंसे काम लूँगा।'

'इनमेंसे धर्ममहामात्रोंका धर्म-प्रचारमें प्रमुख कार्य होगा। सम्प्रदायगत विभिन्नता दूर करनेका प्रयत्न किया जायगा; क्योंकि

इससे विघ्न उपस्थित होता है। धर्ममहामात्रोंमें धर्मकी देखभाल, धर्मकी वृद्धि और धर्मपर आचरण करनेवालोंके सुख एवं हितके लिए विशेष प्रयत्नशील होना है। इसके अतिरिक्त सर्वमंगलके लिए हमारे राजकर्मचारियोंको विशेष ध्यान देना होगा।'

'आमात्यश्रेष्ठ।' कहा सम्राटने।

'आज्ञा सम्राटदेव !' कहते हुए आमात्यश्रेष्ठ उठ खड़े हुए।

'सार्वजनिक हितके लिए रेणु-रुक्ष प्रान्तर पर पेड़ लगवाना, फल-फूलोंके वृक्ष रोपना, कूएँ खुदवाना, धर्मशालाएँ बनवाना पशुओं एवं मनुष्योंके लिए औषधालयोंका निर्माण करना आदि लोकोपकारी कार्योंकी व्यवस्था शीघ्र करनी है।'

'जो आज्ञा सम्राटदेव !'

'धर्म महामात्रोंके द्वारा ब्राह्मणों, गृहस्थियों, असहायों और वृद्धों के सुखके लिए कार्य भार सौंपा जाता है, वे बौद्धधर्मकी अलौकिक-सार्वलौकिक कल्याण-भावनाका प्रचारकर उसके विस्तारके लिए प्रयत्नशील होंगे। प्रत्येक पाँचवें वर्ष युक्त, रज्जुक और प्रादेशिक सर्वत्र मेरे विजित राज्यमें राज्यकार्यके अतिरिक्त धर्म-प्रचारके लिए दौरा करें। धर्म प्रचारका कल्याणमय कार्य सीमान्त प्रदेशोंमें भी उसी लगनसे होना चाहिए। सीमान्त प्रदेशके अन्तर्गत यवन, कम्बोज, गांधार तथा अपरंताके अन्य प्रदेश, राष्ट्रिक, पैठानिक, नाभाक या नाभपंतिमें भी धर्म-प्रचारका कार्य हम लोगोंका प्रमुख कर्त्तव्य है।'

उपस्थित लोगोंने ताली बजाकर हर्ष व्यक्त किया। इस मंगलमय कार्यके लिए प्राणियोंमें संयम और अहिंसा आवश्यक है। मनुष्योंके अतिरिक्त पशुओंके भी स्वास्थ्य, वृद्धि, रक्षण और भरण-पोषणका कार्य होना चाहिए। कोई पशु-यज्ञ अथवा होमके लिए न मारा जाय। हमारे राज्यके अन्तर्गत तोता, मैना, अरुण, हंस, बनहंस, नन्दीमुख,

सारस (बक) जलुका (चमगीदड़) चींटी, मछलियाँ विदर्भी (विशेष मछली) संकुचमच्छ, कछुआ, कपाट-शय्यका प्राणशश, बारहसिंहा, ओकपिंडा, बतक, श्वेत बतक और पालतू बतक एवं अन्य चतुष्पद जो न किसी काममें आते हैं और न खाए जाते हैं, इनका मारना वर्जित किया जाता है। बकरी, मेषी, शूकरी, जो नव प्रसूता हैं या जो दूध देती है, न मारी जाँय तथा इनके बच्चे जो छः महीनेसे कम हैं, वे भी न मारे जाँय। मुर्गीके मारनेकी अनुज्ञा नहीं है। जिस भूसेमें जीव हो, वह फूँका न जाय। बिना प्रयोजन तथा प्राणियोंकी हिंसाके कारण जंगल जलाए न जायँ। जीवका पोषण जीवसे न होना चाहिए। तीन चतुर्मासों तथा तिष्य (पौष महीना) पूर्णिमाके दिवस मछली न तो मारी जा सकती है और न बेची जा सकती है। ऐसा तीन दिनों तक होगा; अर्थात् प्रथम पक्षके १४ वें, १५ वें दिन और दूसरे पक्षके पहले दिन तथा अन्य उपवासके दिनोंमें भी इस आज्ञाका पालन करना होगा। इन्हीं अवसरोंपर हाथियोंके जंगल और केवट भोगस्तेयोंमें अन्य प्रकारके पशु न मारे जाँय। प्रत्येकपक्षके आठवें, चौदहवें, पन्द्रहवें तिथिपर एवं तिष्य एवं पुनर्वसु दिवसके अवसरपर बैलोंपर गरम लोहेका दाग न लगाया जाय। भेड़ों, बकरों, शूकरों एवं अन्य दागे जानेवाले जानवरोंको ऐसे अवसरोंपर दागा न जाय।'

हमें यह सब धर्मके कार्य अपने राज्य तक ही नहीं सीमित करना है, किन्तु विदेश—चोड़, पाण्ड्य, सत्युपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णीके राज्यों एवं अन्तियोकस, यवन, कम्भोज, राष्ट्रिक, पैठानिक, आन्ध्र नाभाति, मग, तुरमय, अलिकसुन्दर एवं अण्टिगोनसके यवन राज्यों में तथा अंतिकोयस, सीरिया, मिश्र मैसीडोनिया, इपीरस, कैरीन, चीन एवं ब्रह्मा आदि देशोंमें भी धर्म-प्रचारकर विश्वमें धर्मकी पताका फहरानेका प्रयत्न करना है।'

'सर्व-भूतानां अक्षति च समचेरां च, संयम् च, मोदवं च' के अनु-सार विश्व बन्धुत्वके निकट आना है।'

'आचार्य मोगालीपुत्त तिस्स !' सम्राटने कहा ।

'हाँ सम्राटदेव !' उत्तर मिला ।

'भगवान्का धर्म कितना महान् है ?'

'भगवानके धर्मके चौरासी खण्ड हैं देव !'

'अच्छा, मैं प्रत्येकके अर्थ एक-एक विहार अर्पण करूँगा। मेरे अधीनस्थ यहाँ जितने राजा उपस्थित हैं, उन्हें विहार बनवानेका आदेश दिया जा रहा है।'

'आमात्यश्रेष्ठ !'

'आज्ञा सम्राटदेव !'

'पाटलिपुत्रमें एक 'अशोकाराम' नामक विहार बनवानेका प्रबन्ध करें। इस समय धर्मके प्रचारार्थ मेरे हृदयमें जो कामनाएँ हैं, जो योजना है, वह सब करनेके लिए अधिक समयकी अपेक्षा रखता है। समय थोड़ा है, अतः इस सम्बन्धमें आमात्यश्रेष्ठ मुझसे फिर मिलें और वार्तालापकर लें। यहाँ तो इतना ही कहना पर्याप्त समझता हूँ कि धर्मानुराग, लगन, आत्मसंयम और महान् उत्साहके बिना किसी महान् उद्देश्यकी पूर्ति नहीं होती। धर्म-महात्माओंकी नियुक्ति आमात्यश्रेष्ठ अपने ही हाथोंमें लें।'

मस्तक झुकाकर आमात्यश्रेष्ठ बोले—'जो आज्ञा सम्राटदेव !'

सम्राटने महाबलाधिकृतकी ओर दृष्टिकी, वे खड़े हो गए और मस्तक नवाकर बोले—'आज्ञा देव !'

'धर्म-प्रचारके कार्यमें जितने मनुष्योंकी आवश्यकता हो, आमात्य-श्रेष्ठकी इच्छानुसार प्रबन्ध करें।'

शीश झुकाकर महाबलाधिकृतने समर्थन किया।

'कोषाध्यक्ष ! और महाभाण्डागाराधिकृत !' संकेत करते हुए बोले प्रियदर्शी सम्राट।

दोनों नत-भाल मुद्रामें खड़े हो गए और आज्ञाकी प्रतीक्षा करने लगे।

सम्राट बोले—'आमात्यश्रेष्ठको जितने द्रव्यकी आवश्यकता धर्मप्रचारार्थं हो, दें। जितनी आवश्यक वस्तुओंकी इन्हें जरूरत हो, तुरन्त प्रबन्ध करें।'

'जो आज्ञा सम्राटदेव !' कहते हुए वे लोग बैठ गए।

'धर्मप्रचार-कार्यकी योजनाके संबंधमें विचार-विमर्शके लिए आमात्यश्रेष्ठ ! मैं आपको आमन्त्रित करता हूँ, भूलेंगे नहीं।'

आमात्यश्रेष्ठने सम्मान प्रदर्शित करते हुए समर्थन किया।

बौद्धमहासभा विसर्जित हुई। सब लोग यथास्थान चले गए।

युवराज कुणाल, राजमहिषी तिष्यरक्षिता और सम्राट अशोक फिर एक ही रथपर बैठ राजभवनकी ओर चल पड़े।

मार्गमें तिष्यरक्षिता बोली—'सभामण्डपमें भीड़के एक ही प्रकारके वस्त्र धारण करनेसे एक अपूर्व दृश्य दिखाई पड़ता था।'

'यह पिताजीकी धर्म-प्रियताका उज्वल प्रतीक था माताजी !' बोले, युवराज कुणाल।

आनन्दमें तिष्यरक्षिता झूम उठी। वह कुणालकी बातोंमें विशेष आनन्दका अनुभव किया करती थी; वह कुणालसे वार्तालाप करनेमें तृप्त न होती थी। तिष्यरक्षिता बोली—'तभी तो युवराज; सम्राटने धर्मोन्नतिके निमित्त महान् घोषणा की है।'

'अब सभी धर्मोंसे बौद्धधर्मका स्तर ऊँचे उठ जायगा, माताजी।' कुणालने कहा।

'यदि बौद्ध-धर्म राज्य-धर्म घोषित कर दिया गया तो अवश्य ही यह श्रेष्ठ धर्म हो जायगा युवराज !' तिष्यरक्षिता बोली।

इसी प्रकार आपसमें बातें करते हुए, वे सब राजभवन पहुंचे। युवराज कुणाल राजमहिषी और पिताको अभिवादनकर अपने आवास स्थानकी ओर चल पड़े।

राजमहिषी तिष्यरक्षिताके साथ सम्राटने अन्तःपुरमें प्रवेश किया। अन्तःपुरमें प्रविष्ट होकर सम्राटने काषायवस्त्र बदलकर अन्य वस्त्र धारण किया और तिष्यरक्षिता वहीं समीप खड़ी थी।

सम्राटने कहा—'भद्रे ! वस्त्र बदल लो।'

'सम्राटदेव काषायवस्त्रसे ऊब गए हैं, किन्तु मेरा मन अभी नहीं ऊबा है।' मधुर मुस्कानके साथ तिष्यरक्षिताने कटाक्ष किया।

सम्राट उसके निकट आ गए और उसके कन्धेपर हाथ रखते हुए बोले—'भद्रे ! धर्मप्रचारके समय अवसर विशेष पर ही काषाय-वस्त्र धारण करता हूँ।'

'तो महाराजका मन भी वस्त्र-परिवर्तनके साथ ही साथ इस समय बदल गया है !' मुस्कुराते हुए अँगड़ाई लेकर राजमहिषी बोली।

'प्रिये ! तुम्हारा अपना अलग महत्व है। तुम्हारी रूपमाधुरी बरबस अपनी ओर खींच ही लेती है और जब तुम्हारा स्मित बदन, तुम्हारी भावभंगिमा देखता हूँ, तो विवश हो जाता हूं।' बोले सम्राट।

'मानव शरीर क्षणभंगुर है देव ! इसमें इतनी आसक्ति ठीक नहीं।'

सम्राट हँस पड़े। तिष्यरक्षिताकी बात सुनकर।

'सम्राटदेवने शायद यही सोचकर हँसा है कि अब तक सभा-मण्डपमें मैं बोलता था, सबको सुननेके लिए; किन्तु यहां मैं बोलती हूँ।' अनुभव किया और कहा तिष्यरक्षिताने।

'हाँ शुचिस्मिते ! तुम्हारा अनुमान यथार्थ है।'

'श्रीसम्राटदेव जब सभामण्डपमें बोलनेके अधिकारी हैं, तो मैं भी अन्तःपुरमें अपना अधिकार मानती हूँ।' मुस्कुरा पड़ी तिष्यरक्षिता ·

'अन्तःपुर ही क्यों तुम तो हमारे हृदय और समग्र शासनकी भी अधिकारिणी हो प्रिये।' सम्राट बोले।

'मुझे क्षमा करें सम्राटदेव ! मुझे अवसरपर मर्यादाका ध्यान नहीं था।'

'मर्यादाका तुमने उल्लंघन कहाँ किया प्रिये; जो क्षमा माँग रही हो। प्रणय वार्तामें इतनी सूक्ष्म मर्यादा नहीं देखी जाती।'

'सम्राटदेवकी दृष्टि दोष रहित है, अतः दोष होने पर भी उन्हें नहीं दिखाई पड़ता। सम्राट महान् हैं। चन्द्रमाका बिम्ब गन्दे जलमें भी स्वच्छ दिखाई पड़ता है।'

'किंतु भद्रे तुम्हारी भावना गन्दे जलके समान नहीं है !' कहते हुए सम्राटने उसे बाहुपाशसे जकड़ लिया।

तिष्यरक्षिता मौन थी, मुस्कुरा रही थी।

८

बौद्ध महासभाके समाप्त होने पर सम्राटके आदेशानुसार उप-गुप्त ने थीरोंको धर्म-प्रचारके हेतु इधर-उधर भेजा; जिसमें मुख्य प्रेषित गए थे - (१) मभन्तिक—काश्मीर और गांधारमें: (२) महादेव - महिसा मण्डल (मैसूर मानधाता) में (३) महारक्षित-- यवन यूनानी प्रदेश में, (४) धर्मरक्षित, (जो मूलतः यवन था)— अपरंतका (यह पैठानिकों का निवास स्थान था) में, (५) मज्जहिमा- हिमालय प्रदेश में, (६) महाधर्मरक्षिता—महाराष्ट्र में, (७) रक्षित-चोड़, पाण्ड्य, सत्यपुत्र और केरलपुत्रमें, जिन्हें उत्तरी कनारा या बनवासी प्रदेशके नामसे कहा गया है, (८) सोन और उत्तरा— सुवर्ण भूमि या पेगु और मौलमें। और (९) महेन्द्र, राष्ट्रिय, उत्तरीय संबल और भद्रासर लंका या सिहलमें आदि।

हिमवंत या बर्फीले प्रांतमें यक्ष, गन्धर्व, नाग एवं कुंभकोंने चौरासी हजारकी संख्यामें बौद्ध-धर्म स्वीकार किया। काश्मीर और गांधार प्रदेशमें थीरोंके प्रभावसे असी हजार मनुष्योंने बौद्ध-धर्मको अंगीकृत किया तथा एक लाख मनुष्योंने थीरोंसे प्रव्रज्या ग्रहणकी। महादेव थीरोंने महिसामण्डलमें जाकर चालीस हजार मनुष्योंको बौद्धधर्म स्वीकार कराया और चालीस हजार मनुष्य उसके द्वारा भिक्षु बने। रक्षित थीरो बनवास प्रदेशमें साठ हजार मनुष्योंको बौद्ध-धर्म स्वीकार कराया तथा सैंतीस हजार मनुष्योंको दीक्षा देकर भिक्षु बनाया। इस थीरोंने वहाँ पाँचहजार बिहार भी बनवाए। थीरो योनको (यवन) ने अपरंतका प्रदेशमें ७० हजार लोगोंको धर्मका रहस्य बताया, जिससे एक हजार क्षत्रिय और उससे

भी अधिक महिलाएँ भिक्षु-संघमें प्रविष्ट हो गई। महाराष्ट्र प्रदेशमें थीरो महारक्षितने चौरासी हजार मनुष्योंको बौद्ध-धर्म ग्रहण कराया तथा तेरह हजार मनुष्योंको भिक्षु बनाया। थीरो या आचार्य महारक्षितने यवन प्रदेशमें एक लाख, सत्तर हजार मनुष्योंको बौद्ध-धर्म ग्रहण कराया तथा दस हजार मनुष्योंको दीक्षा दी। आचार्य मज्जहिमोंने अन्य चार आचार्योंके साथ हिमवन्त प्रदेशमें असी करोड़ मनुष्योंको बौद्ध-धर्म अंगीकृत कराया। यहाँके पांचों थीरोंके समाज में एक लाख मनुष्योंने दीक्षाली और संघमें प्रवेश किया। इसी प्रकार आचार्य सोन, आचार्य उत्तर सुवर्णभूमिमें छः लाख मनुष्योंको बौद्ध-धर्मका ज्ञान कराया तथा २५००० लोगोंको दीक्षा दी तथा डेढ़ हजार भिन्न जातिके स्त्री-पुरुषोंको भिक्षु संघमें प्रविष्ट किया।

इस प्रकार बौद्ध-धर्मका बड़े धूमधामसे प्रचार एवं प्रसार होने लगा।

अन्तःपुरके प्रमुख द्वारपर एक दिन संध्या समय युवराज कुणाल उपस्थित हुए। प्रतिहारिणीने सम्मान प्रदर्शित किया।

युवराजने सम्राटकी सेवामें सूचना देनेकी आज्ञा प्रदानकी।

प्रतिहारिणीने कक्षमें प्रवेशकर मस्तक झुकाया और सूचना निवेदित की - प्रमुख द्वार पर युवराज उपस्थित हैं, सम्राटदेव !'

'भेजो।'

प्रतिहारिणी बाहर चली गई।

कक्षमें युवराज कुणालने प्रवेश किया; सम्राटको और माता तिष्यरक्षिताको उन्होंने अभिवादन किया।

'कहो कुणाल ? कैसे आए ?' पूछा सम्राटने।

'अनुमतिके लिए आया हूँ पिताजी; कांचन और सम्प्रतिके साथ कल प्रातःकाल उज्जैयिनी जाना चाहता हूँ।' कहा कुणालने।

तिष्यरक्षिताकी आशा पर तुषारापात हो गया। वह घबरा गयी। उसने कुछ और ही सोचा था। तत्काल उसने कहा—'प्रिय युवराज ! मैं तुम्हें वहाँ जानेकी अनुमति न दूंगी और न देने दूंगी।'

मुस्कुरा पड़ी तिष्यरक्षिता। उसकी ओर देखने लगे युवराज और सम्राट भी।

'वहाँ शीघ्र प्रस्थान न करनेसे अब शासनमें कुछ ढीलापन आ सकता है, माताजी !' कहा कुणालने।

'मेरी आज्ञा है कि तुम उज्जैनी न जाओ। तुम्हारे वहाँ जानेसे मुझे दुःख होगा।' तिष्यरक्षिता बोली।

'मैं यह जानता हूं माताजी ! कि आपका मेरे ऊपर अपार स्नेह है; किन्तु शासनका कार्य कैसे चलेगा, अतः इसे देखते हुए आपकी आज्ञाका नहीं, मोहका कुछ त्याग करना ही पड़ेगा।'

'नहीं मेरे युवराज ! सम्राटदेव वृद्ध हो चले हैं, पाटलिपुत्र रहकर राज्यकार्य देखना; क्योंकि अब यहाँ तुम्हारे सहयोगकी आवश्यकता है। कुमार दशरथको उज्जयिनी भेज दिया जायगा। यहाँ रहनेसे तुम राजनगरकी परिस्थितियोंसे अवगत हो सकोगे।' तिष्यरक्षिताने कहा।

'बेटा कुणाल ! राजमहिषी तुम्हारी माँ ठीक कह रही है। मेरे पश्चात् तुम्हींको सम्राट होना है; अतः यहाँकी सभी परिस्थितियोंसे भिज्ञ होना अत्यन्त आवश्यक है।' सम्राटने कहा।

'जो आज्ञा देव !' बोले कुणाल।

तिष्यरक्षिता सम्राटकी बात सुनकर प्रसन्न हो गयी।

युवराज कुणाल राजनगर पाटलिपुत्रमें ही रहने लगे। धीरे-धीरे राज्यकार्य तिष्यरक्षिता और युवराज कुणाल ही देखने लगे। सम्राट अब आराम करने लगे। उधर बनावटी प्रेममें तिष्यरक्षिताने सम्राटको वशीभूत कर रखा था। युवराजको उज्जयिनी न जाने

देकर तिष्यरक्षिताने सोचा था—धीरे-धीरे अत्यन्त निकट रहकर युवराज हमारे सौन्दर्य पर आकृष्ट हो ही जायँगे।

युवराज कभी-कभी उससे परामर्शके लिए उसके निकट आने लगे और वह उनसे अत्यधिक आत्मीयता दिखाने लगी। वह अपनी ओर युवराजके आकृष्ट होनेकी सफलता पर प्रसन्न होने लगी।

दृढ़ चरित्र युवराजके हृदयमें पवित्रता थी और माताके प्रति पुत्रका जो सहज अनुराग होता है, वही था; किन्तु इस प्रेमको तिष्यरक्षिता दूसरे दृष्टिकोणसे देखती थी। उसका विश्वास था कि मैं अपनी आशामें सफल हो रही हूँ। उसके हृदयमें पाप था और कुणालके प्रति प्रबल आसक्ति।

यह सब होते हुए भी युवराजको उसके गन्दे विचारोंका पता न था। उसके प्रेममय विचारोंको वे अत्यधिक मातृस्नेहके रूपमें ही देखनेको अभ्यस्त थे। उधर पहले तिष्यरक्षिताने यही सोचा था कि युवराज हमारे सौन्दर्य पर आकृष्ट होकर स्वतः विचलित हो जायँगे, किन्तु वह अधिक प्रतीक्षा करने पर भी असफल रही। युवराजके पवित्र आचरणमें कोई विकार पैदा न हुआ।

किन्तु तिष्यरक्षिता व्यथित थी, उसके हृदयमें आंदोलन था। वह अपने प्रयत्नमें विफल थी।

जब तिष्यरक्षिताका सौन्दर्य युवराजको प्रभावित न कर सका, तब वह अन्य उपाय ढूढ़नेके लिए विवश हुई। उसकी वासना तीव्रतर होने लगी। उसे देवी कांचनमालापर ईर्ष्या हुई। उसने सोचा यदि कांचन युवराजकी संतुष्टिके लिए न होती, तो मैं अपनी आकांक्षामें अवश्य सफल होती। रात-दिन वह कुणालके लिए रह-रहकर तड़पने लगी। उसने सोचा यदि एक बार भी मैं युवराजको हृदयसे लगा सकी, तो मेरी तृषा शान्त हो जायगी और संभव है, तब युवराज भी मुझसे प्रेम करने लगे। वह युवराजको अत्यधिक प्रेम

करने लगी। जिस दिन युवराज राज्यकार्यसे अवकाश पाकर उससे न मिल पाते. वह उन्हें स्वयं बुलवा लेती और कुछ न कुछ बड़े आग्रह और प्रेमके साथ बिना खिलाए न मानती।

तीसरी बौद्ध-महासभामें सम्राटकी घोषणानुसार राज्यमें बनाए जाने वाले स्तूपोंका कार्य प्रबल वेगसे हो रहा था। सम्राटके शयन-प्रकोष्ठके प्रमुख द्वार पर आमात्यश्रेष्ठ आ पहुंचे।

सम्राट शयन-प्रकोष्ठमें राजमहिषीके साथ वार्तालाप कर रहे थे। प्रतिहारिणीने आकर राजमहिषी तथा सम्राटको सम्मान प्रदर्शित किया। सम्राट बोले—'क्या है; प्रतिहारिणी ?'

नतमस्तक होकर प्रतिहारिणी बोली—'श्रीसम्राटदेवसे मिलनेके लिए प्रमुख द्वार पर आमात्यश्रेष्ठ पधारे हैं।'

'भेजो।'

सम्राटके समक्ष उपस्थित होकर राजमहिषी और सम्राटको अभिवादन कर आमात्यश्रेष्ठने सम्मान प्रदर्शित किया।

'कहो वृद्धवर ! कैसे कष्ट किया आपने ?'

'सम्राटदेवको सूचना देने आया हूँ कि जो कुछ पहले स्तूप बने थे उनकी मरम्मत करा दी गयी है और कितने ही स्तूप नए बनवाए गए हैं।' आमात्यश्रेष्ठने कहा।

'इस समय कहाँ-कहाँ स्तूप हो गए हैं, आमात्यश्रेष्ठ ?'

आमात्यश्रेष्ठ जो स्तूपोंकी तालिका बना लाए थे, सामने उपस्थितकर बोले—'देखिए श्रीमान् !'

स्तूपोंकी तालिका हाथमें लेकर सम्राटने तिष्यरक्षिताको दे दिया और कहा—'देखो भद्रे ! पढ़ो तो ?'

तिष्यरक्षिता पढ़ने लगी—

'(१) कपिसा—(काफरिस्तान)—यहाँ पर एकसौ फीट ऊँचा पिलुसार स्तूप बना, (२) नगर (जलालाबाद), (३) उदयान—

इस स्थान पर भगवान् बुद्धने राजा शिविके रूपमें कबूतरको छुड़ाने के लिए बाजको अपना माँस दिया था, (४) तक्षशिला--इस स्थान पर भगवान् बुद्धने अपना सिरदान दिया था, (५) सिंहपुर यहाँ ४०५० ली दक्षिण—पूर्वमें २०० फीट ऊँचा पत्थरका स्तूप है। (६) उरस, (७) कश्मीर–यहाँ पर चार स्तूप हैं, (८) थानेश्वर--यहाँ पर ३०० फीट ऊँचा स्तूप है, (९) श्रुयन, (१०) गोविसन –यहाँ बुद्धदेवने धर्मका प्रचार किया था, (११) हयमुख, (१२) प्रयाग—यहाँ एक सौ फीट ऊँचा स्तूप है। इसी स्थान पर शास्त्रार्थ करनेवालोंको बुद्ध भगवान्ने पराजित किया था। (१३) कौशाम्बी—इस स्थानपर बुद्धदेवने धर्म प्रचार किया था, (१४) कपिलवस्तु—इस स्थानपर २० फीट ऊँचा स्तूप बना है। (१५) श्रावस्ती—यहाँ पर ७० फीट ऊँचा स्तम्भ है, (१६) रामग्राम इस स्थानपर बुद्धदेवने अपने बालोंको कटवाया था और वहीसे छन्दक सारथीको वापस लौटाया था, (१७) कुशीनगर—यहाँ पर २०० फीट ऊँचा स्तूप बना है, इस स्थान पर आठ राजाओंके मध्य बुद्धदेवके अवशेषोंका बँटवारा हुआ था, (१८) सारनाथ, (१९) गाजीपुर, (२०) महाशाल यहाँ पर कुंभ स्तूप है, (२१) वैशाली यहाँ पर ६० फीट ऊँचा स्तूप है, (२२) वज्जी—यहाँ पर बुद्धदेवने धर्मका प्रचार किया था (२३) गया, (२४) बौद्ध-गया—इस स्थान पर एक घसिहारिनने बैठनेके लिए बुद्धदेवको घास दी थी (२५) पाटलिपुत्र, (२६) राजगृह, (२७) ताम्रलिपि, (२८) कर्नुसुवर्न, (२९) उड़ीसा (३०) दक्षिण कोशल, (३१) चोल प्रदेश, (३२) द्रविड़ और कांचीप्रदेश (३३) बल्लभी (३४) महाराष्ट्र, (३५) मुल्तान, (३६) अफन्तु-सिन्धके पास, (३७) सिन्धके पास, (३८) चीनपटी—यहाँ २०० फीट ऊँचा स्तूप है, (३९) मथुरा और (४०) यहां पाटलिपुत्रमें अशोकाराम या कुक्कुटा

राम विहार है। इसके अतिरिक्त प्रस्तर स्तंभोंकी भी व्यवस्था हो रही है जो आज्ञानुसार यथास्थान स्थापित किए जायँगे।'

सम्राट इस तालिकाको सुनकर प्रसन्न हो गए। उन्होंने कहा—'आमात्यश्रेष्ठ! इन स्तूपोंको देखना चाहता हूं।'

'जो आज्ञा महाराज!'

बनावटी मनसे तिष्यरक्षिता बोली—'क्या सम्राटदेवके साथ चलनेकी मुझे भी अनुमति होगी।

वास्तवमें सम्राट विलासितासे कुछ ऊब भी उठे थे और उनके मनमें कुछ उचाट ऐसा पैदा होगया था कि कुछ समय धर्म-प्रचारके कार्यमें लगना चाहते थे और तिष्यरक्षिताके अत्यन्त सम्पर्कताके कारण उन्हें कुछ शिथिलता—अस्वस्थता—का अनुभव होने लगा था, अतः उन्होंने दो-एक महीनेके लिए राजमहिषीसे अलग रहना आवश्यक भी समझा। स्तूपोंके निरीक्षणमें तिष्यरक्षिताको साथ न लेकर, अकेले जानेमें उन्हें दो लाभ सुझाई पड़े। पहला स्वास्थ्य सुधार और दूसरा धर्मप्रचार। थोड़ी देर मौन रहनेके पश्चात् सम्राट बोले—'भद्रे! आमात्यश्रेष्ठके साथ मैं बाहर स्तूपोंके निरीक्षणका कार्य करने जाऊँगा। तुम्हारा कुणालके साथ रहकर शासनका कार्य देखनेका उत्तरदायित्व बढ़ जाता है। अतः तुम्हारा पाटलिपुत्र में ही रहना आवश्यक प्रतीत होता है।

तिष्यरक्षिता तो वास्तवमें यही चाहती भी थी, वह आनन्दमग्न हो गयी, उसका हृदय आनन्दमें धड़कने लगा। कुछ समय तक एकान्तमें कुणालको पाकर वह निश्चय ही उसे अपनी ओर आकृष्ट कर लेगी। उसे सफलता प्रतीत होने लगी। आन्तरिक आनन्दपर नियंत्रण कर वह बोली—'इस प्रकार निरीक्षण कार्यमें श्रीसम्राटदेव कितने दिनोंतक बाहर रहेंगे?'

'डेढ़ दो महीनेकी अवधिमें संभवतः कार्य समाप्त हो जायगा, भद्रे !'

थोड़ी देरमें मौन रहकर वह बोली—'जो आज्ञा सम्राटदेव !'

सम्राटने आमात्यश्रेष्ठसे कहा—'कुणालको भेजिए।'

आमात्यश्रेष्ठ युवराजको बुलवानेके लिए परिचारकको भेज ही रहे थे कि वे स्वतः आते दिखाई पड़े।

'आइए युवराज' श्रीसम्राटदेव आपको स्मरण कर रहे हैं।

आमात्यश्रेष्ठको सम्मान प्रदर्शित करते हुए युवराज सम्राटके समक्ष उपस्थित होनेके लिए उनके शयन-प्रकोष्ठमें प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने पिता और माताका चरण स्पर्श किया और विनीत भावसे पूछा—'पिताजी; आज्ञा प्रदान करें, किसलिए स्मरण किया है आपने ?'

'बेटा; दो-डेढ़ महीनेके लिए मैं बाहर दौरे पर कल जा रहा हूं, स्तूपोंके निरीक्षण कार्यके लिए। तुम राजमहिषीके साथ शासनका कार्य देखोगे।'

'जो आज्ञा पिताजी !' युवराज बोले।

'इसीलिए तुम्हें बुलवाया था। जा सकते हो।'

पिता और माताके चरणोंमें कुणाल मस्तक नवाकर चले गए। प्रातःकाल दूसरे दिन तैयार कर आमात्यश्रेष्ठ सम्राट-अशोकवर्द्धनसे जा मिले।

सम्राटके समक्ष विनत होकर वे बोले—'श्रीसम्राटदेव ! तैयारी पूरी है और रथ भी तैयार हो गया है; श्रीमान्‌जीकी प्रतीक्षाकी जा रही है।'

एक घंटेमें सम्राट तैयार हो गए और आमात्यश्रेष्ठके साथ निरीक्षण कार्यके लिये चल पड़े।

९

वृहदाकार आरसी दर्पणके समक्ष अपने शयन-प्रकोष्ठमें तिष्य-रक्षिता खड़ी हो गयी। उसे महान् आश्चर्य हुआ। आज सम्राटको बाहर गए आठ-दस दिन व्यतीत हो गए, किन्तु युवराज उसके सम्पर्कमें आकर और उसे एकान्तमें पाकर भी उसके सौन्दर्यपर आकृष्ट न हुए।

तिष्यरक्षिता चकित थी, वह अपने युगकी अपनेको सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी मानती थी और थी भी। जितेन्द्रिय सम्राट अशोक उसके सौन्दर्यपर ही तो आसक्त हो गए थे; भला इससे बढ़कर उसके सौन्दर्यका और क्या प्रमाण हो सकता था।

वह युवराजसे क्या कहे, कैसे कहे ? सोच-सोचकर उसका हृदय धड़कने लगा। वह बेचैन हो उठी।

उसने आज अपना खूब शृङ्गार किया और पुनः दर्पणके समक्ष जाकर अपना रूप देखा। आपादमस्तक अंग-प्रत्यंग उसने दर्पणमें देख डाला। कितना भव्य रूप है—सोचा उसने। एक बार तो वह शांत हुई, फिर सोचा—'देखें, आज उस पाषाण-हृदयमें इस सौन्दर्यके लिए लोभ उत्पन्न होता है, या नहीं ?'

इसी समय प्रतिहारिणी आ उपस्थित हुई और अभिवादनकर उसने निवेदन किया कि—'प्रमुख द्वार पर युवराज उपस्थित हैं !'

'उन्हें भेजो।'

वह प्रतिहारिणी बाहर चली गयी।

युवराजने प्रवेश किया। तिष्यरक्षिता बोली—'आओ युवराज ! कलसे ही तुम दिखाई नहीं पड़े।'

'इसीलिए आज इस समय चार ही बजे माताजी सेवामें उपस्थित हुआ हूँ। कल दौरेपर चला गया था; इसीलिए नहीं उपस्थित हो सका। क्षमा करें राजमहिषी-जननी !' अभिवादन करते हुए बोले कुणाल।

'युवराज ! तुम तो जानते ही हो कि मैं आजकल यहाँ अकेली ही हूँ, इसलिए जी ऊब जाता है। तुम्हारे भरोसे ही तो मैं यहाँ रुक गयी, नहीं तो मैं भी सम्राटके साथ चली जाती।'

'मैं तो इसीलिए आता रहता हूँ, माताजी ! कहीं कोई कष्ट तो आपको नहीं है ? मैं सदा ध्यान रखता हूँ मुझे नौकरों और परिचारिकाओं पर उतना विश्वास नहीं है, जितना कि मुझे स्वयं अपने पर। फिर भी मैं तो सेवाके लिए तत्पर ही हूं, जो आज्ञा हो। हाँ कल न आ सका, इसके लिए क्षमा करें। अब ऐसा न होगा। जब तक पिताजी न आ जायँगे मैं राजभवन छोड़कर बाहर न जाऊँगा।'

'उज्जैनमें मैं वेष बदलकर रात्रिमें भ्रमण किया करता था। यही सोच रहा हूं कि आजसे यहाँ भी वही कार्य किया करूँ।'

'इससे क्या लाभ है ?'

'कितनी ही बातोंका सुधार हो जाता है, माताजी ! इसका मैंने उज्जैनमें अनुभव किया है।'

अवसर पाकर तिष्यरक्षिता बोली-'ठीक है, कहो तो मैं भी साथ चला करूँ ?'

'नहीं माता ! आपको रात्रिमें कष्ट होगा।

'तुम तो साथ हो ही, और फिर प्रजाके कष्टको दूर करनेके लिए अपने कष्टको भूलना ही पड़ता है, युवराज !'

'ठीक है माताजी ! आपका कथन; किन्तु आप कहाँ चलेंगी ?'

'खैर, आज मैं तुम्हारे साथ वेष बदलकर भ्रमण करूँगी और देखती हूँ कि कितना सफल होती हूं। आज परीक्षा कर लो, कलसे

उचित समझना तो साथ ले चलना, नहीं तो बन्द हो जाऊँगी।' कह कर मुस्कुरा उठी तिष्यरक्षिता।

'अच्छा; जो आज्ञा। कुणाल बोले।

तिष्यरक्षिता कुछ आशान्वित हुई। आज वह अपनी जलन दूर करेगी, उसने प्रण किया। उसका हृदय उद्वेलित हो उठा।

युवराज बाहर जानेके लिए तत्पर हो गए। तिष्यरक्षिताने कहा—'युवराज! तुमने कुछ खाया नहीं। लो कुछ खाकर तब जाओ।'

उसने अंगूरका एक गुच्छा लाकर युवराजके समक्ष रख दिया। आत्मीयता दिखानेके लिए वह गुच्छेसे तोड़-तोड़कर अंगूर युवराजके हाथों पर रखती जाती थी और युवराज बड़े प्रेमसे खाने लगे।

तिष्यरक्षिताने मुस्कुराकर कहा—'युवराज! कांचन तुम्हें इतने प्रेमसे न खिलाती होगी।'

मौन ही रहकर मुस्कुरा पड़े युवराज।

'बोलो युवराज!'

'बोलूँ क्या माताजी! उसके और आपके प्रेममें महान अन्तर है। आपके प्रेमकी तुलना कांचनके प्रेमसे नहीं हो सकती। माताका स्नेह बड़ा हर हालतमें होता है, उसकी बराबरी भला पत्नीका प्रेम कर सकता है? ओह! माताका निःस्वार्थ प्रेम होता है।' कहा कुणालने।

एक बार तिष्यरक्षिताकी इच्छा हुई कि वह कुणालसे अपनी प्रबल आकांक्षा—प्रणय-निवेदनके लिए कह दे; किन्तु उसका साहस न हुआ। कुणालका चरित्र पवित्र और महान् था।

'युवराज! जब तुम मुझे माता कहते हो, तो मैं लज्जित हो जाती हूँ, मैं तुमसे अवस्थामें कितनी छोटी हूं।' मुस्कराकर तिष्यरक्षिता बोली।

'इससे क्या माताजी! आपका पद बड़ा। समाजमें मनुष्यका मूल्यांकन अवस्थासे नहीं होता पदसे होता है आप मेरी माता हैं। आपका पद बड़ा है।'

'ठीक है युवराज ? ठीक है।' एक क्षणके लिए वह गंभीर हो गयी। दूसरे क्षण उसने कुणालको हृदयसे लगा लिया, उसका हृदय धड़कने लगा। उसने अपनी भुजाओंमें युवराजको जोरसे दबाया।

तिष्यरक्षिताके इस आलिंगनसे युवराज चौंक पड़े। उन्होंने कुछ और ही अनुभव किया। युवराजके पवित्र और सन्देहगत मनोभावों का अनुभव कर तिष्यरक्षिताने तुरन्त अपना विचार बदल दिया और कहा—'युवराज ! तुम ठीक कहते हो माताका हृदय पुत्रके लिए विशाल होता है।'

अब युवराज, जो तिष्यरक्षिताके आचरण पर सन्देह कर चौंक पड़े थे, लज्जाका अनुभव करते हुए एक बालककी भाँति उसके हृदय से चिपक गए और उनका सन्देह जाता रहा। वे अपनेको ही धिक्कारने लगे।

कुणाल तिष्यरक्षितासे अलग होकर बोले—'माता अब जा रहा हूं। आवश्यक कार्य है।'

'अच्छा तो आज रात्रि-भ्रमणके लिए चलना है, मैं तैयार रहूंगी, तुम कब तक आ जाओगे ?'

'लगभग दस बजेतक आ जाऊँगा। ऐसा ही अनुमान है माताजी !' कहा कुणालने।

'अच्छा जाओ।' तिष्यरक्षिता बोली।

युवराजने उसे प्रणाम किया और वे बाहर चले गए।

युवराजके चले जाने पर वह फिर दर्पणके समक्ष उपस्थित हो गयी। उसके हृदयमें कितने ही विचार उत्पन्न हुए और वह बार-बार सोचती रही। उसके रोम-रोममें अंग-प्रत्यंगमें युवराजके लिए उन्माद छा गया। उसने आज युवराज के लिए उनका आलिंगनकर प्रणय-द्वार खोल दिया था, किन्तु युवराज उसके सौन्दर्य पर आकृष्ट न हुए। सौन्दर्य वह सौन्दर्य नहीं; जिसपर जितेन्द्रिय भी एक बार

विचलित न हो जाय, किन्तु 'सम्राट मेरे सौन्दर्य पर ही मुग्ध हुए थे।'—सोचा उसने।

आजकी घटनासे तिष्यरक्षिताने अनुमान किया—'मेरी सुन्दरतासे कुणालका चरित्र महान् है; अतः सौन्दर्यपर वे कभी नहीं आकृष्ट हो सकते, कभी नहीं डिग सकते। वह बेचैन होकर प्रकोष्ठमें इधर-उधर घूमने लगी। उस दिन वह अत्यधिक व्यग्र थी, युवराजको हृदय लगाकर अब वह अपनी वासना-जनित ज्वाला शान्त करेगी, किसी भी बहाने यदि उसने फिर युवराजको हृदयसे लगाया तो इस बार वह उनकी भी वासना उभार देगी और यदि एक बार भी युवराजने उसकी आकांक्षा पूर्णकी तो सदैवके लिए वे उसके दास बन जायँगे और वे सब कुछ भूलकर उसके इशारे पर चलने लगेंगे। काँचनका भी साथ छोड़कर वे उसके हो जायँगे। यदि कहीं उसकी उपेक्षा युवराजने की तो वह साम्राज्ञी है, नष्ट-भ्रष्ट कर देगी और युवराज फिर किसी कामके नहीं रह जायँगे। वे तब देखेंगे कि स्त्रीके हृदयकी वासना कितनी भयंकर होती है।

आज वह युवराजको नशेमें अभिभूत कर देगी, उन्हें जब यह ज्ञान नहीं रहेगा कि मैं तिष्यरक्षिता हूं, बल्कि मुझे कांचन होनेका ही वे निश्चय करेंगे, तब मैं अपनी आग आज बुझा लूँगी और भविष्यके लिए भी आशा बनी रहेगी।

परिचारिकाको राजमहिषीने बुलाया और कुछ मादकद्रव्य लानेका आदेश दिया।

परिचारिका चली गयी और राजमहिषीका हृदय उत्फुल्ल हो उठा। उसने ऐसा मार्ग निकाला कि अब उसकी आकांक्षा निर्विघ्न पूर्ण हो जायगी।

थोड़ी देरमें परिचारिका आयी और उसने निवेदन किया कि राजमहिषीकी सेवामें मादकद्रव्य उपस्थित है।

'अच्छा ! ठीक है, रखदो ।'

'जो आज्ञा राजमहिषी !' कहते हुए वह द्रवपदार्थ उसने रख दिया ।

तुरन्त परिचारिका चली गयी ।

ठीक समय पर युवराज रात्रि-भ्रमणके लिए उपस्थित हो गए ।

तिष्यरक्षिताने बड़ी आत्मीयतासे कहा—'आओ युवराज ! रात्रिभ्रमणके लिए तुम तैयार होकर आ गए ?'

'हाँ माताजी !'

'किन्तु मैं तो अभी तैयार न हो पायी ! तुम थोड़ा विश्राम कर लो, तबसे मैं भी तैयार हो जाऊँगी ।'

युवराज पलँग-पर लेट रहे थे कि तिष्यरक्षिताने हाथमें मादक-द्रव्य लेकर कहा—'लो युवराज मेरा आग्रह है, थोड़ा इसे पीलो ।'

उसने अपने हाथसे युवराजकी ओर पात्र बढ़ा दिया । युवराजने यह नहीं सोचा था कि यह कोई मादकद्रव्य है, पीने लगे और पी गए ।

तिष्यरक्षिताने पूछा—'कैसा है इसका स्वाद युवराज ?'

'यह बहुत स्वादिष्ट है माताजी !'

'थोड़ा और लाऊँ ?

'नहीं इतना पर्याप्त है माताजी !'

'नहीं-नहीं; थोड़ा और लो ।'—कह दूसरे पात्रमें उसने थोड़ा और दिया । युवराज उसे भी पी गए । थोड़ी देर पश्चात् वह बोली—युवराज भांग तुम पीते हो ?'

'नहीं माताजी; नशीली वस्तुएँ मैं नहीं सेवन करता ।'

'कभी तुमने भाँगका स्वाद लिया है ?'

'कभी नहीं ।'

'तो तुमने पहले ही क्यों नहीं बता दिया। इसमें थोड़ी-सी भाँग पड़ी थी।' मुस्कुराकर तिष्यरक्षिता बोली।

कुणालने मुस्कुराकर कहा—'सच ! इसमें भाँग पड़ी थी ? माताजी ?' मुझे क्या मालूम कि आप भाँग पिला रही हैं ?'

'खैर, कोई बात नहीं। इसमें नाम-मात्रके लिए भाँग है, कोई हानि नहीं होगी। नशा थोड़ी हो सकती है, किन्तु इसकी नशा बड़ी आनन्ददायक होती है, युवराज !'

'अब तो आपने पिला दिया है, देखिए।'

'अच्छा तुम थोड़ी देर लेटकर आराम करो, तब तक मैं तैयार हो आती हूँ।' तिष्यरक्षिताने कहा।

युवराज उसकी पलँग पर लेट गए। तिष्यरक्षिता चली गयी, दूसरे कक्षमें। उसने सोचा आध घण्टेमें युवराज नशाभिभूत हो जायँगे और चलनेमें असमर्थ भी; अतः उसने जानबूझकर बिलम्ब करना प्रारम्भ कर दिया।

थोड़ी देरके पश्चात् युवराजका कंठ सूखने लगा। भाँगकी नशा चढ़ने लगी, एक घण्टे पश्चात् तिष्यरक्षिताने कक्षमें प्रवेश किया। उसने देखा युवराज नशेमें आगए हैं। युवराजको बड़ी घबराहट हुई, वे मौन हो गए। नशेमें वे चलने-फिरनेमें असमर्थ हो गए। उन्हें इस दशामें पड़ा देख तिष्यरक्षिता सम्राटके प्रकोष्टमें चली गयी और परिचारिकाको बुलाकर उसने उसे सोनेके लिए जानेका आदेश दे दिया। परिचारिका चली गयी। तिष्यरक्षिता फिर सम्राटके प्रकोष्ठसे होते हुए अपने शयन कक्षमें प्रविष्ट हुई, उसने यह कार्य इसलिए किया, जिससे परिचारिकाओंको यह कदापि न पता चले, कि युवराजके साथ अपने शयन-कक्षमें राजमहिषी पड़ी हैं।

अपने शयन कक्षमें आकर तिष्यरक्षिताने सब ओरसे दरवाजोंको भीतरसे बन्दकर लिया।

युवराज भाँगके नशेमें इतने अभिभूत थे कि उन्हें यह ज्ञान नहीं रह गया कि वे अपने शयन प्रकोष्ठमें देवी कांचनमालाके साथ हैं अथवा राजमहिषी तिष्यरक्षिताके साथ उसके शयन कक्षमें।

युवराज बोले—'प्रिये ! कंठ सूख गया है···कंठ··· पानी ।'

तिष्यरक्षिता तो यही सुनना चाहती थी। आज उसका मन-मयूर हर्षसे नृत्य कर उठा। वह युवराजके निकट चली गयी।

तिष्यरक्षिता मौन थी। आज वह युवराजके प्रत्येक अंगका इच्छानुसार स्पर्शकर सकती थी।

तिष्यरक्षिता वासनाके सम्पूर्णवेगसे उद्वेलित हो उठी। जिसके लिए वह रात्रिमें, दिनमें सर्वथा उन्मादिनीकी भाँति तड़प रही थी, जिसके दृढ़ चरित्रके आगे कभी भी अपनी बातें कहनेका उसे साहस नहीं हुआ था, आज वह उसके षड़यन्त्रमें आ पड़ा है। दिन-दिनकी आकांक्षाओंकी पूर्तिका समय उसने सहज ही पा लिया है। युवराज-की बातोंमें आनन्दका अनुभवकर उनकी ओर उसने अपना हाथ बढ़ा दिया। आज उसने युवराज के मुखसे 'प्रिये' शब्द सुना था; उसके दु.खका, उसकी व्यथाका, उसकी ग्लानिका आवेग इस शब्दके सुनते ही दूर हो गया। वह बोलना चाहती थी, कि कह दे 'प्राणनाथ क्या आज्ञा है ?' किन्तु सोचा उसने बोलनेसे यदि युवराजको कहीं पता चला कि कांचन नहीं, मैं हूँ; तो सब बना बनाया कार्य नष्ट हो जायगा।

युवराज बोला—' प्रिये ! कंठ···सूख गया है, पानी···लाओ। तुम्हें नींद आ गयी है ? ··बोलो ?'

तिष्यरक्षिता बोली—'हूं।'

'पानी लाओ।' युवराज बोले।

तिष्यरक्षिताने जलपात्रमें थोड़ासा जल दिया। युवराजने जल पान किया और तब उनकी कुछ चेतना लौटी। वे कुछ प्रकृतस्थ

हुए। ज्योंही उन्होंने दृष्टिपात किया, उन्हें कामातुरा तिष्यरक्षिता समक्ष अव्यवस्थित दशामें दिखाई पड़ी।

युवराज काँप गए और उनका मन ग्लानिसे भर उठा। वे उठे और भाग जाना चाहते थे, तिष्यरक्षिता मुस्कुरा रही थी और खड़ी होकर युवराजके समक्ष बोली—'प्राणनाथ! क्यों भाग रहे हैं?' उसने वातावरण मादक बना देनेका प्रयत्न किया।

युवराजकी ग्लानि क्रोधमें बदल गयी, उन्होंने उसे जोरसे धक्का देकर गिरा दिया और बोले—'हट जा दुष्ट हृदये! सामने से! कुलटा! पापिष्टे! नीच; वेश्या कहीं की! हट जा! मैं तेरा मुँह नहीं देखना चाहता।' युवराज क्रुद्ध, लज्जित और ग्लानियुक्त थे। उनके ऊपरसे जैसे नशेका प्रभाव दूर हो गया था।

युवराजके इस व्यवहारकी तिष्यरक्षिताने कल्पना नहीं की थी, उसने सोचा था 'युवराज हमारे दास बन जायँगे—सम्राटकी तरह। वे हमारे प्रेममें पागल हो जायँगे। उसने अपना घोर अपमान देखकर कहा 'युवराज! तुमने मेरा अपमान किया है और मेरा पातिव्रत-धर्म नष्ट करना चाहा है। मैं यह सहन नहीं कर सकती। तुम्हें क्या अधिकार था, जो हमारे शयन-प्रकोष्ठमें आकर रहे और मुझे असहाय समझकर तुमने मेरे ऊपर आक्रमण करना चाहा। मैं अवश्य तुम्हारे इस अपराधका दण्ड दिलाकर ही रहूँगी। तुम युवराज हो! मैं राजमहिषी! मैं तुम्हें दिखा दूंगी कि राजमहिषीका कोप कितना भयंकर होता है। तुमने मर्यादा भंगकी है।'

युवराज सन्न हो गए, उनकी चेतना लुप्त हो गयी। वे कुछ बोल न सके।

तिष्यरक्षिता बोली—'मैं तुम्हारे इस आचरणके संबंधमें स्वयं न्याय करूँगी—पौर-सभाके सामने अथवा सम्राटसे कहूँगी।'

युवराज अब विवर्ण हो गए, स्तब्ध हो गए। सोचने लगे – 'अब क्या होगा ?'

'बोलो कुणाल ? यह सब क्या किया तुमने ? दुनियाँ तुम्हें चरित्रवान् जानती है, किन्तु तुम बड़े कामुक हो, कामवासनासे प्रेरित होकर तुमने मर्यादा भंगकी है।'

युवराज मौन थे। लज्जा, भय, ग्लानिसे संकुलित हृदयमें वे कोई विचार नहीं उत्पन्न कर सके।

'मैंने तुम्हारा आचरण इतना निन्दनीय नहीं समझा था। तुम मुझे माता कहते थे, किन्तु तुम्हारे हृदयमें पाप था, वासना थी। सारी दुनियाँ तुम्हें साधु, सच्चरित्र और जितेन्द्रिय समझे बैठी है; किन्तु तुम पाखंडी, धूर्त हो। रात्रिमें आकर तुमने मुझे अपमानित करना चाहा है ! तुम 'प्रिये', 'प्रिये' कहकर बारबार सम्बोधित कर रहे थे ? कौन जानता था कि तुम्हारे हृदयमें इतना बड़ा पाप था ?' तिष्यरक्षिता बोली।

युवराजको याद आया; उन्होंने प्रिये कहकर सम्बोधित किया है; किन्तु वे तो कांचनको कह रहे थे।

'मैं सत्य कहता हूँ माता राजमहिषी ! मैंने कांचनको समझा था।'

'वासनाका हृदयमें जब उद्वेलन होता है; तो तुम्हारी ही तरह पागल होकर प्राणी कुछका कुछ समझ लेता है, यह कोई नवीन बात नहीं है, कुणाल ? सभी अपनी मर्यादा छोड़ बैठते हैं। वही तुमने भी किया है।'

युवराजको झेंप आगयी, उन्हें पश्चात्ताप और ग्लानि हो रही थी, यह सब क्या हो गया, वे समझ नहीं पा रहे थे। उनकी भावनाओंको वाणीका रूप नहीं मिल पा रहा था।

तिष्यरक्षिता अब भी कुणालके समक्ष खड़ी थी। कुणाल सिर

नीचे किए उसके समक्ष खड़े थे; अपराधीकी भाँति।

राजमहिषीने पुनः पूछा—'बोलो, इसका तुम्हारे पास क्या उत्तर है कुणाल! यह सब मर्यादाके विरुद्ध तुमने क्यों अपराध किया?

थोड़ी देरमें कुणालकी जैसे चेतना लौट आई और वे बोले—'यह जो कुछ भी हुआ है, इसका सारा उत्तरदायित्व तुम्हारे ऊपर है। तुम्हींने रात्रि-भ्रमणके बहाने मुझे यहाँ बुलाया और रात्रिमें भांग पिला दिया। मैं नशेमें चूर्ण होगया और तुमने ही मुझे इस कक्षमें इस पलँग पर लिटा दिया। यदि तुम्हारी कलुषित भावना न रही होती, तो तू इस कक्षमें क्यों आती? मैं तो बेसुध पलँगपर पड़ा था और तुम तो चेतनावस्थामें थी?'

'ठीक है कुणाल तुम्हारा कथन, किन्तु तुमने पानी मांगा था और जब मैं तुम्हें जल दे रही थी, तभी तुमने हाथ पकड़कर मुझे खींच लेना चाहा। उस समय यदि मैं सँभल न गयी होती तो हमारा पातिव्रतधर्म समाप्त हो जाता।'

'किन्तु यदि तुम्हारा कथन सत्य है कि तुम्हारे साथ मैंने अन्याय करना चाहा, तो क्या तुमने शोर किया? इससे सिद्ध है, तुमने ही यह सब जाल रचा है, तुम्हारी स्वयं ऐसी इच्छा थी; अतः इस सारी घटनाका उत्तरदायित्व तुम्हारे ऊपर ही है।'

'शोर करती तो यह जानकर सभी तुमसे और मुझसे घृणा करते। इसीलिए मैंने मौन रह जाना ही अच्छा समझा। मर्यादाकी रक्षाके लिए ही मैं मौन थी।'

'क्या पौर सभाके समक्ष हमारे अपराधके कथनमें तुम घृणासे अपनी रक्षा कर सकती हो? तुम्हारी मर्यादा बनी रह सकती है?'

धर्मभीरु युवराजके विचारों पर उसने पुनः सोचा और कहा—'मेरी मर्यादा! हाँ यदि तुम चाहो तो एक बात कहती हूँ—'अब तुम मुझे माता न कहा करो, प्रियतम! 'प्रिये!' कहकर ही संबोधित

किया करो !' एक बार वह फिर मुस्कुराकर नग्नावस्थामें आगे बढ़ी और युवराजको हृदयसे लगाना चाहती थी।

युवराज पीछे हट गए और वहाँसे बाहर हो जाना चाहते थे।

तिष्यरक्षिताने कहा—'जाओ युवराज ! अब निश्चय ही तुम्हारे आचरणसे मुझे घृणा उत्पन्न हो गयी है। चाहे भले ही पौरसभा या सम्राटसे इस घटनाका वर्णन न करूँ, किन्तु मेरे अपमानका दण्ड तो तुम्हें भोगना ही पड़ेगा। न इस प्रकार सही, दूसरे ढंगसे, भोगना अवश्य ही पड़ेगा। जाओ।'

युवराज कुणाल रुकना नहीं चाहते थे और न उससे बातें ही करना चाहते थे। वे तुरन्त कक्षसे बाहर हो गये।

तिष्यरक्षिता लौटी। वस्त्र धारण करते हुए वह विचार-मग्न हो गयी।

युवराज धीरे-धीरे तिष्यरक्षिताके सम्बन्धमें सोचते जाते थे और उन्हें इस ओरसे जाते कोई देख न ले; बचा-बचाकर जा रहे थे अपने भवनकी ओर। अब भी युवराजके हृदयमें घोर ग्लानि थी। इस सम्बन्धमें वे किसीसे कुछ कहकर अपना मन हल्का नहीं कर सकते थे। दु:ख-सुखकी सहचरी प्राणवल्लभा काँचनमालासे भी वे इस संबंधमें कुछ नहीं कहना चाहते थे। इस निन्दनीय बातको भला वे किसीसे कैसे कहते ? उन्होंने सोचा—'अब अवश्य राजनगर पाटलि-पुत्रमें रहना उनके लिए विशेष हानिकर है। यदि कोई साधारण कारण भी दृष्टिगत हुआ तो भी उसी बहाने यहाँसे दूर हो जाना ही अच्छा है। मैं भला किस प्रकार अब इस दुष्ट-हृदयाको माता कहकर उसके समक्ष अभिवादन करूँगा। कांचनने पहले ही कहा था—'तिष्यरक्षिताका सम्राटके साथ विवाह हम लोगोंके लिए अहितकर होगा।' उस समय मैंने उत्तर दिया था 'प्रिये ! यह बात मुँहसे न निकालो। मुझे माता मिल गयी। मनुष्यका हिताहित

स्वयं उसके ऊपर ही अवलम्बित है; मैं स्वयं माता राजमहिषीके साथ ऐसा व्यवहार करूँगा कि उन्हें हमारे सम्बन्धमें अहितकर दृष्टिकोण अपनानेका अवसर ही नहीं प्राप्त होगा।

युवराजकी उदासीनता और म्लानता देखकर कांचनमाला ने पूछा—'देव ! आज आप बहुत खिन्न दिखायी पड़ते हैं।'

'हो सकता है प्रिये !

'इसका कुछ कारण अवश्य होगा देव !'

पहले युवराज सब बातें कांचनसे गुप्त रखना चाहते थे, किन्तु कांचनके विशेष आग्रहपर सब घटना ज्योंकी त्यों वे सुना गए। काँचनने दाँतोंसे जीभ दाबकर बड़ा क्षोभ प्रकट किया।

१०

सम्राट शीघ्रही निरीक्षण कार्य समाप्तकर लौट आए। वे तक्ष-शिला की ओर न जा सके। अतः कुल बीस दिनोंके प्रवासके पश्चात् ही वे राजनगर पाटलिपुत्र वापस लौट आये।

उस दिनकी घटनाके पश्चात् फिर राजमहिषीके समक्ष युवराज न आ सके। बिगड़ी हुई परिस्थितिमें सुधारवादी दृष्टिकोण अपना-कर वे सामंजस्य लाना चाहते थे। जिसका उन्होंने उसके समक्ष न आना ही एकमात्र उपाय समझा।

और तिष्यरक्षिताने समझ लिया था—कुणाल मेरे घृणित व्यवहारसे असन्तुष्ट हो गए हैं, अब वे मेरी ओर दृष्टि उठाकर देख भी नहीं सकते। उस दिनसे वह भी बहुत खिन्न रहने लगी। युवराज की उस दिनकी भर्त्सना भरी बातें आज भी उसके मर्मको पीड़ा पहुंचा रही थीं।

'कुलटा ! हट जा दुष्ट हृदये ! पापिष्टे ! नीच ! वेश्या कहींकी ! सामनेसे हट जा !' ये सब वाक्य उसे कंठ हो गए थे इसका वह एकांतमें बार-बार स्मरण करती और तब उसका स्वाभिमान जाग उठता—'राजमहिषी हूँ ! मेरा इस प्रकार अपमान ? कुणालको वाणीमें संयम रखना चाहिए था।' उसके कपोल और नेत्र अरुण वर्ण हो जाते और सारे शरीरमें उत्तेजना आ जाती; अंतमें दृष्टि स्थिरकर वह मौन हो जाती।

\+ \+ \+

'आजकल तुम कृश हो गयी हो प्रिये !'

'हाँ, सम्राटदेव ! अकेले आपकी अनुपस्थितिमें मेरा मन खिन्न रहता था।'

'क्या कुणाल नहीं आता था तुम्हारे पास ?'

'नहीं सम्राटदेव !'

कुणालका एकान्तमें नवयुवती राजमहिषीके समक्ष न आना सम्राटने उसके आचरणकी महानता समझी।

'वह महान् है भद्रे ! वह जानता है कि किसी नवयुवतीके साथ एकान्तमें रहनेसे आचरण दोषग्रस्त हो जाता है। धन्य है, कुणाल ! तभी तो दुनियाँ उसके ऊपर मुग्ध है।' कहा सम्राटने स्वाभिमानपूर्वक।

तिष्यरक्षिताने, जो कुणालकी प्रशंसा नहीं सुन सकती थी, कहा—'इसमें श्री सम्राटदेवको महानता दिखाई पड़ती है, किन्तु मुझे कुणालकी ईर्ष्या दृष्टिगत होती है। वे मुझसे दिखावटी प्रेम करते हैं, किन्तु मनमें बड़ी जलन रखते हैं। एकान्तमें क्या वे क्षण-मात्रके लिये आकर मेरा कुशल-क्षेम भी नहीं पूछ सकते थे ? और तो और, क्या उनकी पत्नी कांचनमाला भी नहीं आ सकती थीं। माना कुणालका यश मेरे सामने आनेसे नष्ट हो जाता, किन्तु कांचन को क्यों नहीं भेजते रहे ? इससे सिद्ध है देव ! वे सब मुझसे बड़ी जलन रखते हैं।'

सम्राट गम्भीर हो गए। मौन हो गए।

तिष्यरक्षिता बोली—'कांचन मुझे अब भी परिचारिकाश्रेष्ठी समझती है।'

'यह तुमने कैसे समझ लिया ?'

'मनुष्यके व्यवहारसे ही उसके हृदयगतभावोंका पता चल जाता है देव !'

'यह तो ठीक है प्रिये ! किन्तु एकाएक किसीके संबधमें भ्रान्त धारणाओंको न ग्रहण कर लेना चाहिए। कभी-कभी इससे बड़ी हानि हो जाती है।' कहा सम्राटने।

'श्रीसम्राटदेवका कथन यथार्थ है, किन्तु मनको मन पहचानता है।' तिष्यरक्षिता बोली।

'अच्छा प्रिये ! मैं इस संबंधमें यथार्थताका पता लगानेकी चेष्टा करूँगा।' बोले सम्राट उसे शान्त्वना देते हुए।

सम्राटका आगमन सुनकर युवराज उनके दर्शनोंके लिए आ उपस्थित हुए।

परिचारिकाने भीतर प्रविष्ट होनेका संकेतकर सम्राटको अभिवादन किया और बोली—'श्रीसम्राटदेवसे मिलने युवराज द्वार पर उपस्थित हैं।'

'भेजो'। बोले सम्राट।

परिचारिका बाहर गई और उसने युवराजको भेज दिया।

'आओ बेटा !' बोले सम्राट।

युवराजने सम्राटका चरण स्पर्श किया और एक बार तो तिष्यरक्षिताको प्रणाम करनेका उनका मन नहीं कह रहा था, फिर भी उन्होंने उसको भी अभिवादन किया।

'कहो कुणाल ! कोई विशेष बात तो नहीं है?' स्वाभाविक मुद्रामें सम्राट बोले।

'नहीं पिताजी ! केवल दर्शनोंके लिए चला आया हूँ।'

'राजमहिषी तुम्हारी निन्दा कर रही हैं मेरे चले जाने पर तुम इनकी खोज-खबर भी नहीं लेते रहे। इनका कथन है कि तुम कभी भी इनके पास नहीं उपस्थित हुए।'

पहला वाक्य सुनकर कुणालका हृदय काँप गया। आकृति म्लान हो गयी। तिष्यरक्षिता मुस्कुरा पड़ी, उनके बदलते हुए चेहरेको देखकर; किन्तु सम्राटके दूसरे वाक्यसे कुणाल प्रकृतस्थ हो गए। वे बोले—इधर चार-पाँच दिनोंसे मैं नहीं आ सका था, इसके पहले तो

मैं निरन्तर ही आ जाया करता था। इधर न आनेका अवसर न पाने पर भी मैं राजमहिषीका ध्यान रखता था, पिताजी ?'

'इधर आज-कल तुमने कोई विशेष कार्य नहीं किया ?'

'शिलालेख तैयार करानेके प्रयत्नमें रहा हूँ पिताजी !'

'इधर राजकार्यका प्रबन्ध कैसा चल रहा है ?'

मैं जहाँ तक समझ पा रहा हूँ, पिताजी ! ठीक ही चल रहा है। अब तो रात्रिमें भी भेष बदलकर स्वयं गुप्तचरका भी कार्य करता हूँ।

'ठीक है, तुम जा सकते हो।'

युवराजने सम्राट और राजमहिषीको सम्मान प्रदर्शित किया और कक्षसे बाहर पदार्पण किया।

सम्राट बोले—'भद्रे ! कुणालके व्यवहारसे किसी ऐसी भावनाका आभास नहीं मिला, जो तुम्हारे प्रतिकूल कहा जा सके।'

'सम्राट महान् हैं, अतः सबको महान् समझनेमें अभ्यस्त हैं। मैंने तो पहले ही कह दिया था, कि कुणालका दिखावटी प्रेम और है और हृदयमें मेरे प्रति भाव और ही हैं।'

'भाई मैं तुम्हारी इन बातों पर विश्वास नहीं कर सकता।'

तिष्यरक्षिता मौन हो गयी।

११

उस दिनकी घटनासे युवराजदेव ! मेरा मन भयभीत हो गया है। राजमहिषीकी उस दिनकी वासनापूर्ण भंगिमाका, जिसका आपने वर्णन किया था, याद आते ही मेरा कलेजा थरथरा उठता है। आपने उस उन्मादिनीको अपमानित कर उसके क्रोधको उभार दिया है, किस समय वह षडयंत्रकर आपका प्राण संकटमें डाल सकती है, कहा नहीं जा सकता। रात-दिन मैं इसी आशंकामें बेचैन हूं।' कांचनमालाने कहा।

'युवराज बोले—'नहीं प्रिये ! ऐसा न सोचो। उस दिन राजमहिषीके आचरणमें यद्यपि संयोगवश अव्यवस्था हो गई थी; किन्तु मुझे ऐसी कोई भयदायक बात नहीं दिखाई पड़ती; जिससे मेरे प्राणों का संकट उपस्थित हो जाय। सम्राटदेवके समक्ष उस दिन राजमहिषीकी भावनाओंसे पता चल गया है कि वे उस घटनाको किसीके समक्ष प्रकट न कर सकेंगी।'

'किन्तु आपने उन्हें अनेक अपशब्द कह डाला है, जिससे वे अपने अपमानका अनुभव आज भी कर रही हैं ! मैं समझती हूँ, चाहे उनकी भावना भले ही आपके प्रति गन्दी न हो, किन्तु आपको सतर्क ही रहना चाहिये ! इस सम्बन्धमें आमात्यश्रेष्ठने भी सावधान रहनेके लिए कह दिया है। आपकी प्राणरक्षाके प्रयत्नमें आमात्यश्रेष्ठ स्वयं तत्पर हैं, उनके गुप्तचरसे मुझे सब विदित हो गया है। अब रात्रिमें भेष बदलकर भ्रमणके लिए न जाया करें देव !'

'क्या माता राजमहिषी मेरे प्राणों पर आघात कर सकती हैं ? विश्वास नहीं होता प्रिये कि वे मेरे लिए इतना निष्ठुर हो जायँगी।'

'एक उन्मादिनी नवयुवती और फिर राजमहिषी ! जो वासनाके प्रबल आवेगमें मर्यादाका उल्लंघनकर अपमानित होगी, वह कितना भयंकर हो सकती है ! मुझे इसकी कल्पना है युवराज ! मैं देखती हूँ आमात्यश्रेष्ठके गुप्तचर आपके संरक्षणमें कितने सचेष्ट हैं। बिना किसी भयके वे इतने अधिक कार्यशील नहीं हो सकते।' कांचन बोली।

'प्रिये ! इसकी चिन्ता मत करो। जब तक मेरे हाथमें कृपाण है, तब तक भयका कोई कारण नहीं। दूसरी बात यह भी है कि उस दिन जब पितासे मैं मिलने गया था, तब उनको भी अभिवादन किया था; अतः मैंने जो उन्हें अपशब्द कह दिया था, मैं समझता हूँ, वह सब अब वे भूल जायँगी। मैंने उनके स्वभावमें कुछ नम्रताका अनुभव भी किया है। अतः कोई भयका कारण समझमें नहीं आता।'

'इसीलिए मैं आपको अकेले नहीं; छोड़ना चाहती। कारण इसका यही है कि आप उससे असावधान हैं और उसके हृदयमें प्रतिशोधकी ज्वाला धधक रही है। यदि आपका विचार हो, तो एक बार मैं उससे मिलकर उसके अन्तर्गत विचारोंका थाह लेते हुए अध्ययन कर लूँ।'

'यही मैं भी सोच रहा था प्रिये ! ठीक ही कहा तुमने।'

'आज मैं शामको मिलने जाऊँगी।'

युवराजने सहमति प्रकट की और कांचन राजमहिषीसे मिलनेके लिए तैयार होने लगी।

'हाँ, एक बातका ध्यान रखना प्रिये ! यदि वे कुछ खानेके लिए दें, तो उसे मत खाना और सम्प्रातको साथ लेकर भी जाना ठीक न होगा।'

युवराज्ञीने मुस्कुराकर कहा—'क्या मैं भी कोई पुरुष हूँ, जिसके ऊपर आकृष्ट होकर वह अपना जादू चलायेंगी ?'

'नहीं प्रिये ! मेरे प्राणोंका भय तो नहीं है, किन्तु तुम्हारे प्राणों

से वह अवश्य ईर्ष्या करती होगी, क्योंकि रूपमें तुम उससे कम नहीं हो।

'तभी तो समान रूप समझकर युवराज भ्रममें आप पड़ गए और राजमहिषीको कांचन समझ बैठे।' कहकर कांचन मुस्कुराई।

'उस घटनाकी स्मृति न कराया करो प्रिये! जब कभी उसकी स्मृति मानसमें आ जाती है, तो मैं लज्जा, ग्लानि और क्षोभसे व्यग्र हो उठता हूँ।'—कहते हुए युवराज गंभीर हो गए।

आपका हृदय पवित्र है युवराजदेव! यदि ऐसा न होता तो आप इसका वर्णन मुझसे न करते।' कांचनने कहा।

शयन-कक्षमें राजमहिषी तिष्यरक्षिता लेटी थी। सामने आकर प्रतिहारिणीने अभिवादन किया।

'कहो क्या चाहती हो प्रतिहारिणी?'

'राजमहिषीसे मिलने युवराज्ञी कांचनमाला द्वारपर खड़ी हैं।'

'जाओ लिवा लाओ।' कहकर तिष्यरक्षिता उठी और विचार करने लगी—'क्या कारण है? जो इतने दिनोंके पश्चात् राजमहिषी से कांचन मिलने चली है ठीक है। जिसके प्रेममें युवराज मेरी उपेक्षा करते रहे हैं हमारे और उनके प्रेमके बीच जो दीवाल खड़ी है, यदि उसे ही ढहा दिया जाय, तो कितना उत्तम होगा?'

'आओ युवराज्ञी! तुम्हारा स्वागत् है।' तिष्यरक्षिताने कहा।

कांचनने अभिवादन किया। उसका हाथ पकड़कर तिष्यरक्षिताने अपने पार्श्वमें बैठा लिया और कहा—'आज इधर युवराज्ञीका आगमन कैसे हो गया? कहीं मार्ग तो नहीं भूल गयीं।' तिष्यरक्षिता कहकर मुस्कुरायी।

मुस्कुराकर ही कांचनने भी उत्तर दिया—'क्या अपने आत्मीय-जनोंसे मिलने आना, मार्ग भूलनेका लक्षण है, माता राजमहिषी! मैं सोचती रही राजमहिषी आज आवेंगी, आज नहीं आई तो कल

आवेंगी; इसी प्रकार प्रतीक्षा करते हुए कितने दिन बीत गए, कितने माह बीत गये, किन्तु आप न आयीं न आयीं। ओह! उज्जैयिनीसे आज कितने ही दिन मुझे आए, बीत गए, किन्तु एक बार भी आप मेरे पास न आ सकीं। अग्रमहिषी असंधिमित्रा जिनका हम लोगोंपर अपार स्नेह था; जो प्राणकी तरह हम लोगों को मानती थीं, यदि वे रही होतीं, तो कितनी ही बार मिली होतीं। आपकी निष्ठुरता देख चुकने पर ही मैं आज सेवामें उपस्थित हो गयी हूँ।'

'मानती हूं, तुम्हारा कथन; युवराज्ञी! किन्तु यही शिकायत मेरी तुमसे भी है। मैं नहीं पहुंच सकी, तो तुम्हीं हमारे पास कहाँ आईं ?'

'यही तो मेरा उलाहना है कि अग्रमहिषी असंधिमित्राने हम लोगोंके समक्ष कभी अपने श्रेष्ठपदका अनुभव नहीं किया और माता-पिताकी तरह पालन किया। संतानके प्रति जो प्रेम होता है, वह अधिकारसे बड़ा होता है। अपनी महिमा भूल जाती थीं माता असंधिमित्रा।' कांचनने कहा।

तिष्यरक्षिताको अन्तिम वाक्य व्यंग्य प्रतीत हुआ। उसने सोचा- 'कांचन मेरे पदसे ईर्ष्या रखती है। वह बोली—'क्या छोटोंका अपने बड़ोंके प्रति कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है युवराज्ञी!'

'है क्यों नहीं राजमहिषी! किन्तु बड़ोंका छोटोंपर स्नेह करना परंपरासे आता हुआ सिद्धान्त है—यह न भूलिए।' मुस्कुराकर कांचनने कहा।

'किन्तु छोटोंकी श्रद्धा-भावना ही बड़ोंके हृदयमें उनके प्रति स्नेहका स्फुरण करती है, यह भी नहीं भूला जा सकता युवराज्ञी ?' तिष्यरक्षिता बोली।

यदि इसे इस ढंगसे कह लिया जाय कि बड़ोंका स्नेह ही छोटोंके

हृदयमें श्रद्धा-भावनाको उभारता है, तो आपके पास इसका क्या उत्तर है राजमहिषी ?' कांचनने कहा।

'ये सब तर्क की बातें हैं। सिद्धान्त सिद्धान्तके लिए है, आचरणके लिए उसकी उतनी उपयोगिता नहीं सिद्ध होती।' तिष्यरक्षिताने कहा।

'खैर जो भी हो, आप अपनी ज्यादती मान लें; राजमहिषी !' कहते हुए कांचन मुस्कुरा पड़ी।

'मेरा मन तो तुम्हारी ही ज्यादती मानना चाहता है, क्योंकि जो उज्जैयिनी तक दूर जा सकती है; वह यदि मुझसे प्रेम करती तो यहाँ रहकर अवश्य मुझसे मिलती।' तिष्यरक्षिता बोली।

'आप बड़ी हैं, माताजी ! अतः आप सब कुछ मान लेनेके लिए स्वतन्त्र हैं और आपकी इच्छापर मैं नियन्त्रण नहीं रख सकती।'

'रखना भी नहीं चाहिए।' तिष्यरक्षिताने कहा।

यद्यपि कांचनने शुद्ध हास्यमें कथन किया था, किन्तु तिष्य-रक्षिताको यह भी व्यंग्य प्रतीत हुआ। उसने कहा—'नियन्त्रण बड़ोंकी इच्छाओंपर रखनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिए युवराज्ञी ?' चेहरा तिष्यरक्षिताका स्वाभिमानसे अरुण हो गया।

'और यदि चेष्टाकी ही जाय माताजी ?'

'तो अव्यवस्थित आचरण समझा जायगा।'

'आचरणको अव्यवस्थित होनेसे बचानेका प्रयत्न कितने लोग कर पाते हैं, मैं नहीं कह सकती, जब इसका ध्यान स्वयं बड़ोंको नहीं रहता, तो छोटे कहाँ तक निभा सकते हैं, यह सोचनेकी बात है माताजी ?'

सहसा कुणालके प्रति किये गए व्यवहारका तिष्यरक्षिताको स्मरण हो आया और उसने सोचा उस दिनकी सारी घटनासे कांचन अवश्य अवगत है, जिससे वह हमारे ऊपर व्यंग्य कर रही है।

राजमहिषीकी आकृति म्लान पड़ गई और वह लज्जित होकर मौन हो गई।

कांचनने कहा—'रुष्ट हो गयीं माताजी? मैंने ऐसी कोई बात तो नहीं की, किन्तु यदि मेरी किसी बातसे आपको क्षोभ हो गया हो, तो मैं अपना कथन वापस लेती हूँ।'

तिष्यरक्षिता कांचनसे तो पहलेहीसे जलन रखती थी, किन्तु आजकी बातोंसे वह और भी दुखी हुई। बड़े धैर्यके उपरान्त उसने अपनेको संयत रखा और दिखावटी प्रेमसे कहा—'युवराज्ञी? रुष्ट होनेकी इसमें कोई बात नहीं है और यदि हो तो वह क्षम्य भी है।'

'हाँ, यही तो मैं भी सोच रही हूँ—आप हम लोगोंकी माता जो ठहरीं। माता का हृदय विशाल होता है, सन्तानके प्रति उसके हृदयमें बुराईके लिए स्थान नहीं होता, होना भी नहीं चाहिये। माता राजमहिषी!' कांचनमालाने गंभीर मुद्रामें कहा।

तिष्यरक्षिताने मुस्कुराकर कहा—खैर; वाद-विवाद छोड़ो, अपना कुशल-मंगल सुनाओ। आकर तमने विवाद ही प्रारंभ कर दिया। न अपना दुख-सुख सुनाया और न मेरा सुना।'

'विवाद नहीं मानिये उसे। मुझे आँख लग गयी थी। आखिर अब तो आप ही का भरोसा हम लोगोंको है। यदि आपकी निगाह इस तरह मोटी ही रहेगी, तो हम लोग कहींके न रहेंगे माताजी!' कहकर कांचनने आत्मीयता प्रकट की।

'और मुझे भी तो तुम्हीं लोगोंका भरोसा है युवराज्ञी! इसे क्यों भूल रही हो?'

'माता-पिताको भला ऐसा कौन कृतघ्नी होगा, जो भूल जायगा? राजमहिषी! कांचनने कहा।

'किन्तु युवराजने तो भुला ही दिया है। वे पहले मिलने आते थे, किन्तु अब वे भी नहीं आते।'

'उस दिन भाँगके नशेमें कुछ अशिष्टताका अनुभवकर वे लज्जित हो गए हैं, जिससे उनका साहस माता राजमहिषीके समक्ष अकेले उपस्थित होनेका नहीं पड़ना।' कहकर मन्दहाससे तिष्यरक्षिताकी ओर देखा कांचनमालाने।

तिष्यरक्षिताकी आकृति लज्जा, ग्लानि और पीलेपनसे म्लान पड़ गई। उसकी दृष्टि नीचे झुक गई। युवराजका ही दोष वह क्यों न कह दे, किन्तु फिर भी उसमें अपमान तो उसीका ही है! थोड़ी देर तक तो वह इतना व्यथित हुई कि लज्जासे चेतना-शून्य सी प्रतीत हुई। उसने सोचा—'कांचन आज उसीकी स्मृति कराने और उपहास करनेके लिए उपस्थित हुई है, और कभी तो यह नहीं आती थी? ख़ैर, इसका प्रतिशोध मैं अवश्य लूँगी, अवश्य लूँगी। अपने अपमान का बदला अवश्य लूँगी। जो कुछ हो गया था, सो तो हुआ ही, किन्तु कुणालने कांचनसे क्यों कहा और कांचनसे कहा भी तो कांचनने मेरा क्यों उपहास किया? क्यों अपमान किया? मैं दिखा दूँगी कुणाल और कांचनको, कि मेरे क्रोधमें ये दोनों भस्मीभूत हो जाते हैं या नहीं? सोचते हुए तिष्यरक्षिताने कहा—'तो आज इसी उद्देश्यको लेकर आयी हो युवराज्ञी?'

'क्या राजमहिषी?'

'यही मेरा उपहास करनेका उद्देश्य?'

'ना, ना, ना! ऐसा कदापि न ख़्याल करें, माता राजमहिषी! मैं तो आपका और युवराजका हित चाहती हूँ और इसमें आप दोनों का अपमान होगा। अतः न तो कहीं यह बात कही जायगी और न कही जानी ही चाहिए और न आपका उपहास करने ही आयी हूँ। मैं स्वयं इस प्रयत्नमें हूँ कि आप दोनोंका संकोच मिटा दूं और आप दोनोंमें जो एक दूसरेके प्रति यदि कोई भाव पैदा भी हो गया हो,

तो उसका उन्मूलन हो जाना आवश्यक है और जिससे फिर आप लोगोंके मनमें सामंजस्य स्थापित हो जाय।' कांचनने कहा।

तिष्यरक्षिताके हृदयमें कांचनकी इन बातोंका कोई प्रभाव न पड़ा। उसके हृदयमें तो प्रतिशोधकी भावना प्रबल थी। उसे वह हृदयसे न निकाल सकी, न निकाल सकी।

राजमहिषी मौन थी और सोच रही थी—'मुझे बड़ा कलंक लग गया, उस दिनकी घटना जब प्रसार पा जायगी, तो मैं अपना मुँह कैसे दिखाऊँगी–श्रीसम्राटदेवके सामने ! यदि उन्हें इस घटनाका पता चला; तब क्या होगा ? निश्चयही वे भी मेरा परित्यागकर देंगे और फिर मेरा जीवन सर्वदाके लिए बर्बाद हो जायगा और कोई उपाय नहीं है, जो आनेवाली विपत्तियोंको टाल सके। यदि कुणाल और कांचनमालाको समाप्त कर दिया जाय तो उस दिनकी घटना जहाँकी तहाँ दबी पड़ी रह जायगी।'

इस प्रकार आनेवाली भविष्यकी तीव्र आशंकासे वह अत्यन्त भयभीत हो गयी।

एक गलतीको छिपानेके लिए मानव दूसरी गलतीकर बैठता है और तब उसका अपराध गुरुतर हो जाता है। मन्दबुद्धि मानव गलतीका सुधार फिर गलती करके करना चाहता है, किन्तु अपराधों का सुधार अपराधों से कहाँ हुआ ? बार-बारका अपराध मानवका शीघ्र पतनकर देता है; जैसे लोहेसे उत्पन्न मुर्चा लोहेको खा जाता है। तिष्यरक्षिता कांचन और कुणालको शीघ्र समाप्तकर अपने अपराधका–उस दिनकी घटनाका–सुधार करना चाहती थी। कांचनमालाको विनम्र देखकर उसे अवसर मिला।

कांचनमाला बोली—'अच्छा माता राजमहिषी ! मुझे आज्ञा प्रदान करें। जाना चाहती हूँ।' उठकर वह खड़ी हो गयी।

'बैठो युवराज्ञी ! अभी तो तुम्हें कुछ खिलाया भी नहीं। तुमने

आते ही ऐसा विषय छेड़ दिया कि मैं अपनी सफाई देनेमें ही लग गयी और तुम्हें कुछ खिलाने-पिलानेका ध्यान ही न रहा।' तिष्य-रक्षिताने कहा।

'मुझे आपकी ममता चाहिए राजमहिषी माता! बस उसीकी भूख है।' कांचनमाला बोली।

'ठीक है युवराज्ञी! ममताके ही अन्तर्गत खान-पान भी है; बल्कि मैं तो इसका महत्व सबसे अधिक समझती हूँ। मेरी दृष्टिमें इसीकी प्रधानता है।'

'और मैं ममताको खान-पान तक ही नहीं सीमित रखना चाहती। मेरी दृष्टिमें खान-पानकी नहीं, ममतामें शुद्ध प्रेमकी प्रधानता होती है। माता।'

'युवराज्ञी! मैं पुनः विवादमें नहीं पड़ना चाहती। बैठो, थोड़ा जलपान कर लो; तब बातें होंगी।'

'इस समय मुझे क्षमा करें। फिर कभी आऊँगी तो··· ।'

तिष्यरक्षिता उठी और एक पात्रमें थोड़ा अंगूरका रस लाने स्वयं चली गयी। कांचन चलनेके लिए उठी थी; पुनः बैठ गयी। थोड़ी देरमें तिष्यरक्षिता लौटी और कांचनके समक्ष एक छोटेसे पात्रमें अंगूरका शर्बत उसने रख दिया।

'कुछ भी उसके हाथसे न खाना' युवराजकी इस बातसे उसके हृदयमें आशंका हो गयी थी। उसने प्रकट कहा—'इस समय मेरी इच्छा कुछ भी खाने-पीनेकी नहीं है, माता राजमहिषी; क्षमा करें।'

'किन्तु मेरी इच्छा है कि मैं तुम्हें यह शर्बत तो पिला ही दूं युवराज्ञी!'

'खान-पानमें स्वेच्छाको ही प्रमुखता मिलती है, इसे याद रखें।' कहते हुए मुस्कुरायी कांचनमाला।

'किन्तु स्वाद और मात्राके संबंधमें इसका विचार होता है, युवराज्ञी; यहां तो प्रेम-अपमानका प्रश्न है।

'मैं बिना कुछ खाए भी आपके प्रति सद्भावना रख सकती हूं, इसमें आप अपमानका अनुभव कदापि न करें।' कांचनने कहा।

'नहीं, नहीं यह तो युवराज्ञीकी ज्यादती है।'

'ज्यादती नहीं माताजी, यदि आपका यही कथन है तो फिर कभी आनें पर आपकी इच्छानुसार कार्य करूँगी। आज क्षमा करें।' कहते हुए तिष्यरक्षिताको अभिवादनकर कांचनमाला प्रकोष्ठके बाहर चली गयी।

आज तिष्यरक्षिता सम्पूर्ण बखेड़ा दूर कर देना चाहती थी, किन्तु वह सफल न हुई। उसने शर्बत फेंक दिया और सोचा—'यदि विष देनेमें सफल नहीं हुई, तो किसी अन्य उपायसे कार्य करना है।

१२

'राजमहिषी ! मैं और मेरे अनुचर युवराजको मारनेमें सफल न हो सके। समक्षयुद्धमें हमलोग उन्हें पराजित नहीं कर सकते।' रुद्रसेनने कहते हुए तिष्यरक्षिताके समक्ष मस्तक नवा दिया।

'तब क्या कर सकते हो।? मुझे तो तुम्हारी वीरतापर पूर्ण विश्वास था; रुद्रसेन !' तिष्यरक्षिताने गंभीरतासे कहा।

'सम्राज्ञीका कार्य किसी अन्य उपायसेही करना होगा। यही सोच रहा हूँ।'

'क्या ? क्या उपाय है; सुनूँ !'

'यदि आज्ञा हो तो कुणालके स्थान पर युवराज्ञी कांचनाको ही फँसाया जाय।'

'हाँ; रुद्रसेन ! मुझे तो दोनोंका वध बारी-बारीसे करा देना है।' तिष्यरक्षिता बोली।

'जो आज्ञा।' कहते हुए हाथ जोड़कर रुद्रसेनने मस्तक नवा दिया।

'जा सकते हो रुद्रसेन !'

रुद्रसेन जाने लगा। द्वार तक जा चुका था। राजमहिषीने पुनः उसे सम्बोधित किया—'रुद्रसेन ?'

'हाँ साम्राज्ञी ?'

'सुनो; यह कार्य गुप्त और सावधानीसे करना है; और पूर्ण पुरस्कार मिलेगा, समझे ?'

'जी श्रीमतीजी ! अवश्य यह कार्य अत्यन्त गोपनीय है। रही बात पुरस्कारकी, उसे मैं श्रीमतीजी की अनुकम्पासे ही सन्तुष्ट हूँ, मैं इसे ही सबसे बड़ा पुरस्कार मानता हूँ।'

'नहीं रुद्रसेन ! केवल मौखिक अनुकम्पासे ही काम नहीं चलता; मैं इसके अतिरिक्त पुरस्कृत भी करना चाहती हूँ ।'

रुद्रसेनने सम्मान प्रदर्शित किया ।

'अच्छा जा सकते हो रुद्रसेन !'

रुद्रसेनने राजमहिषीको अभिवादन किया और प्रकोष्ठके बाहर प्रस्थान किया ।

चौथे दिन तिष्यरक्षिताके समक्ष रुद्रसेन सैनिक वेशमें पुनः उपस्थित हुआ । तिष्यरक्षिता बोली—'कहो रुद्रसेन ! क्या समाचार लाए ?'

'साम्राज्ञीकी आकांक्षा आधी पूरी हुई ।'

'क्या तात्पर्य है, तुम्हारे कथनका ?'

'यही कि युवराज्ञी कांचनमाला आपके गुप्त बन्दीगृहमें पड़ी हैं ।'

तिष्यरक्षिताका हृदय आह्लादसे भर गया। उसने पूछा—'रुद्रसेन; इस कार्यमें कैसे सफल हो गए ?'

'जब युवराज कुणाल देवी कांचनमालाके साथ भीषण वनस्थली में आखेटके लिए चले गए थे, तब हमारे आदमियोंने उनसे युद्ध किया । युद्धमें युवराज कुछ विशेष घायल भी हो गए हैं । मारे तो नहीं जा सके; किन्तु अवसर पाकर हमारे सैनिकोंने युवराज्ञीको बंदी बना लिया । मार तो डाला जाता उन्हें वहीं, किन्तु मैंनें सोचा—शत्रुका वध स्वयं साम्राज्ञी अपने समक्ष कराएँ, इसमें उन्हें प्रसन्नता का अनुभव होगा ।'

'ठीक है रुद्रसेन ! तुम्हारी सेवाओंसे मैं सन्तुष्ट हूँ । जाओ एक खड्गधारी चाण्डालको तुरन्त बुला लाओ ।'

'जो आज्ञा श्रीमतीजी ।' कहकर अभिवादन करते हुए रुद्रसेन चला गया ।

थोड़ोही देरमें साम्राज्ञी के समक्ष एक भयानक आकृतिवाले

चांडालको साथ लेकर रुद्रसेन आ पहुंचा। इन लोगोंको साथ लेकर तिष्यरक्षिता बन्दीगृहके द्वारपर पहुंची। बन्दीगृहका दरवाजा खुला था। वहाँ कांचनमाला नहीं थी। रुद्रसेनका प्राण सूख गया। वह घबरा गया।

तिष्यरक्षिताने पूछा—रुद्रसेन ! 'काँचन कहाँ है ?'

'आश्चर्य है साम्राज्ञी ! आश्चर्य ! वन्दीगृहमें काँचनको डालकर ताला मैंने स्वयं वन्द किया था। किसने ताला खोला ? मैं समझ नहीं पा रहा हूँ।' रुद्रसेनकी ध्वनिमें कुछ घबराहट थी।'

'क्या तुम कांचनको यहां वास्तवमें बन्दी बना गए थे ?' साम्राज्ञीको सन्देह होने लगा था, अतः सन्देह व्यक्त करते हुए उसने पूछा।

'क्या साम्राज्ञी अपने सन्देहका निवारण मेरी बातों पर विश्वास-कर नहीं कर सकतीं ?'

'नहीं रुद्रसेन ! सन्देहसे अधिक मुझे आश्चर्य है कि इस बन्दी-गृहसे किसने कांचनको मुक्त कर दिया ?'

तीनों लोट पड़े।

उधर कांचनमालाका साथ छूट जानेसे युवराज बड़े दुःखी हुए। अचानक कांचन लुप्त हो गई, यह सोचकर युवराज अपने शरीर पर लगे आघातोंको भूल गए और शीघ्रतासे कांचनका पता लगानेमें तत्पर हो गए। राजभवन पहुंचकर उन्होंने प्रतिहारीको आदेश दिया कि इसी समय आमात्यश्रेष्ठको उपस्थित करो।

प्रतिहारी चला गया। उस समय आमात्यश्रेष्ठसे वह मिल न सका। उसे पता लगा, इस समय आत्मात्यश्रेष्ठ अत्यन्त व्यस्त हैं, वे पता नहीं कहाँ हैं।

प्रतिहारी लौट आया। आकर युवराजसे उसने निवेदन किया।

युवराजने मनमें सोचा—आमात्यश्रेष्ठके यहाँ आते-आते कांचन

कहाँसे कहाँ चली जायगी; निश्चय ही मेरे हितमें तत्पर शुचिस्मिता प्राणबल्लभा कांचनके प्राणों पर संकट उपस्थित है। मैंने यदि वहीं प्राण दे दिया होता, तो वह उत्तम होता, किन्तु कांचनको खोकर मैं हत्भाग्य यहाँ किस आशासे चला आया ? हाय ! मेरी प्राणप्रिया राजनगरके कुछ विद्रोहियोंके कुचक्रमें पड़कर कैसी यातना सह रही होगी। संभव है, उसने अब प्राण भी त्याग दिया होगा; अथवा मेरे हितमें तत्पर रहनेवाली बेचारी कांचनको विद्रोहियोंने ही मार डाला हो। अब क्या करूँ ? किन्तु यह कार्य कायरता और विलाप करनेसे नहीं हो सकता। शत्रुओंका पता लगाना और उनका दमन करना इस समय प्रमुख कार्य है और यह कार्य शीघ्र होना चाहिए। सोचते हुए युवराजके हृदयमें वीरताका स्फुरण हुआ। उनके विचारों में शिथिलता उत्पन्न करते हुए प्रतिहारीने निवेदन किया—'देव ! प्रमुख द्वारपर मिलने आमात्यश्रेष्ठ उपस्थित हैं।'

युवराज स्वयं उठ खड़े हुए और द्वारपर आमात्यश्रेष्ठको पाकर प्रकोष्ठमें लिवा ले आए। आमात्यश्रेष्ठ बोले—'युवराजदेव ! आहत हो गए हैं ?'

'हाँ आमात्यश्रेष्ठ ! वृद्धवर ! मुझे आहत होनेकी व्यथा उतनी नहीं है, जितनी काँचनके लिए। अभी आपकी सेवामें एक परिचारक भेजा था, किन्तु आपसे उसकी भेंट न हो सकी।'

'हाँ युवराजदेव ! ठीक है, मैं कांचनकी खोजमें बहुत व्यस्त था।'

'क्या उससे आपकी भेंट हुई ?'

'हाँ युवराजदेव ! वे आरही हैं। बन्दीगृहमें पड़ी थीं।'

'बन्दीगृहमें ?'

'हाँ श्रीमन्त। साम्राज्ञीके गुप्त बन्दीगृहमें वे बन्दी थीं।'

युवराजके आश्चर्यकी सीमा न रही। वे आँखे मस्तकपर फैलाकर बोला—'माता तिष्यरक्षिताके गुप्त बन्दीगृहमें ?'

'हाँ युवराज ! मैं आप तथा साम्राज्ञीकी सभी बातों और घटनाओंसे अवगत हूं। आपसे अपमानित होकर किस प्रकार आपके अहितमें वे तत्पर हैं, मैं यह भी जानता हूँ। इसीलिए आपसे परामर्श करनेके लिए उपस्थित हुआ हूँ।'

युवराज मौन होकर दृष्टि नीची किए हुए सोच-मग्न हो गए।

'मैं युवराजदेवके हितकी कामनासे इन सभी घटनाओंका निवेदन श्रीसम्राटदेवके समक्ष करना चाहती हूँ !'

नहीं वृद्धवर ! इन घटनाओंको अपने तक ही सीमित रखकर आप मेरा हित करें। मैं नहीं चाहता कि माता तिष्यरक्षिताके बैरका अन्त बैरसे करूँ। वे मेरी माता हैं, अपने पवित्र कर्त्तव्योंसे ही अपने प्रति उनके हृदयमें उत्पन्न हुई बुराइयोंका मैं अन्त कर देना चाहता हूं, चाहे वे मेरे अहितमें सदैव ही तत्पर क्यों न हों; इस कार्यमें मुझे बिना आपकी सहायताके सफलता नहीं मिल सकती, क्योंकि उनके रोषसे आपही मेरी रक्षा कर सकते हैं।'

'मुझे इन सभी घटनाओंके सम्बन्धमें श्रीसम्राटदेवको अवगत करा देना आवश्यक प्रतीत होता है।' आमात्यश्रेष्ठने कहा

'किन्तु आमात्यश्रेष्ठ ! माता तिष्यरक्षिताको अपराधिनी प्रमाणितकर मैं कोई लाभ नहीं देख रहा हूं। राजमहिषीको कलंकित प्रमाणितकर हम कलंकसे नहीं बच सकते। अतः यह मौर्य साम्राज्य के अपमानका महत्वपूर्ण विषय है।'

आमात्यश्रेष्ठ मौन हो गए। युवराज कुणाल पुनः बोले—'मैं यही चाहता हूं कि इस प्रकारकी सारी घटनाएँ अत्यन्त गुप्त रखी जायँ और आपही तक सीमित रहें।'

'अच्छा युवराज्ञीको अभी मैं आपके समक्ष उपस्थित करने जा

रहा हूं।' कहकर आमात्यश्रेष्ठ प्रकोष्ठके बाहर चले गए। एक घड़ीमें कांचनमालाको साथ लेकर आमात्यश्रेष्ठ आ पहुंचे।

तिष्यरक्षिता सम्राट अशोकवर्द्धनके प्रकोष्ठमें गई। सम्राट चिन्तित दिखाई पड़ रहे थे। उनकी मानसिक अशान्ति देखकर उसने मुस्कुराकर पूछा—'देव चिन्तित दिखाई पड़ रहे हैं।'

'हाँ प्रिये! चिन्ताका विषय ही उपस्थित हो गया है। युवराज-आखेटके लिए गए थे, वहाँ राजनगरके कुछ विद्रोहियोंने उन्हें आहत कर दिया।' युवराज्ञी कांचनमाला भी उनके कुचक्रमें जा पड़ी थी।'

तिष्यरक्षिता कम्पित हो गई, उसकी आकृति म्लान पड़ गई, हृदय धड़कने लगा। यदि इसी समय सम्राटने उसकी ओर दृष्टिपात किया होता, तो वे निश्चय ही युवराजके शत्रुओंकी खोजकर लेते। मानसमें उठनेवाले विचारोंको सुसंयतकर वह बोली – 'कैसा कुचक्र देव! आखेटके लिए युवराजदेव अकेले गए थे क्या?'

'नहीं भद्रे! उनके साथ संरक्षक भी थे, किन्तु संयोगसे उनका साथ छूट गया और ऐसा प्रतीत हो रहा है कि राजनगरमें कुछ विद्रोहियोंकी शक्ति बढ़ रही है, जो राजपुरुषोंके अहितमें तत्पर है। इन्हीं लोगोंने युवराजको अकेले पाकर उसपर आक्रमण कर दिया और कांचनको भी पकड़ लिया।'

'कांचनको पकड़ लिया?' इस प्रकार प्रश्नसूचक वाणीमें तिष्य-रक्षिताने कहा जैसे वह कुछ जानती ही नहीं।

'तो क्या अभी कांचनका पता नहीं चला सम्राटदेव?'

'पता तो चला प्रिये! आमात्यश्रेष्ठके प्रयत्नसे उसके प्राण बचे हैं।'

'तो विद्रोहियोंका पता भी आमात्यश्रेष्ठने लगा लिया होगा?'

'अभी तो विद्रोहियोंका कुछ नहीं पता लगा, किन्तु आमात्यश्रेष्ठ, काँचनमाला तथा कुणालके प्रयत्नसे ऐसा प्रतीत होता है—अवश्य

पता लग जायगा। पता लग जानेपर ही शत्रुओंको समूल नष्ट किया जा सकता है।'

तिष्यरक्षिताको विश्वास हो गया कि अभीतक सम्राटको उसके षड़-यंत्रका पता नहीं है, किन्तु शत्रुओंके समूह नष्ट होनेकी योजना सुनकर उसका हृदय काँप गया। सबसे अधिक रोष उसे आमात्य-श्रेष्ठपर हुआ, क्योंकि उन्होंने ही उसके प्रयत्नको विफलकर दिया था और अब उसके पीछे पड़े हैं। युवराजका सबसे बड़ा शत्रु राज-महिषी है, एक न एक दिन इसका पता अवश्य लग जायगा। यह सब सोचकर वह चिन्तामें पड़ गयी। 'आमात्यश्रेष्ठसे अब सदैव सावधान रहना है।' तिष्यरक्षिताने सोचा।

तिष्यरक्षिताकी म्लान आकृति देखकर सम्राटने कहा—'प्रिये ! आज जबसे इस प्रसंगकी बात हुई है, तबसे मैं तुम्हें खिन्न देख रहा हूं। तुम्हारी मानसिक अशान्तिका क्या कारण है ?'

तिष्यरक्षिताने सोचा सम्राटके अनुभवी नेत्रोंने उसकी मानसिक स्थितिका अध्ययनकर लिया है, अतः यह कह देना कि मुझे कोई अशान्ति नहीं है, उचित न होगा ! अपने हृदयको सँभालकर वह बोली—'सम्राटदेव ! जबसे इस घटनाका कथन आपने किया, मुझे युवराज तथा युवराज्ञीके प्रति किए गए विद्रोहियोंके आक्रमणसे बड़ा आघात पहुंचा है।'

'तभी तो सोचता हूं प्रिये ! तुम्हारा हृदय विशाल है, तुम महान् हो। तुम्हारा चित्त बड़ा कोमल है।' कहा सम्राटने।

'युवराज ही हम लोगोंके प्राण हैं देव। भला उनके ऊपर संकट उपस्थित होनेपर हम कैसे धैर्य रखें ?'

'यथार्थ है भद्रे !'

युवराज और युवराज्ञीके प्रति सहानुभूति देखकर सम्राटको तिष्यरक्षिताके प्रति बड़ा सन्तोष हुआ; किन्तु तिष्यरक्षिताके अन्तः-करणमें ज्वाला धधक उठी, जिसे सम्राटने युवराजके शत्रुओंके प्रति राजमहिषीका रोषपूर्ण आवेग समझा।

●

१३

'कहिए आमात्यश्रेष्ठ ! विद्रोहियोंका कुछ पता चला ? उस दिनसे जब युवराजके ऊपर उन लोगोंने आक्रमणकर दिया था, मैं चिन्तामें पड़ गया हूँ।' सम्राट बोले।

'हाँ सम्राटदेव ! यह चिन्ताका विषय ही है। अभी तक छान-बीनकी जा रही है। विद्रोहियोंका पता तो अभी नहीं चला, किन्तु पता लगानेके लिए गुप्तचर कार्यरत हैं देव !'

परिचारकने प्रकोष्ठमें प्रवेशकर सम्राट और आमात्यश्रेष्ठको अभिवादन किया और कहा—'देव ! तक्षशिलासे संदेश-वाहक आया है; किसी विशेष कार्यसे श्री सम्राटदेवसे तत्काल मिलनेके लिए प्रमुखद्वार पर वह उपस्थित है।'

'उपस्थित करो उसे।' सम्राटदेव बोले।

'जो आज्ञा' कहते हुए मस्तक नवाकर वह बाहर चला गया। संदेशपायक प्रकोष्ठमें प्रविष्ट हुआ। उसने दोनों श्रीमानोंको भूमिमें मस्तक नवाकर अभिवादन किया।

'क्या समाचार लाए हो दूत !'

संदेश-पायकने आमात्यश्रेष्ठके हाथोंमें तक्षशिलाधीशका पत्र जो भोजपत्रपर लिखा था, थमा दिया। आमात्यश्रेष्ठने पत्र पढ़कर सम्राट्को सुनाया। पत्रमें तक्षशिला नगर-निवासियों द्वारा गोपकचन्द्रभालके नेतृत्वमें भीषण विद्रोहका उल्लेख था। तक्षशिलाधीशने विद्रोहको दबानेमें अपनी असमर्थता प्रकटकी थी और सम्राटदेवके स्वयं आने-की कुछ सेनाके साथ, प्रार्थनाकी थी। यदि विद्रोह शीघ्र नहीं दबाया गया, तो तक्षशिला पर विद्रोहियोंका अधिकार अवश्य हो जायगा।

सम्राट बोले—'आमात्यश्रेष्ठ ! कलही राजसभाका आयोजन होना चाहिए।'

'जो आज्ञा देव !'

अभिवादनकर परिचारक चला गया और आमात्यश्रेष्ठ भी चले गए।

दूसरे दिन राजसभाका आयोजन हुआ। नगरके प्रमुख व्यक्ति, प्रधान कर्मचारी एवं अनेक श्रेष्ठ पुरुष उपस्थित हुए। युवराज कुणाल, राज्य परिवारके अन्य व्यक्ति तथा आमात्यश्रेष्ठ अपने-अपने आसनोंपर जा बैठे। सम्राट अशोक स्वर्णसिंहासन पर विराजमान हुए। सभाका कार्यक्रम उपस्थित किया गया। सम्राटने कहा—'आमात्यश्रेष्ठ ! सभाकी कार्यवाही प्रारम्भ करें।'

आमात्यश्रेष्ठ उठ खड़े हुए और बोले—'प्रियदर्शी श्रीसम्राटदेव तथा उपस्थित सज्जनों ! मौर्य साम्राज्यके अन्तर्गत तक्षशिला एक प्रभावशाली और महत्वपूर्ण प्रदेश है। इस प्रान्तके नागरिकोंमें अद्भुत वीरता एवं आत्मसम्मानका भाव है। वहाँके नागरिकोंने विद्रोह कर दिया है। यद्यपि वहाँ अनेक बार विद्रोह हुए हैं, किन्तु इस बार गोपकचन्द्रभालके नेतृत्वमें सभी नागरिक सुसंगठित प्रयासोंसे विद्रोह पर विद्रोह करते जा रहे हैं, राजकर्मचारी विद्रोह का दमन करनेमें अपनेको असमर्थ पा रहे हैं। तक्षशिलाधीश द्वारा भेजे गए इस सन्देशको पाकर हम चिन्तामें पड़ गए हैं।

'ठीक कहते हैं आमात्यश्रेष्ठ ! पिताजीके समयमें स्वयं एक बार जाकर मैंने विद्रोह दबाया था। वहाँके लोग बड़े स्वाभिमानी हैं।' सम्राट ने कहा।

'सोचता हूँ, महाबलाधिकृत एक विशाल सेनाके साथ स्वयं विद्रोह-दमन करने जायँ। आमात्यश्रेष्ठ ने कहा।

'मेरा ही वहाँ जाना उचित जान पड़ता है। मेरे बिना गए विद्रोहका दमन कठिन प्रतीत होता है।' सम्राटदेव बोले।

तिष्यरक्षिताको सम्राटदेवकी बातोंसे चिन्ता हो गयी, किन्तु वह बोल न सकी।

'किन्तु सम्राटदेवके वहाँ जानेसे राजनगर उदासीन हो जायगा। अच्छा होता, मुझे ही वहाँ जानेकी अनुमति मिल जाती।' युवराज कुणाल बोले।

'तुम्हारा पराक्रम अकथनीय है और तुम योग्य भी हो, किन्तु संभव है, बल प्रयोगसे न काम लेना पड़े; अहिंसात्मक ढंगसे ही सफलता मिल जाय और इस नीतिको देखते हुए मुझे ही जाना आवश्यक प्रतीत हो रहा है।' सम्राटदेवने कहा।

'जो आज्ञा देव!' कहते हुए कुणाल बैठ गए।

'आमात्यश्रेष्ठ! मेरे प्रवासकालमें राज्य संचालनका सम्पूर्ण भार आपपर होगा और राज्याज्ञा प्रस्तुत होगी—साम्राज्ञी तिष्यरक्षिता द्वारा।'

मस्तक नवाकर सम्राटके समक्ष आमात्यश्रेष्ठने अपनी स्वीकृति दी। आमात्यश्रेष्ठ काँप गए, उन्होंने सोचा—'मुझे कलुषित हृदय साम्राज्ञीकी आज्ञा माननी पड़ेगी?'

तिष्यरक्षिता युद्धकी विकरालता समझकर काँप गयी। उसने सोचा—'युद्ध अनिश्चित होता है। किसकी विजय होगी, नहीं कहा जा सकता। कहीं ऐसा न हो कि युद्धमें सम्राटदेवके प्राण संकटमें पड़ जायँ। अतः इनका युद्धमें जाना ठीक न होगा। दूसरे ही क्षण वह फिर सोचने लगी–'सम्राटके चले जानेपर राजाज्ञा प्रस्तुत करनेका मुझे अधिकार मिल रहा है, इसका लाभ तो हमें अवश्य ही होगा। इसी दुविधामें पड़ी वह कुछ भी निश्चय न कर सकी; अतः वह मौन ही रह जाना अच्छा समझने लगी।

सम्राटदेव पुनः बोले—'महाबलाधिकृत!'

'आज्ञा सम्राटदेव!'—महाबलाधिकृत बोला।

'आप मेरे साथ तक्षशिला जानेके लिए दस सहस्र योद्धाओंको भेजनेका प्रबन्ध करें। आत्म-रक्षाके लिए यह आवश्यक समझता हूँ, पहले शान्ति और अहिंसात्मक ढंगसे विद्रोहका दमन किया जायेगा, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर बलका भी प्रयोग हो सकता है।' सम्राटने कहा।

मस्तक नवाकर महाबलाधिकृतने कहा—'जो आज्ञा सम्राटदेव!'

सभाका कार्यक्रम समाप्त हुआ। तिष्यरक्षिताके साथ सम्राट शयनप्रकोष्ठमें आए। युद्धमें प्राणोंका भय सोचकर तिष्यरक्षिता चिन्ताग्रस्त हो गई। उसकी मुखश्री म्लान देखकर सम्राट बोले—'प्रिये ! तुम चिन्तित क्यों दिखाई पड़ती हो ?'

'तक्षशिलामें हुए विद्रोहका दमन करने स्वयं सम्राटदेव जा रहे हैं, यह मुझे सहन नहीं है। युद्धकी आशंकासे मेरा कलेजा काँप उठता है।'

'किन्तु प्रिये ! तक्षशिलामें परम्परासे फहराता हुआ मौर्यध्वज डगमगा रहा है। इसकी रक्षाके लिए वहाँ मौर्यशक्तिमें जो शिथिलता आ गयी है, उसे दूर करनी ही है।'

'यह कार्य तो आप यहाँ रहकर भी कर सकते हैं, सम्राटदेव !'

'कैसे भद्रे !'

'किसी औरको भेजकर।'

'तुम्हारा तात्पर्य ?'

'युवराज कुणालको। मैं समझती हूँ, बड़ी योग्यतासे वे कार्य पूर्ण कर सकते हैं देव।'

'क्या युवराजके प्राण प्रिय नहीं हैं भद्रे ?'

'सो बात नहीं देव ! आप वृद्ध हो चले हैं और युवराजके पराक्रम प्रदर्शनका यह समय है। आपको अब आराम करना चाहिए। अपने राज्यसीमाका जो विस्तार किया है, उसके संरक्षणका कार्य युव-

राजपर ही अवलम्बित है, किसी और उद्देश्यसे मैंने सम्राटदेवके समक्ष निवेदन नहीं किया है।' तिष्यरक्षिता बोली।

राजमहिषी तिष्यरक्षिता चाहती थी, कि युद्धमें जहाँ प्राणोंका भय है, वहाँ अवश्य युवराजको भेज देना चाहिए। यदि युवराजके प्राणोंका युद्धमें अन्त हो जाता है, तब मौर्यसाम्राज्यका उत्तराधिकारी होनेका उसके गर्भसे उत्पन्न सन्तानको ही अवसर प्राप्त होगा और सबसे बड़ी बात है कि युवराजको दूर भेजकर वह अपने षड़यन्त्रमें सफल भी हो सकती है। निकटमें रहकर उसका षड़यन्त्र कभी सफल नहीं हो सकता।

सम्राटदेव मौन हो गए। तिष्यरक्षिताने सोचा—'मेरी बातोंका सम्राटदेवपर प्रभाव पड़ा है, वे सोचने लगे हैं।' अवसर पाकर उसने सम्राटके प्रति अपने हृदयमें अधिक प्रेम दिखानेका प्रयत्न किया। वह बोली—'देव ! मुझे आपका वियोग असह्य है ! इसे न भूल जायँगे।'

'नहीं; भद्रे ! यह जानता हूँ मैं। तुम्हारे हृदयमें मेरे प्रति ममता यदि न रही होती, तो तुम मेरे लिए इतना महान् त्याग करती ही क्यों ?

'यही तो मैं अवश्य समझती हूँ कि सम्राटदेवकी सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि हमारे हृदयमें उमड़ती हुई प्रेमधाराको अवश्य पहचानती है और श्रीसम्राटदेव इसका मूल्य भी समझते हैं।'

क्यों नहीं आर्ये ! तुमने मेरे जीवनकी उदासीनता दूर की है, तुम विशाल हृदय हो। तुम्हारे बिना मेरा नीरस जीवन कठोरतामें परिवर्तित हो जाता और शायद मैं कितनी ही त्रुटियोंका पात्र हो जाता।'

'इतना अधिक महत्व इस दासीको न दें देव !' कहकर मुस्कुरा पड़ी तिष्यरक्षिता।

उसे हृदयसे लगाकर सम्राट बोले—'प्रिये ! मैं तुम्हें दुःखी नहीं देख सकता।'

'तक्षशिला जानेके लिए श्रीसम्राटदेवने क्या निश्चय किया ?'

'मेरा वही निश्चय है भद्रे ; जो तुम्हारी आज्ञा होगी।'

'मैं तो यही चाहती हूं कि श्रीसम्राटदेव युवराजको पराक्रम-प्रदर्शनका अवसर प्रदान करें। इसमें साम्राज्य और स्वयं युवराज की भलाई है। 'तुम्हारा कथन ठीक है प्रिये ? अभी युवराजको बुलवाता हूँ।'

सम्राटने परिचारिकाको युवराजके बुलानेकी आज्ञा प्रदान की। थोड़ी ही देरमें युवराज आकर उपस्थित हुए। उन्होंने सम्राट और साम्राज्ञीका चरण स्पर्श किया। सम्राट बोले—'युवराज !'

'आज्ञा पिताजी ?' मस्तक नवाकर कुणाल बोले।

तुम्हें इसलिए बुलाया है कि कुछ कारणोंसे मेरा तक्षशिला जाना संभव नहीं है, अतः कल प्रातःकाल वहाँ जानेकी तुम्हीं तैयारी कर लो। तुम्हें वहाँका प्रजापति बनाकर भेजा जा रहा है। विद्रोहका दमनकर वहाँका उचित रीतिसे तुम शासन करो और जब तक दूसरी राजाज्ञा तुम्हें न प्राप्त हो, तब तक तुम वहींका शासन-प्रबन्ध करो।'

'जो आज्ञा देव !' बड़े विनीत स्वरमें और बड़ी प्रसन्न मुद्रामें युवराज बोले।'

'सोचता हूं। तुम्हारे वहाँ जानेसे तुम्हारी कीर्ति बढ़ेगी; क्योंकि यह तुम्हारी अवस्था पराक्रम प्रदर्शनकी है।'

'जो आज्ञा पिताजी !'

'राजाओंको वे अवसर जल्दी नहीं प्राप्त होते, यद्यपि हमारे साम्राज्यमें युद्धको महत्व न देकर अहिंसाको ही प्रधानता दी गई है, किन्तु सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें तत्पर बौद्ध-धर्मकी अवहेलना करनेवाले आततायियोंको नियन्त्रणमें करना भी राज्यका महत्वपूर्ण कार्य है।'

'जो आज्ञा पिताजी !'

'अब तुम जा सकते हो प्रियवर ! तैयारी करो।'

सम्राट तथा साम्राज्ञी चरणोंका स्पर्शकर युवराज प्रकोष्ठके बाहर हो गए।

१४

दूसरे दिन प्रातःकाल युवराज कुणाल कुमार सम्प्रति एवं युव-राज्ञी कांचनमालाको साथ लेकर तक्षशिलाकी ओर रथपर चढ़कर चले; उनके पीछे दस हजार योद्धा युद्धकी कामनासे चले जा रहे थे। वहाँ पहुंचनेपर राज-कर्मचारियोंने उनका भव्य स्वागत किया। सम्राटका आज्ञापत्र पाकर तक्षशिलाधीशने युवराजको राज्यप्रासाद में ठहराया। वे तक्षशिलाके प्रजापति बनाकर भेजे गए हैं; यह समाचार सारे नगरमें फैल गया। वहाँके बड़े-बड़े नागरिक एवं राजकर्मचारी युवराजसे मिलने आये।

वहाँ पहुंचकर युवराजने दूसरे दिन राजकर्मचारियों एवं श्रेष्ठ नागरिकोंकी एक विचार-विमर्शके लिए गोष्ठी बुलाई, उसमें विद्रोहके प्रशमनके लिए वार्ता हुई। युवराजने पूछा - 'यह गोपकचन्द्रभाल कौन है!'

तक्षशिलाधीश बोला—'यह अपनी नीतिपरायणता एवं वीरतामें विख्यात बड़ा ही लोक-प्रिय व्यक्ति है। यही विद्रोहियोंका नेतृत्वकर रहा है, युवराजदेव!'

'विद्रोहके उठ खड़े होनेका प्रमुख कारण क्या है?'

शासनसत्ताकी शिथिलता ही इसका कारण हो सकता है, युवराजदेव! मेरा तो यही अनुमान है।'

'किन्तु मेरे अनुमानसे राजकर्मचारियोंके असहनीय व्यवहारसे प्रजाने व्यथित और असन्तुष्ट होकर विद्रोह कर दिया है। राज-कर्मचारियोंके व्यवहारमें कटुता जब पैदा हो जाती है, तब वह बहुत बड़ी अवस्थाको जन्म देती है, जब तक शासकवर्ग प्रजाके साथ प्रेम-

पूर्ण व्यवहार नहीं करता, तब तक वह सफल नहीं हो सकता !' युवराज कहते हुए कुछ गम्भीर हो गए।

तक्षशिलाधीश युवराजदेवकी बातोंसे निष्प्रभ हो गया। थोड़ी देरमें उसने प्रतिवाद किया। वह बोला—'प्रजाका भी अपराध हो सकता है, युवराजदेव !'

'हो सकता है; किन्तु सामूहिक रूपसे यदि प्रजामण्डलसे अपराध होता है, तो वह निश्चय ही राजकर्मचारियोंका दोष माना जाना चाहिए।' युवराज बोले।

तक्षशिलाधीशकी आकृति म्लान पड़ गयी। वह मौन हो गया।

युवराज पुनः बोले—'कुल राजकर्मचारियोंका दोष, कुछ प्रजाका, दोनों मिलकर भयंकर रूप धारणकर लेते हैं; किन्तु इसका उत्तर-दायित्व राजभक्त कर्मचारियोंपर अधिक है और प्रजापर कम।'

'राजभक्त कर्मचारियोंका युवराजदेव अपमान कर रहे हैं।' कहते हुए तक्षशिलाधीशकी ध्वनि कुछ अव्यवस्थित हो गयी।

'राजकर्मचारियोंके अनुचित व्यवहारसे यह विद्रोह खड़ा हुआ है। मैं प्रजामें घूम-घूमकर इसकी जाँच करूँगा। युवराजने कहा।

'जब आपको राजकर्मचारियों पर विश्वास नहीं है, तब मैं क्या कह सकता हूँ श्रीयुवराजदेव !'

'आप क्या कहेंगे। राजकर्मचारी प्रशंसाके योग्य नहीं हैं; नहीं तो प्रजामंडलमें असंतोषकी लहर न दौड़ती और विद्रोह न उठ खड़ा होता।' युवराज कुछ तीव्र स्वरमें बोले।

अपमानित होकर तक्षशिलाधीश उद्विग्न हो उठा।

युवराजने कहा—'अच्छा; आप जाइए, मैं इसका पता लगाऊँगा।'

क्रोधकी लहर हृदयमें दबाकर तक्षशिलाधीश प्रकोष्ठके बाहर चला गया। गोष्ठीका कार्यक्रम समाप्त हुआ। लोग यथास्थान चले गए।

कुछ देर तक युवराज मौन होकर स्थितिपर विचार करते रहे। उन्होंने सोचा—'बिना किसी विशेष कारणके प्रजा अपने प्राण हथेली पर रखकर मारने-मरनेको प्रस्तुत नहीं होती।'

थोड़ी देरमें उन्होंने कहा—'प्रिये !'

'आज्ञा देव !'

'आज मैं साधारण वेशभूषामें विद्रोहके कारणोंका पता लगाने रात्रिमें भ्रमण करूँगा। तुम सम्प्रतिके साथ पार्श्वके कक्षमें शयन करना।'

'किन्तु देव ! नगरकी स्थिति भयानक होती जा रही है' अतः इस दशामें आपका बाहर रात्रिमें भ्रमण करना अनुचित प्रतीत हो रहा है।'

'प्रजामंडलसे बिना सम्पर्क स्थापित किए न तो उनके दुःख-सुख का पता लग सकता है और न तो उनकी क्रान्ति-भावना ही जानी जा सकती है। यह सोच-विचार कर ही मैं छद्मवेशमें जाना चाहता हूँ प्रिये !'

'आपका कथन ठीक है देव ! किन्तु मैं विद्रोहकी बात सुनकर इस तरह आपको अकेले जानेमें काँप जाती हूँ।'

'भयभीत होनेकी कोई बात नहीं प्रिये ! बुराइयोंके भयसे दरवाजा बन्द कर लेने पर सत्य भी बाहर रह जाता है। कार्य करने की कुशलता मनुष्यके उत्थान-पतनका कारण होती है। सावधान रहनेवाला व्यक्ति और अवसरका विचार करके कार्यमें लगनेवाला मनुष्य प्रायः निष्फल नहीं होता प्रिये !'

'मेरे भी कथनका यही तात्पर्य था देव ! कि आप या तो अकेले न जाइए और यदि जाइए ही, तो हर हालतमें सावधान रहिए।'

'हाँ प्रिये ! यह सावधानीका ही कार्य है ।'

आधी रात बीत गयी । युवराज कुणाल कन्धे पर कार्मुक, कटि-प्रदेशमें एक अच्छी तलवार धारणकर एक ग्रामीण व्यक्तिकी वेश-भूषामें साधारण वस्त्र पहनकर और आकृतिका अधिकांश भाग साफेके छोरसे ढँककर जानेके लिए तैयार हो गए। राज्यप्रासादके बाहरी द्वारपर उनका विश्वस्त अनुचर एक उत्तम घोड़ा तैयारकर प्रतीक्षा कर रहा था । युवराज घोड़े पर सवार हो गए । एक बार उन्होंने घोड़ेसे उस राज-भवनकी परिक्रमा की । उन्हें कुछ व्यक्तियोंकी फुसफुसाहट उस समय सुनायी पड़ी । वे स्थिर होकर ध्यानसे सुनने लगे । राज्य-प्रासादकी प्राचीरमें ज्योंही उन्होंने दृष्टि फेंकी, त्योंही उन्हें चकित रह जाना पड़ा । उन्होंने सैकड़ों आदमियोंको नंगी कृपाण धारण किए युद्धकी कामनामें प्रवृत्त देखा । युवराज और भी सतर्क हो गए । उन व्यक्तियोंमें आपसमें कुछ वार्ता हो रही थी, उधर ही कान देकर वे सुनने लगे—'मैं इस स्थानसे रस्सीके सहारे युवराजके प्रकोष्ठतक पहुंच सकता हूँ, आप लोग वहाँ खड़े रहकर सावधान रहें, क्षणमात्रमें इस कृपाण द्वारा युवराजको समाप्तकर मैं आ जाऊँगा । तब मेरा नाम गोपकचन्द्रभाल सार्थक होगा ।

दूसरा व्यक्ति बोला—'किन्तु हम तो यही समझते हैं कि यह कार्य बड़ा दुष्कर है । यदि युवराज जागते होंगे, तो तुम उन्हें नहीं हरा सकते ।'

'किन्तु उनकी सेनाके साथ युद्ध करनेसे भी हम नहीं जीत सकते ।' हाँ, यह जो सोच रहा हूं; सरल प्रतीत हो रहा है । यदि युवराज जागते होंगे, तो सावधानी से प्रतीक्षा करूँगा ।'

'विशेष परिस्थितिमें संकट उपस्थित होनेपर आपको सूचना दी जायगी और यदि ऊपर आपको प्राण-संकट उपस्थित हो, तो लोग

सहायताके लिए तुरन्त तत्पर हो जायँगे। आप रस्सीके द्वारा संकेत करना न भूलें।'

गोपकचन्द्रभाल रस्सीके सहारे ऊपर जाने लगा।

एक वृक्षकी आड़में खड़े होकर युवराज एकाग्र मनसे वह सब देखते-सुनते रहे। उनके प्राणके भूखे विद्रोही किस प्रकार अपने कार्यमें रत हैं, उनसे छिपा न रहा। वे खड़े-खड़े वहींसे अपने और कांचनके प्रकोष्ठको देखते रहे। गोपकचन्द्रभालको ऊपर जाते देखकर युवराजने अपने कार्मुकपर बाण चढ़ा लिया और सोचा—यदि मेरे प्रकोष्ठसे चन्द्रभाल कांचनके प्रकोष्ठमें प्रविष्ट हुआ, तो उसके ऊपर वार करते ही, उसे मैं तत्काल धराशायी कर दूंगा। मौन होकर एकाग्र चित्तसे युवराज उसकी ओर देखते रहे।

उधर युवराजके प्रकोष्ठका निरीक्षणकर गोपकचन्द्रभाल कांचनमालाके प्रकोष्ठद्वारपर आ खड़ा हुआ। युवराजको उसके हाथकी नग्न तलवार दिखायी पड़ी। युवराजने धनुषकी प्रत्यंचा श्रवण पर्यन्त खींचकर तीर छोड़ना ही चाहा, किन्तु उस समय गोपकको कांचनमालाके प्रकोष्ठका द्वार न खोलते देख, कपाटके छिद्रोंसे ही झाँककर रस्सीके सहारे उतरते देख, उन्होंने बाण न छोड़ा। गोपकके नीचे उतरते-उतरते बहुत कोलाहल प्रारम्भ हो गया। विद्रोहियोंकी कार्यवाहीका पता पाकर राज्यसैनिकोंने उनपर आक्रमण कर दिया। युद्ध प्रारम्भ हो गया। कितने ही विद्रोही मार डाले गए, कितने ही घायल हो गये। रस्सीके सहारे उतरते हुए गोपकने देखा उसने एक हाथमें अपना कृपाण सँभाला और दूसरे हाथसे रस्सीके सहारे वह नीचे कूद पड़ा। गोपकको नीचे आया देख विद्रोहियोंका साहस दूना हो गया, वे वीरताके साथ लड़ने लगे। घमासान युद्ध हुआ; किन्तु अल्पसंख्यक विद्रोही बड़ी बुरी तरह पराजित हुए। अपने साथियोंकी पराजय देख गोपकचन्द्रभाल भी भाग खड़ा

हुआ। राज्यसैनिकोंने उसका पीछा किया। अपने ऊपर प्राण-संकट देखकर गोपकचन्दभाल लौट पड़ा और उसने राज्यसैनिकोंका बड़ी वीरतासे मुकाबला किया। सैनिकोंने उसे चारों ओरसे घेर लिया और उसे काफी घायल कर दिया। युवराज उसकी वीरता और राज्यसैनिकोंका युद्ध देखते रहे। जब उन्होंने देखा कि गोपकचन्द्र भालका प्राण संकटमें पड़ गया है, तब उसकी सहायतामें वे स्वयं तत्पर हो गए। उसके निकट पहुँचकर युवराजने कहा—'श्रीमान्! आप आहत हो गए हैं, अब इस समय आपको अपना प्राण अवश्य बचाना चाहिए। आइए हमारे साथ घोड़ेपर चढ़कर भाग चलिए।'

युवराजकी कोमल वाणीने गोपकचन्दभालपर अपना बड़ा प्रभाव दिखाया। अवसर पाकर युवराज उसे साथ लेकर घोड़ेपर बैठ गए और बातकी-बातमें वे सैनिकोंकी आँखसे ओझल हो गए। नगरके बाहर जाकर चन्दभालने मार्ग बताया और युवराजने उसे उसके घर पहुँचाया।

गोपकचन्दभालके शरीरपर कुछ घाव हो गए थे, जिससे वह कुछ शिथिल हो गया था। युवराज उसके घावोंपर मरहम पट्टी करने लगे।

युवराजकी सहानुभूति देखकर चन्द्रभाल बड़ा ही कृतज्ञ हुआ और बड़ी विनम्र वाणीमें बोला—'श्रीमन्त! आपने आज मेरे प्राणोंकी रक्षाकी है।'

'हाँ भद्र! आज आपके प्राण संकटमें पड़ गए थे।'

'जिस प्रकार हमारे अन्य साथी आज युद्धमें मारे गए, यदि आप तुरन्त आकर मेरी सहायता न करते, तो निश्चय ही हमें भी उसी प्रकार प्राण गँवाने पड़ते। आज ही आपको मैंनें देखा है, भद्र पुरुष! आप कौन हैं? अपना परिचय तो दें!' गोपकचन्द्रभालनें कोमल वाणीमें कहा।

'श्रीमान् आपकी ही भाँति मैं भी राजकर्मचारियोंसे असंतुष्ट स्वतंत्रताका प्रेमी एक साधारण नागरिक हूँ।' युवराज बोले।

'आपका नाम क्या है भद्र ?'

'मुझे 'भानुगुप्त' नामसे लोग पूकारते हैं, श्रीमान् !'

'भानुगुप्त ?'

'जी हाँ।'

'यह नाम तो मेरे लिए नया प्रतीत होता है भद्र !'

'हाँ श्रीमान् ! आपका त्याग सुनकर आपके प्रति हमारे हृदयमें बड़ी श्रद्धा पैदा हो गयी है और मैं भी अपना प्राण हथेलीपर लेकर आपके कार्यमें सहयोग देना चाहता हूँ।' युवराजने कहा।

'ठीक है, भद्र पुरुष ! स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिए आपकी ही भाँति निर्भीकता, प्राणोत्सर्ग और वीरताकी आवश्यकता है।—गोपक बोला।

'साम्राज्यवादीकी जड़ नष्ट करके सुख शान्ति स्थापित करना ही हमारा लक्ष्य है, गोपक महोदय ! परतन्त्रतासे मनुष्यकी आध्यात्मिक, आर्थिक और सामाजिक उन्नति रुक जाती है।' युवराज बोले।

'धन्य हो भद्रपुरुष ! धन्य हो। आपका सहयोग पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है।' गोपक बोला।

'इतना महत्व बढ़ाकर मुझे लज्जित न करें !' युवराजने कहा।

'नहीं भाई ! आपने मेरा प्राण बचाया है। आप जैसे ही लोगों से मैत्री सुखदायी होती है।'

'नहीं भाई गोपक ! आप महान् हैं, आप उदार हैं; क्यों न ऐसा सोचें।'

गोपकचन्द्रभाल युवराजपर इतना प्रसन्न हुआ कि उसने तत्काल घोषणा की—'आप मेरे अभिन्न मित्र हैं।'

'मुझे भी आपके मैत्री-सम्बन्धसे हर्ष हो रहा है। अच्छा, यदि

आज्ञा दें, तो मैं कल पुनः आऊँगा। इस समय घर जा रहा हूँ, घरके लोग प्रतीक्षा करते होंगे। आपको कोई विशेष पीड़ा तो नहीं है ?'

'नहीं मित्र भानुगुप्त ! कोई ऐसी पीड़ा नहीं है, जिससे घबराहट पैदा हो। तुम जा सकते हो। हाँ कल अवश्य आ जाना; क्योंकि एक विराट सभाकी आयोजना होगी। कल सभी विद्रोही हमारे यहाँ एकत्र होंगे।'

गोपक चन्द्रभालसे विदा लेकर युवराज बाहर आकर राजभवन की ओर चल पड़े।

१५

युवराजके चले जानेके थोड़ी ही देर पश्चात् घमासान युद्धका संवाद पाकर कांचन दुःखी हो गई। वह सोचने लगी—आखिर उसने उन्हें जाने ही क्यों दिया? भयानक युद्धमें सावधानी नहीं काम दे सकती? यदि युद्धकी तैयारी कर युवराजसेनाके साथ गए होते, तो इतनी चिन्ताकी बात न होती। युद्धकी विकरालताका ध्यान आते ही उसने कल्पना की—युवराजदेव शत्रुओंसे घिर गये हैं, उनकी सहायता करनेवाला इस समय कोई नहीं है! उनके हथियार शत्रुओं-के अधीन हो गए होंगे अथवा शत्रुओंने मार डाला होगा। निश्चय ही वे छिप न सके होंगे, उनके व्यक्तित्वको शत्रुओंने पहचान लिया होगा। निरस्त्र होकर उन्होंने प्राणों की रक्षा कैसे की होगी? युव-राजके जीवित न रहनेपर अपनी हो जानेवाली दुर्दशाकी कल्पना-कर कांचनका हृदय काँप गया। माता राजमहिषी तिष्यरक्षिताके व्यवहारकी कटुता और अपने भावी जीवनके संकटग्रस्त दिनोंकी यादकर वह व्याकुल हो गयी। क्या किया जाय? कोई उपाय नहीं सूझ रहा था कांचनको।

क्षण-क्षण बीत रहे थे। कांचनमालाको नींद न आ रही थी। धीरे-धीरे वह बेचैन होती जा रही थी। कभी वह शिथिल होकर शय्यापर निष्प्राण शरीरकी भाँति निश्चेष्ट हो पड़ी रहती; कभी वह पलँग पर उठकर बैठ जाती और कभी इस करवटसे उस करवट बदल-बदलकर व्याकुलताकी प्रतीति करती। कभी वह सोचती युवराजका कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा, वे आते ही होंगे? पलंगसे उतरकर प्रकोष्ठमें टहलते हुए द्वारपर उसकी दृष्टि जा पड़ी। अब आते होंगे, निश्चय

ही उनके लौट आनेका समय हो गया है। वे इसी क्षण अब आना ही चाहते हैं, इसी प्रकार सोचते हुए कुछ समय बीत गया, किन्तु युवराज न लौटे। सोचा कांचनमालाने—निश्चय ही उनके प्राणों पर संकट उपस्थित हो गया है, नहीं तो अब तक वे लौट आये होते।

कांचनमाला दुःखी थी, परेशान थी। उनका मानसिक संतुलन बिगड़ गया था। सारी रात्रि बीत गई; युवराजकी प्रतीक्षामें वह थक गयी। थोड़ी देरमें घोड़ेकी टाप सुनाई पड़ी। उसे विश्वास हुआ —यह युवराजदेवका ही घोड़ा है। वह दृष्टि स्थिरकर द्वारकी ओर देखने लगी।

घोड़े पर आ रहे युवराज ही थे। युवराजको आते देख उसका चित्तशान्त हुआ। परिचारकने घोड़ा थाम लिया युवराज राज्य-प्रासादमें प्रविष्ट हुए। कांचन द्वारपर आ खड़ी हुई।

'आइए युवराजदेव ! आपने तो मुझे विकल कर डाला था। जितना कोई स्त्री जीवनभर पतिके वियोगमें यातना सहन कर सकती है। उतना आपने मुझे एक ही रात्रिमें सहनेके लिए वाध्य कर दिया।' कांचन मालाने मुस्कुराकर कहा।'

'वियोग इसे न कहो प्रिये ! इसे आशंका कहो।'

'कुछ भी कहिए युवराजदेव ! किन्तु यह तो मुझे असह्य है। अब इस संक्रातिकालमें आप कदापि न रात्रिमें भ्रमणके लिए; जायँ; जाना भी नहीं चाहिए देव ! कांचनमालाने बड़ी विनम्रता से कहा।

'किन्तु भद्रे ! तुमने यह मुझसे न पूछा कि रात्रिमें इस मार-काटके बीच मैंने क्या किया ?' युवराज बोले।'

'आपने कुछ भी किया हो, किन्तु अब भविष्यमें इस प्रकार आप रात्रिमें नगर-भ्रमणका आयोजन न बनावें देव !'

'प्रिये ! जितना तुम भयभीत हो गयी हो, वह तुम्हारी मर्यादाके विरुद्ध है। भयकी कोई बात मुझे नहीं जान पड़ती। आधा कार्य मैंने

समाप्तकर लिया है। रात्रिमें कोई भी संकट मेरे ऊपर नहीं उपस्थित हुआ; बल्कि इस विपरीत परिस्थितिका मैंने बड़ा लाभ उठाया है।'

'क्या लाभ हुआ आपको ?'

'अभी सुनकर तुम्हारा हृदय हर्षसे भर जायगा।'

सुनूँ तो देव ! कौन सा शुभ-समाचार है। मुझे सचमुच बड़ी प्रसन्नता अभीसे हो रही है। मैं बड़ी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रही हूँ।'

'मैंने विद्रोहियोंके नेता गोपकचन्द्रभालसे मैत्री सम्बन्ध कर लिया है। अब उससे बड़ी आत्मीयता हो गयी है, शुचिस्मिते ! है न आश्चर्यमें डालनेवाली बात ?'

'यह कैसे सम्भव हो सका देव !'

'यह फिर कभी—बताऊँगा प्रिये ! आज तुम इतना ही समझ लो कि विद्रोहियोंके नेता गोपकचन्द्रभालसे हमारी गाढ़ी मैत्री स्थापित हो गयी !'

कांचनने आश्चर्य व्यक्त किया।

'किन्तु प्रिये ! इस तरह तुम्हें अधीर नहीं होना चाहिए था। राजाओंका युद्ध प्रमुख कार्य है।' कहा युवराजने।

'ठीक है देव ! किन्तु आप युद्धके लिए सेना साथ लेकर नहीं गए थे; इसीलिए मेरा धैर्य छूट गया था। मेरी गति तो आप ही तक है; भला तब क्यों न मुझे इस प्रकार मोह उत्पन्न हो।'

"इसी कारण तुम्हारे प्रति मेरे हृदयमें भी आकर्षण उत्पन्न होता है प्रिये !' कहते हुए मुस्कुराकर युवराजने कांचनमालाको भुजाओंमें कसकर हृदयसे लगा लिया।

कांचन लजाकर मुस्कुरा पड़ी। उसकी दृष्टि नीचेकी ओर झुक गयी।

दूसरे दिन प्रान्तके अनेक सहस्र विद्रोहियोंका गोपकचन्द्रभालके

यहाँ आगमन हुआ। सब लोग यथास्थान विराजमान् हुए। विद्रोहियोंका नेता गोपकचन्द्रभालका आसन सबसे ऊँचा था। युवराज कुणाल भी ग्रामीण वेशमें वहाँ पहुंचे।

सभाकी कार्यवाही प्रारम्भ हुई। गोपकचन्द्रभाल भाषण करनेके लिये खड़ा हुआ। समग्र सभामें नीरवता छा गयी।

विद्रोहियोंका अधिनायक गोपकचन्द्रभाल बोला—'स्वतन्त्रताकी उमंगमें उमड़े हुए वीरों! तुम्हारे पराक्रमसे मौर्य-साम्राज्यकी नींव हिल उठी है। विद्रोह दमनके लिए सम्राट अशोकवर्द्धनको विशेष व्यवस्थाकर युवराज कुणालको भेजना पड़ा है। राज-कर्मचारियों का अन्याय, दुर्व्यवहार सहनकी सीमाके बाहर हो गए। आवश्यकता पड़नेपर जब कभी कोई तक्षशिलाधीशसे या किसी अन्य राज-कर्मचारियोंसे मिलने जाता था, तब वह मूर्ख किसीसे नहीं मिलता था। पहले प्रतीक्षामें दो-तीन घंटे बैठाकर फिर कहला देता था कि आज नहीं मिल सकते। सारी प्रजा दुर्विनीत तक्षशिलाधीश एवं राजकर्मचारियोंके दुराचारसे असन्तुष्ट होकर विद्रोही बनी है। राज-कर्मचारियोंके व्यवहारसे सन्तप्त प्रजामण्डलमें जो असंतोष की भावना उत्पन्न हो गयी है, वह सब निश्चय ही साम्राज्यके लिए घातक है। यदि आप सब धैर्यपूर्वक विद्रोहको चलाते रहे, तो निश्चय ही सफलता हमारे साथ है।'

भाषण मौन होकर भानुगुप्तके ग्रामीण वेशमें युवराज सुनते रहे। उनकी आकृति कुछ गंभीर होती गयी। तक्षशिलाधीशके अन्यायके संबंधमें गोपकचन्द्रभालके वक्तव्यका उनपर बड़ा प्रभाव पड़ा।

गोपकचन्द्रभाल पुनः बोला—'एक दो बारकी बात होती, तो हम सहन भी करते, किन्तु लगातार हमारे ऊपर अन्यायपर अन्याय होता चला आ रहा है। जब किसी भी दशामें हमने सुधारका लक्षण

नहीं देखा, तब विवश होकर हम अपनी स्वतन्त्रताके लिए तत्पर हुए हैं। हमारे पास यथेष्ठ प्रमाण हैं। हमें किस प्रकार निर्दयता-पूर्वक पीस रहे हैं राजकर्मचारी, इसकी कोई खोज-खबर लेनेवाला ही नहीं। युवराज कुणाल आये भी, तो वे भी हमारा दमन करनेके लिए एक बड़ी सेना साथ लाए हैं। हम किसके यहाँ अपनी फ़रियाद करें ? हमारा कौन सुनेगा !'

सभाके सभी उपस्थित सज्जन मौन होकर गोपककी बातें सुन रहे थे।

गोपक पुनः कहने लगा—'निश्चय ही जब तक हम स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त कर लेते, तब तक लड़ेंगे। प्रत्येक दशामें हम अपनी लड़ाई जारी रखेंगे। कल रात्रिमें युवराजकी हत्यामें हमें सफलता नहीं प्राप्त हुई; बल्कि कितने ही हमारे साथी प्राणोंसे हाथ धो बैठे। इसका कारण था—एक ही कार्यके लिए सैकड़ों आदमियोंका वहां जाना। भीड़ देखकर राज-कर्मचारी सतर्क हो गए और हम असफल ही नहीं, यदि मेरे मित्र ये, भानुगुप्त उस समय न पहुंचे होते, तो मेरा भी प्राण न बच पाता।'

सब लोग युवराजकी ओर देखने लगे। सारी सभा भानुगुप्तकी जय बोलने लगी। चन्द्रभाल फिर बोला—'आज हम चुनकर एक ही आदमी युवराजकी हत्याके लिए भेजना चाहते हैं।'

कितने ही आदमी उठकर खड़े हो गये। 'युवराजकी हत्या करनेके लिए हम तत्पर हैं।' कहते हुए।

गोपकचन्द्रभाल बोला—'युवराजकी हत्या करनेमें वही व्यक्ति सफल हो सकता है, जो राज-भवनसे पूर्ण परिचित हो; वीर हो और निर्भय हो।'

सभा मौन हो गयी।

गोपकचन्द्रभाल बोला—'है कोई व्यक्ति ?'

सभा मौन थी। जब कोई न बोला, तब सबके समक्ष युवराज उठ खड़े हुए। वे बोले—'मैं अवश्य यह कार्य कर सकता हूं, गोपकचन्द्रभाल महोदय !'

सबकी दृष्टि युवराजकी ओर केन्द्रित हो गयी।

गोपकचन्द्रभालकी दृष्टि युवराजकी हीरक मुद्रिका पर जा पड़ी, जिसे भूलकर युवराज पहने चले आए थे। वह चकित रह गया—एक ग्रामीणके पास अमूल्य राजकीय मुद्रिका देखकर।

सारी सभा 'भानुगुप्तकी जय'से निनादित हो उठी।

युवराज बोले—'विद्रोहियोंके अधिनायक गोपकचन्द्रभाल एवं उपस्थित बन्धुओं ! प्रजामंडलपर साम्राज्यशाही द्वारा हुए अन्याय का प्रतिशोध मैं अवश्य करना चाहता हूँ। मैं तक्षशिलाधीश एवं राजकर्मचारियोंका अन्याय समाप्त करके ही दम लूँगा। आप सबके सम्मुख प्रण करता हूँ।'

'धन्य हो भाई भानुगुप्त ! धन्य हो।' सारी सभा पुकार उठी।

युवराज पुनः बोले—'मैं युवराजकी हत्या करूँगा। मैं ही युवराजकी हत्या करूँगा और आप सबके समक्ष।'

युवराजके हाथमें कृपाण आ गयी। उन्होंने कहा—'आप सब मेरे ऊपर विश्वास करते हैं। मैं इसी स्थान पर युवराजकी हत्याकर आप सबका उद्वेग दूर कर दूंगा।'

'हमलोग आपके इस चमत्कारपूर्ण कार्यकी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहे हैं; मित्र भानुगुप्त।' सभाने हर्ष प्रकट किया।

युवराज सारी सभाके समक्ष गोपकचन्द्रभालके पार्श्वमें खड़े हो गए।

उन्होंने कृपाणका आघात अपने वक्षस्थल पर करना चाहा; किन्तु ऊपरसे ही गोपकचन्द्रभालने उनका हाथ पकड़ लिया।

चन्द्रभाल को कुछ आश्चर्य हुआ और उसने युवराजसे पूछा—'भाई भानुगुप्त ! मुझे बड़ा कौतूहल है, तुम यह क्या कर रहे हो ? तुम छद्मवेशधारी युवराज ही तो नहीं हो ? मैं तुम्हारा रहस्य जानना चाहता हूँ।' चन्द्रभालने युवराजके उन्नत ललाट और विशाल नेत्रों की ओर निहारा।

युवराज मौन थे।

चन्द्रभाल पुनः बोला—'भद्र ! आपने हमें चकित कर दिया है। अतः शीघ्र हम आपका परिचय जानना चाहते हैं।'

'मेरा परिचप ? मेरा परिचय यदि आप जाननेके इच्छुक हैं, तो सुनिए निवेदन करता हूँ—मुझे आप प्रजामंडलका तुच्छ सेवक समझें, अपना सहयोगी समझें।' युवराजने विनम्र होकर कहा।

'यह तो हमने पहलेसे ही जान रखा है भद्र ! इसके आगे जानने की उत्कंठा है।'

'इसके पश्चात् मुझे युवराज कुणालके नामसे लोग पुकारते हैं और सम्राटदेवने आपके तक्षशिला प्रदेशका प्रजापति बनाकर मुझे भेजा हैं।'

'युवराज ! कुणाल ! प्रजापति !' कहकर गोपकचन्द्रभालने महान् आश्चर्य व्यक्त किया।

सारी सभा चकित हो गयी। कुछने सभामें युवराजको अकेले पाकर आक्रमण करना चाहा और कुछने प्रभावित होकर उन्हें रोका। चन्द्रभाल स्तंभित हो गया। वह मौन होकर युवराजकी ओर देखने लगा।

'भद्र गोपकचन्द्रभाल ! हाथ छोड़ दो, मुझे कृपाण वापस करदो। मेरी हत्यासे यदि प्रजामण्डलका कष्ट दूर हो सकता है, तो मैं अवश्य उसका संकट दूर कर सकता हूँ—प्राणोंकी बाजी भी लगाकर।'

'आपका त्याग महान है युवराजदेव ! आप महान् हैं। प्रजाका

कष्ट निश्चय ही आपके जीवित रहने पर ही दूर हो सकता है। हम लोगोंका आपकी हत्याका वचन वापस हो। हमारी भ्रान्त धारणाओं का सुधार हो गया। युवराजदेवके समक्ष हम प्रजागण मस्तक नवाकर क्षमा माँगते हैं।' चन्द्रभाल बोला।

'युवराजदेवकी जय! युवराजदेवकी जय!!' सभा चिल्ला पड़ी। युवराजदेवके चरणोंमें चन्द्रभाल गिर पड़ा। 'मुझे क्षमा प्रदान करें देव!' कहते हुए चन्द्रभालने महान् लज्जाका अनुभव किया।

चन्द्रभालको हृदयसे लगाकर युवराज बोले—'नहीं गोपकचन्द्रभाल! आप लज्जा या संकोचका अनुभव न करें। राजकर्मचारियोंकी अव्यवस्था और लापरवाहीने आप सबको असंतुष्ट कर दिया है। अतः शासनका दोष दूरकर देनेका प्रयत्न करूँगा। इसमें आप सब प्रजामण्डलका दोष हमें नहीं दिखाई पड़ रहा है; अतः क्षमाका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। हमारे कर्मचारियों द्वारा प्रजामण्डलने जो कष्ट झेला है, उसके लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।' कहते हुए युवराजने सभाके समक्ष मस्तक झुका दिया।

सारी सभाने युवराजका जय घोष किया।

युवराज पुनः कहने लगे—'प्रिय बन्धुओं! श्रीसम्राटदेवने मुझे आपके प्रान्तका प्रजापति बनाकर भेजा है। मैं अवश्य शासनकी बुराइयोंको दूर करनेका प्रयत्न करूँगा और अपराधी राजकर्मचारियों को समुचित दण्ड दूंगा। आप अपना चित्त शान्त कर विद्रोह समाप्त करें। धैर्य रखें; हमारे ऊपर विश्वास करें। थोड़ा अवसर चाहता हूँ। आशा है, आप सब लोग मेरी प्रार्थनाकी उपेक्षा न करेंगे।' युवराज बड़े विनम्र थे।

सभामें नीरवता थी। कुछ लोग चकित थे, कुछ लोग आपसमें बातें कर रहे थे—'देखो तो युवराज कितने न्याय-प्रिय हैं! कितने

महान् हैं। इनका प्रजा-प्रेम तो बड़ा ही आकर्षक एवं अभिनंदनीय है। धन्य हैं युवराजदेव !'

सभाको मौन करते हुए युवराज बोले - 'उपस्थित जनसमुदाय तथा गोपकचन्द्रभाल ?'

'आज्ञा युवराजदेव !' सबके सब युवराजदेवकी ओर श्रद्धालु-विनत होकर कहने लगे।

'कल एक बड़ी पौरसभाका आयोजन किया जा रहा है, आप सब उपस्थित होकर जो कुछ राज्य-कर्मचारियोंके प्रति निवेदन करना चाहते हों, उनके विरुद्ध जो भी प्रमाण आप सबके पास हों, प्रस्तुत करें। उसका न्याय होगा।

सारी सभा युवराजदेवकी जयजयकारसे ध्वनित हो उठी।

सभाका कार्यक्रम समाप्त हुआ। सभी अपने-अपने मनमें अपार हर्ष लिए हुए; युवराजकी प्रशंसा आपसमें करते घर लौटे।

दूसरे दिन प्रातःकाल युवराजने तक्षशिलाधीशको बुलाया। उसने आकर युवराजको अभिवादन किया।

'आज पौर-सभाका आयोजन किया गया है; आप शीघ्र प्रबन्ध करें।' कहा युवराजने।

'जो आज्ञा देव !' तक्षशिलाधीश बोला।

'विद्रोहरत नागरिक तो इस सभामें सम्भव है, न उपस्थित हों युवराजदेव !'

आप इसकी चिन्ता न करें। इस सभामें वे अवश्यही उपस्थित होंगे। उन्हें राज्य-कर्मचारियोंके विरुद्ध प्रमाण उपस्थित करने हैं !'

काँप गया तक्षशिलाधीश। वह मनमें युवराजके प्रति असंतुष्ट हो गया।

पौर सभाका आयोजन हुआ। यथास्थान राज्य-कर्मचारी, तक्षशिलाधीश, गोपकचन्द्रभाल आदि और विद्रोही नागरिक उपस्थित

होकर बैठ गए। युवराज और कांचनमाला भी यथासमय सभामें आ पहुंची।

सारी सभा युवराज और युवराज्ञीके स्वागतार्थ उठ खड़ी हुई और जय-घोष करने लगी। तक्षशिलाधीशने उन्हें मस्तक नवाकर सम्मान प्रदर्शित किया और सबसे ऊँचे आसनोंपर उन्हें ला बैठाया। सभाका कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ।

'गोपकचन्द्रभाल !' कहा युवराजने।

गोपकचन्द्रभाल उठ खड़ा हुआ और युवराजको अभिवादन कर बोला—

'आज्ञा युवराज देव।'

'आप राज्य-कर्मचारियोंके प्रति जो कुछ कहना चाहते हों कहें।'

'श्रीमान् युवराजदेव ! युवराज्ञी और उपस्थित सभी सज्जनों ! आप सबके समक्ष श्रीयुवराजदेवकी आज्ञासे मैं सभी उन परिस्थितियों पर प्रकाश डालना चाहता हूँ, जिनसे त्रस्त होकर स्वाभिमानी नागरिकोंने विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। विद्रोह क्यों हुआ ? इसका उत्तरदायित्व किस पर है। प्रथम हम इसी पर विचारकर लेना आवश्यक समझते हैं। विद्रोहका सारा उत्तरदायित्व तक्षशिलाधीश महोदय एवं अन्य राज्यकर्मचारियोंपर है। ये राज्य-कर्मचारी जब कि सारी प्रजाके सुख-शान्ति और स्तरोन्नयनके लिए नियुक्त हैं और सच्चे हृदयसे प्रजामण्डलकी सेवा इन्हें करनी चाहिए; कोई ध्यान नहीं देते। ये अपने ही स्वार्थमें लगे हैं, प्रजाको इनके आचरणसे कितनी पीड़ा हो रही है। प्रजा चिल्ला-चिल्लाकर इनसे उत्पन्न अराजकताके सम्बन्धमें निवेदन करना चाहती है, इनका ध्यान अपने कष्टोंकी ओर आकृष्ट करना चाहती है; किन्तु इन्हें अवकाश नहीं; इन्हें सहानुभूति नहीं। ये रातदिन चिन्तित हैं, अपने स्वार्थकी सिद्धिमें, अपनी भलाईमें। प्रजा ऊँचे अधिकारियोंसे छोटे अधि-

कारियोंके सम्बन्धमें मिलना चाहती है. बड़े अधिकारियोंके पास समय नहीं है, अवकाश नहीं है। सबसे मिलने पर उनका अपमान है, वे अदर्शनीय होकर ही सेवक नहीं; स्वामी बनकर रहना चाहते हैं। मेरी समझसे मान-अपमानका प्रश्न भी एक बड़ी समस्या है छोटे आदमियोंको मान जितनी मार्मिक पीड़ा शीघ्रतासे पहूंचाकर सताता है, उच्च स्तरके व्यक्ति उतनी शीघ्रतासे मान अपमानसे प्रभावित नहीं होते। कर्तव्यच्युत होकर मनुष्य उचित और अनुचित सब कुछ करने पर तत्पर हो जाता है।' गोपकचन्द्रभाल बोला।

सारी सभा मौन हो सुन रही थी।

गोपकचन्द्रभाल पुनः कहने लगा—'युद्धकी कामना मानवके हृदयमें जन्म पाती रहती है, राज्य-कर्मचारियोंके असहनीय व्यवहार और आचरण का योग पाकर वह विद्रोहका रूप धारण करती है और राजकर्मचारी विद्रोहियोंका दमन करना चाहते हैं सेनाके बल पर, अपने आचरणका सुधार कर नहीं, सारे प्रदेशमें भ्रष्टाचार व्याप्त है।'

तक्षशिलाधीशने इसका प्रतिवाद किया। गोपकचन्द्रभाल मौन हो गया।

युवराज बोले—'विद्रोहियोंके अधिनायक गोपकचन्द्रभाल महोदय ! क्या आपके पास आपके वक्तव्यका प्रमाण है ?'

'अवश्य युवराजदेव ! लीजिए हमारे पास ये सब लिखित प्रमाण मौजूद हैं। श्रीमान्‌जी इसका न्याय करें। कहकर गोपकचन्द्रभालने सारे प्रमाण उपस्थित किए।

तक्षशिलाधीशने सभी प्रमाणोंको मिथ्या प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया; किन्तु निष्पक्ष जाँचमें उसकी सब बातें असत्य प्रमाणित हुईं। युवराज कुणालने राज्य-कर्मचारियों एवं तक्षशिलाधीश को अपराधी घोषित किया।

युवराज उठ खड़े हुए और बोले—'उपस्थित नागरिकों! मैंने आप लोगोंके विद्रोहके कारणका पता लगाया। राज्य-कर्मचारियों के अपराध पर विचार किया और मेरी दृष्टिमें वे अपराधी प्रमाणित हुए। इन कर्मचारियोंकी नियुक्ति श्रीसम्राटदेवके द्वारा हुई है, अतः दण्ड इन्हें वे ही दे सकते हैं। मैं पूरे विवरणके साथ इनका अपराध श्रीसम्राटदेवके समक्ष निवेदन करनेके लिए आज ही दूत भेजता हूँ। जबतक वहाँसे कोई राजाज्ञा नहीं आ जाती; तबतक राज्य-कार्य पूर्ववत् चलता रहेगा। आशा है, आप लोग धैर्यपूर्वक राजाज्ञाकी प्रतीक्षा करेंगे। प्रजाजनोंके कष्टका हम ध्यान रखेंगे। आप सबके संकट दूर हो जायँगे, हमें पूर्ण विश्वास है। सभाकी कार्यवाही समाप्तकी जाती है, आप सबको यहाँ उपस्थित करके मैंने सत्यताकी जिस कसौटी पर राज्य-कर्मचारियोंका अपराध पाया है, वह निष्पक्ष है। इस सम्बन्ध में कुछ भी कहना नहीं है।

प्रजा संतुष्ट हुई और कार्यवाही समाप्त होनेपर वह अपने-अपने स्थान लौट गयी। इधर दूत द्वारा राजनगर पाटलिपुत्रमें युवराज कुणालने विद्रोह-आदिके सम्बन्धमें पूर्ण विवरण लिखकर भेज दिया।

तक्षशिलाधीशसे युवराज बोले—'मैं मानता हूं, जितनी प्रतिभा आपमें है, यदि सच्चे हृदयसे उसका उपयोग किया जाता और वह प्रतिभा गन्दी भावनाओंकी प्रेरणासे कलुषित न होती, तो आपकी और प्रजाकी निश्चय ही भलाई होती।'

तक्षशिलाधीश प्रजामण्डलके समक्ष अपमानित था, लज्जित था और युवराजदेवसे असंतुष्ट था, उसका हृदय क्रोधसे पूर्ण था। वह मौन था। थोड़ी देरमें वहाँसे चला गया।

राज्य-कर्मचारियों एवं तक्षशिलाधीशकी गंदी भावना युवराजके अहितके लिये उग्रतर होने लगी। युवराजके लिए प्रजाके हृदयमें जितना प्रेम था, राज्य-कर्मचारियोंके हृदयमें उससे अधिक घृणा थी।

१६

युवराज कुणाल, युवराज्ञी तथा युवराज–कुमार सम्प्रतिको अभी एक सप्ताह ही हुआ, पाटलिपुत्रसे तक्षशिला आए। यहाँ पहुँचकर युवराजने बड़ी कुशलतासे विद्रोह शान्त कर दिया। उधर सम्राट अशोकवर्द्धन अत्यधिक अस्वस्थ हो गए। सम्राटके अचानक अत्यधिक बीमार हो जानेके कारण पाटलिपुत्रमें बड़ी उदासीनता छा गयी। आमात्यश्रेष्ठ, महाबलाधिकृत; प्रमुख राज्य-कर्मचारी, बड़े-बड़े नागरिक और राज्यवैद्य त्र्यम्बक गुप्त आदि घबराकर तक्षशिलासे पुनः युवराजको बुलाना चाहते थे; किन्तु साम्राज्ञी तिष्यरक्षिताकी अनुमति न मिली।

सम्राटके दिन-प्रतिदिन गिरते स्वास्थ्यको देख राजाज्ञा प्रसारित करने का सम्पूर्ण अधिकार तिष्यरक्षिताको ही सौंपा गया। नित नूतन राजाज्ञासे प्रजामण्डलमें संकट छाने लगा। प्रजाके सुख-दुःखका ध्यान परिचारिकाश्रेष्ठीसे अचानक साम्राज्ञी हो जानेवाली तिष्यरक्षिताको कहाँ था?

सम्राट अशोकवर्द्धनके प्रकोष्ठमें भीड़ लगी थी; कुछ लोग प्रविष्ठ हो रहे थे, कुछ लोग प्रकोष्ठके बाहर जा रहे थे। राजभवनमें चिन्ता व्याप्त हो गयी थी। राज्यवैद्य त्र्यम्बक गुप्तकी चिकित्सा चल रही थी। राजमहिषी तिष्यरक्षिताने उनसे पूछा—सम्राटदेवकी अब क्या दशा है भिषग्शिरोमणि?'

'संसारमें कोई ऐसा रोग नहीं राजमहिषी! जिसकी औषधि न हो। औषधियाँ अपना चमत्कार अवश्य दिखाएँगी। रोगपर नियंत्रण

हो रहा है। घबरानेकी बात तो नहीं है !' त्र्यम्बक गुप्तने विनीत स्वर में कहा।

राजमहिषीको संतोष हुआ। वह अपने प्रकोष्ठमें-लौट आई। थोड़ी देरमें प्रतिहारिणी प्रकोष्ठमें प्रविष्ट हुई, उसने साम्राज्ञीको अभिवादन किया।

तिष्यरक्षिताने पूछा – 'कहो क्या संदेश लाई हो ?'

'तक्षशिलानगरसे युवराजदेवने दूत भेजा है। वह कोई आवश्यक पत्र साथ लेकर द्वारपर आपसे मिलनेकी प्रतीक्षा कर रहा है।'

'आने दो उसे।'

कक्षमें प्रविष्ट होकर राजमहिषीकी जय बोलते हुए उसने अभिवादन किया और युवराजका पत्र तिष्यरक्षिताके समक्ष उपस्थित कर दिया।

हाथमें पत्र लेकर राजमहिषीने पूछा 'युवराज और युवराज्ञी तथा सम्प्रति कुशलपूर्वक तो हैं ?'

'हाँ राजमाता !'

'तक्षशिलामें जो विद्रोह चल रहा था, उस सम्बन्धमें क्या समाचार लाए हो तुम ?'

'विद्रोह तो अपनी अद्भुत नीतिसे शान्त कर दिया युवराजने, साम्राज्ञी ! युद्धकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी वहाँ।'

आश्चर्य व्यक्त करते हुए साम्राज्ञी बोली—'बिना युद्धके विद्रोह शान्त हो गया ?'

'हाँ साम्राज्ञी ! युद्धकी आवश्यकता नहीं पड़ी। युवराजको बड़ी सफलता मिली। विद्रोहियोंके हृदय पर विजय प्राप्तकी युवराज-देवने। प्रजामण्डलके हृदयमें युवराजदेवके प्रति बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो गयी है। कर्मचारीगण ही विद्रोहमें अपराधी ठहराए गए हैं। इस संबन्धमें ही युवराजदेवने यह पत्र भेजा है।'

दूत मौन हो गया। तिष्यरक्षिता पत्र पढ़ने लगी। वह पत्र द्वारा तक्षशिलाकी परिस्थितिसे अवगत हो गयी। तिष्यरक्षिता चकित रह गयी। उसे यह विश्वास न था कि वहांका विद्रोह इतनी सरलतासे दब जायगा, विद्रोहियोंका अधिनायक गोपकचन्द्रभाल युवराजका मित्र बन जायगा, वहाँ शान्ति स्थापित हो जायगी और नागरिकोंमें युवराजके प्रति हिंसाके स्थानपर श्रद्धाकी भावना पैदा हो जायगी। उसने तो सोचा था कि—विद्रोहकी भयंकर आंचमें युवराज भस्म हो जायँगे। युद्धकी विकरालता कितनी भयंकर होती है, इसको कल्पना कर उसने निश्चयकर लिया था कि तक्षशिलासे युवराज पुनः जीवित न लौटेंगे। किन्तु विद्रोहमें युवराजको सफल देख वह चिन्तित हो उठी।

दूतने मस्तक नवाकर पूछा—'मेरे लिए क्या आज्ञा हो रही है साम्राज्ञी ?'

'तुम ? राजनगर पाटलिपुत्रमें ही एक महीने विश्राम करोगे। पत्रका उत्तर और राजाज्ञा दूसरे दूत द्वारा भेज दी जायगी।'

विनम्र होकर दूत बोला—'जो आज्ञा साम्राज्ञी !'

दूत बाहर चला गया। तिष्यरक्षिता युवराजके विनाशकी दूसरी योजना तैयार करना चाहती थी। वह सोच-विचार करने लगी। उसी समय तक्षशिलाधीशका संदेशपायक भी द्वारपर आ उपस्थित हुआ। उसके द्वारपर आनेकी सूचना प्रतिहारिणीने राजमहिषी-को दी।

तिष्यरक्षिता बोली—'उसे उपस्थित करो।'

प्रतिहारिणीको आदेश देकर राजमहिषी सोचने लगी—'दूसरे दूतके इतने शीघ्र पुनः तक्षशिलासे आनेका कारण क्या हो सकता है ? कहीं फिर तो नहीं विद्रोह उठ खड़ा हुआ ? राजमहिषी यह सब

सोच ही रही थी; तभी दूतने कक्षमें प्रविष्ट होते ही विनम्रतासे उसे सम्मान प्रदर्शित करते हुए अभिवादन किया।

तिष्यरक्षिता बोली—'आओ दूत ! क्या समाचार लाए ? दूतने निवेदन किया—'तक्षशिलाधीशने राजमहिषीकी सेवामें यह संदेश भेजा है कि युवराजदेवने स्वामिभक्त राज्य-कर्मचारियों एवं तक्षशिलाधीशका बहुत बड़ा अपमान किया है और विद्रोहियोंसे मिलकर हम सबको दण्ड दिलानेके हेतु सम्राटदेवकी सेवामें अपराधी प्रमाणितकर पत्र भेजा है। यह पत्र आपसे मिलकर एकान्तमें देनेके लिए तक्षशिलाधीश महोदयने मुझसे कहा था।' संदेशवाहकने राज-महिषीके समक्ष पत्र उपस्थित कर दिया।

तिष्यरक्षिताने पत्र पढ़ा। वह मौन होकर सोचने लगी।

दूत बोला—'राजमहिषी ! अपने प्राण बचानेके लिए तक्षशिला-धीशने आपसे करबद्ध प्रार्थनाकी है। उनका विश्वास है कि श्रीसम्राटदेवसे आपही उन्हें क्षमा प्रदान करा सकती हैं।'

'ऐसा विश्वास तक्षशिलाधीशको कैसे हो गया संदेशवाहक ?' तिष्यरक्षिता बोली।

'इसमें आश्चर्य न करें साम्राज्ञी ! आपकी सेवामें कुछ निवेदन करना चाहता हूं, यदि अभयदान दें तो।' दूत कर-बद्ध बोला।

'निर्भय होकर कहो; जो कहना चाहते हो दूत !'

'युवराजदेव और आपके मध्य जो विषमता पैदा हो गयी है, आपके हृदयमें प्रतिशोधकी जो भावना गुप्तरीतिसे चल रही है, जो-जो घटनाएँ आप और युबराजदेवके मध्य घटित हैं, उन सभी घटनाओंसे तक्षशिलाधीश अवगत हैं।'

राजमहिषी चकित हो गयी। तक्षशिला जैसे दूरस्थ प्रान्त तक उसकी गोपनीय बातें पहुँच चुकी हैं ? उसके आश्चर्यकी सीमा न

रही। राजमहिषीने सोचा—'तक्षशिलाधीशके गुप्तचर बड़े निपुण हैं।'

'युवराज कुणाल और तक्षशिलाधीशके बीच मनोमालिन्य पैदा हो गया है?' तिष्यरक्षिता बोली।

'हाँ राजमहिषी! तक्षशिलाधीशके हृदयमें युवराजदेवके प्रति श्रद्धाके स्थान पर घृणा है। यदि आप युवराजदेवके विरुद्ध तक्षशिलाधीशसे सहायता लेना चाहें, तो वे अवश्य इस कार्यमें तत्पर हो जायँगे।'

'ठीक है। अच्छा तुम जाकर विश्राम करो दूत! द्वारपर प्रतिहारिणीके उपस्थित होनेकी आज्ञा सुनाओ।' राजमहिषीने कहा।

परिचारिका उपस्थित हुई, उसने अभिवादन किया साम्राज्ञीको। 'आज्ञा राजमहिषी!' पूछा उसने।

'रुद्रसेनको तुरन्त उपस्थित करो प्रतिहारिणी।'

'जो आज्ञा साम्राज्ञी!' मस्तक नवाकर वह बोली।

प्रतिहारिणी बाहर चली गयी। थोड़ी देरमें साम्राज्ञीका प्रमुख सहायक वीर सैनिक रुद्रसेन उपस्थित हुआ। साम्राज्ञीको उसने अभिवादन किया।

'आओ रुद्रसेन! तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ?'

'मैं साम्राज्ञीकी सेवामें उपस्थित हूँ, आज्ञा करें राजमहिषी! सम्मान प्रदर्शित कर बोला रुद्रसेन।'

'श्रीसम्राटदेवकी अस्वस्थ्यताका पता तो तुम्हें होगा ही?'

'और यह भी राज्याज्ञा प्रसारित करनेका अधिकार राजमहिषीको ही इस समय है।' रुद्रसेन बोला।

'तुम्हारे कथनका तात्पर्य?'

'यही कि इस समय राज्याज्ञा हस्तांतरित हो जानेसे प्रतिशोधके लिए उपयुक्त अवसर प्राप्त हुआ है राजमहिषीको।'

'इसीलिए तुम्हें विचार-विमर्शके लिए बुलाया गया है।'

'आज्ञा दें राजमहिषी ! मैं तत्पर हूँ।'

'तक्षशिलाका विद्रोह दमन करनेके लिए युवराजको भेजा गया था, जिसमें आशाकी गयी थी कि युवराज वहाँके भयानक विद्रोहमें अवश्य ही प्राण त्याग करेंगे, वहाँ पहुँचकर उन्होंने विना युद्धके ही विद्रोहियोंको शान्त कर दिया। उनके इस कार्यमें राज्य-कर्मचारी तथा तक्षशिलाधीश अपमानित हो गए हैं। जिस कारण असंतुष्ट होकर वहाँके अधिकारी युवराजके विरुद्ध हो उठे हैं। तक्षशिलाधीश हम लोगोंकी सहायताके लिए तत्पर है। उसका पत्र आज ही आया है। शासन-प्रबन्धका सारा उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है और सारी राज्याज्ञा मेरे द्वारा प्रसारित हो रही है।'

रुद्रसेन बोला—'हाँ राजमहिषी ! यह सब सत्य है।'

'यह देखो तक्षशिलाधीशका पत्र है और यह युवराज कुणालका।

रुद्रसेनने दोनों पत्र देखा और कहा—'साम्राज्ञीका कथन सत्य है। अब जो करना है; उसकी आज्ञा प्रदान करें।'

'सोचती हूँ; युवराजपर राजद्रोहका अपराध लगानेका अच्छा अवसर आ गया है। इस अपराधमें कठोर राजदण्डकी आज्ञा तक्षशिला भेज दी जायगी और निर्विघ्न यह षड़यन्त्र सफल हो जायगा।'

'इसमें मुझे क्या करना होगा राजमहिषी ?'

'तुम्हें ही आज्ञा-पत्र लेकर तक्षशिला जाना होगा। तुम विश्वसनीय आदमी हो। यदि किसी अन्य व्यक्तिके द्वारा यह राजाज्ञा भेजी गयी तो संभव है, वह जाकर युवराजसे मिल जाय और सारा षड्यन्त्र विफल हो जाय।'

'प्रस्तुत हूँ राजमहिषी ! आपकी आज्ञानुसार कार्य करनेके लिए।'

'तुम तक्षशिलाधीशको पत्र दोगे और कहोगे—इस आज्ञापत्रके

अनुसार युवराजके दण्डकी व्यवस्था कीजिए। सम्राटदेवने स्वयं यह राजाज्ञा भेजी है।'

'किन्तु सोचता हूँ; साम्राज्ञी ! जब विद्रोहियोंको युवराजने अपनें पक्षमें कर लिया है और जो सैनिक वहाँ भेजे गए हैं, वे भो युवराजके पक्षमें हैं, अतः स्वयं वीर और अजेय तो युवराज हैं ही, दूसरे इस शक्तिको पाकर वे और भी दुर्विजेय हो जायँगे और यदि वे इस आज्ञापत्रके अनुसार राजदण्ड भोगनेके लिए तत्पर न हुए, तो तक्षशिलाधीश कर ही क्या सकता है ?'

'मैं जानती हूँ रुद्रसेन ! पत्रमें सम्राटदेवकी मुद्रा अंकित रहेगी, अतः महान् पितृभक्त युवराज स्वतः राजदण्ड भोगनेके लिए प्रस्तुत हो जायँगे। पिताकी आज्ञाका वे उल्लंघन नहीं करते। यह सर्वविदित बात है।'

'और यदि ऐसा न हो साम्राज्ञी ! कहीं युवराजने अस्वीकार कर दिया तो ? क्योंकि यह तो उनकी इच्छापर ही निर्भर है।'

'तो किसी अन्य उपायको काममें लाया जायगा। इस समय तो तुम्हें इसी राजाज्ञासे परीक्षा करनी है।'

'जो आज्ञा साम्राज्ञी।' रुद्रसेन बोला।

साम्राज्ञी तिष्यरक्षितानें तत्काल तक्षशिलाधीशके नाम पत्र लिखा और उसपर सम्राटकी मुद्रा अंकितकर दी। राजमहिषीनें रुद्रसेनको पत्र देते हुए कहा—'लो; इसी समय तीव्रगामी रथपर तक्षशिला प्रस्थान करो।'

पत्र लेकर रुद्रसेननें राजमहिषीके समक्ष मस्तक नवा प्रकोष्ठके बाहर प्रस्थान किया।

राजमहिषीनें राज्यप्रासादमें जहाँ सम्राटदेव अस्वस्थ पड़े थे; प्रवेश किया। वहाँ आमात्यश्रेष्ठ और त्र्यम्बक गुप्त जो राजपरिवारका सर्वश्रेष्ठ वैद्य था, उपस्थित थे, राजमहिषीके प्रविष्ट होनेपर ये

लोग उठ खड़े हुए और उन्हें सम्मान प्रदर्शित कर यथास्थान बैठ गए। राजमहिषीने पूछा—'सम्राटदेवकी कैसी दशा है, भिषग्-शिरोमणि ?'

'अभी रोग कम तो नहीं हुआ है साम्राज्ञी ! किन्तु वृद्धि पर नहीं है।'

'तब क्या होगा ?' चिन्ता व्यक्त करते हुए राजमहिषी बोली।

'चिन्ताकी कोई बात नहीं। दवाका प्रभाव दिखाई पड़ रहा है, निश्चय ही लाभ होगा। अवस्था शोचनीय होते हुए भी भयदायक नहीं है, साम्राज्ञी !'

तिष्यरक्षिता नीचे दृष्टिकर सोचने लगी।

१७

तक्षशिलामें युवराज कुणालसे गोपकचन्द्रभाल राजभवनमें मिलने आया। प्रतिहारीने युवराजसे निवेदन किया—'श्रीयुवराजदेव! द्वारपर गोपकचन्द्रभाल महोदय मिलनेके लिए उपस्थित हैं।'

'आने दो।'

'जो आज्ञा।' कहते हुए मस्तक नवाकर प्रतिहारी बाहर चला गया और उसने गोपकचन्द्रभालको भेजा।

'आओ मित्र गोपकचन्द्रभाल!' कहते हुए मुस्कुरा पड़े युवराज! कांचनके साथ उन्होंने हर्ष व्यक्त किया। गोपकचन्द्रभालने दोनोंको अभिवादन किया। युवराज और युवराज्ञीके सम्मुख वह बैठ गया। युवराज ने पूछा—'आज कैसे आगमन हुआ भद्र?'

'युवराज और युवराज्ञीके दर्शनार्थ चला आया हूँ और अपने यहाँ आमन्त्रितकर साथ लिवा चलूँगा। हमारे परिवारके लोग युवराजदेवके प्रति बड़ी श्रद्धा रखते हैं।' गोपकचन्द्रभाल बोला।

'मैं तो तुम्हारे यहाँ अनेक बार जा चुका हूँ मित्र!' युवराज ने कहा।

'किन्तु अभी युवराज्ञी और युवराजकुमार सम्प्रतिका पदार्पण नहीं हुआ है देव! सभी लोग इनके भी दर्शनकी अभिलाषा रखते हैं।'

'क्यों सम्प्रति! चलोगे तुम भी हमलोगोंके साथ?'

'माताजी भी चलेंगी न पिताजी? मैं तो उनके साथ चलूँगा।'

'तुम बताओ कांचन?'

सब लोग कांचनमालाकी ओर देखने लगे। कांचनमालाने कहा 'गोपकचन्द्रभालका आमन्त्रण भला क्यों न स्वीकार किया जायगा ? युवराजदेवकी इनसे आत्मीयता जो ठहरी।'

'ठीक है।' युवराजदेवने कहा।

सबको साथ लेकर गोपकचन्द्रभाल अपने भवनकी ओर चला। मार्गमें उसने युवराजदेवसे पूछा—'श्रीयुवराजदेव ! अपराधियोंके संबंधमें जो पत्र पाटलिपुत्र श्रीसम्राटदेवकी सेवामें भेजा गया था; अभी तक उसका उत्तर नहीं आया ?'

'नहीं भद्र ! अभी तक सम्राटदेवकी कोई आज्ञा उस संबंधमें नहीं आई।'

'बहुत दिन लग गए देव ! अब तक तो उसका उत्तर अवश्य आ जाना चाहिये था।

'हाँ आना तो चाहिए था; किन्तु राज-काज है, सम्राटदेवको उसपर विचार करनेका अवसर संभव है, अभी तक न प्राप्त हो सका हो। उत्तर आवेगा, अवश्य आवेगा; इसमें सन्देह नहीं भद्र !'

गोपकचन्द्रभाल बड़ा प्रतापी आदमी था; तक्षशिलाके नागरिकों में उसका सबसे बड़ा सम्मान था। नगरके बाहर उसकी विशाल अट्टालिका थी। उसका भवन वेशकीमती साजसज्जासे भव्य था। युवराजका रथ उसके भवनपर जा खड़ा हुआ। सब लोगोंने युवराज, युवराज्ञीका बड़ा स्वागत् किया। उसके परिवारमें युवराज्ञी, सम्प्रति समेत युवराजके आगमनसे हर्ष छा गया। युवराज एक बहुत ही सुन्दर कक्षमें टिकाए गये।

युवराजसे मिलनेके लिए कितने ही लोग गोपकचन्द्रभालके यहाँ आ पहुँचे। युवराजको उन लोगोंने अभिवादन किया और युवराजने उन सबोंका सम्मान किया।

कुछ नागरिकोंने कहा—'सम्राटदेव न्यायप्रिय हैं। राज्यमें प्रजाके सुख-दुःखका स्वयं वे ध्यान रखते हैं।' कुछ नागरिकोंने कहा—'युवराजदेव भी तो प्रजाकी पीड़ाका अनुभव किया करते हैं। राज्य-कर्मचारियोंका ही अपराध, प्रजामण्डलके समक्ष स्वीकारकर युवराज-देवने अपनी न्यायप्रियताका प्रमाण दिया है।'

आपसमें इस प्रकार गोपकचन्द्रभालके यहाँ वार्ता चल रही थी; उसी समय राजभवनका एक परिचारक उपस्थित हुआ; जिसकी घबराहटका आभास उसकी भावभंगिमासे प्रकट हो रहा था, उसने युवराजको अभिवादन किया। युवराजने प्रश्नसूचक दृष्टिसे उसकी ओर निहारा।

तक्षशिलाधीशने सेनाकी एक टुकड़ी लेकर युवराजदेवके ऊपर आक्रमण करनेके लिए राजभवन घेर लिया और जब उन्हें पता चला कि श्रीयुवराजदेव गोपकचन्द्रभालके यहां गये हैं, तब इधर ही आक्र-मणके उद्देश्यसे वे ससैन्य चले आ रहे हैं।

युवराजको सम्राट अशोकके अत्यधिक बीमार हो जानेका पता न था और न तो यही पता था कि इस समय राजाज्ञा साम्राज्ञी तिष्यरक्षिता द्वारा प्रसारित हो रही है।

प्रतिहारीकी बातें युवराज एवं चन्द्रभालकी समझमें अचानक न आ सकीं। युवराज गम्भीर हो गए। उन्होंने पूछा—'इस प्रकार तक्षशिलाधीशके अचानक आक्रमणका कारण? हमारे ऊपर उसके आक्रमणका यह साहस?'

मौन था परिचारक। युवराज उठ खड़े हुए, हाथमें कृपाण लेकर। वे बाहर आना चाहते थे। गोपकचन्द्रभालने उन्हें रोका और कहा—'इस प्रकार युवराजदेवका अकेले बाहर जाना ठीक नहीं।'

'यह तुम्हारे आत्मबलकी निर्बलता है चन्द्रभाल ! जाने दो मुझे। युवराजदेवकी वीरता विख्यात् है, किंतु अचानक किसी कार्यमें प्रवृत्त हो जाना यह सेवक ठीक नहीं समझता देव ? आप रुकें मैं अभी बाहर पता लगाता हूँ।'

गोपकचन्दभालको बाहर आते ही द्वारपर तक्षशिलाधीश दिखायी पड़ा; उसके साथ सहस्रों सैनिक सशस्त्र खड़े थे। द्वार पर गोपकचन्द्रभालको आते ही तक्षशिलाधीश बोला—'गोपकचन्द्रभाल महोदय ! आपके यहाँ युवराजदेव हैं ?'

'आपके इस व्यवहारका कारण श्रीमान् ! चन्द्रभाल बोला।

'पहले उत्तर दीजिए 'युवराजदेव कहाँ हैं ?'

'युवराजदेव इस समय आराम कर रहे हैं।'

'उनसे निवेदन कीजिए; उनके संबंधमें श्री सम्राटदेवका आज्ञापत्र राजनगर पाटलिपुत्रसे आया है।'

'किंतु युवराजदेव इस समय आराम कर रहे हैं।'

'उनसे बोलिए मैं इसी समय उनसे मिलना चाहूँगा।'

आपके कथन में युवराजदेवके अपमानका आभास है महोदय यह न भूलिए कि आप किसका अपमान कर रहे हैं।'

'और आप भी भूलकर रहे हैं महाशय ! आप राजाज्ञाका उल्लंघन करते जा रहे हैं।'

'राजाज्ञाका उल्लंघन मैं नहीं कर रहा हूं, मेरे कथनमें युवराजदेवके सम्मानका ध्यान रखा गया है। क्या युवराजदेवके व्यक्तित्वमें राज्याज्ञा नहीं निहित है।

'इतना समय मेरे पास नहीं है कि आपकी हर बातोंका उत्तर मैं दूं।

मुझे आप और युवराजकी आज्ञा नहीं माननी है।'

गोपकचन्द्रभाल बड़ा दुःखी हुआ। 'आपकी उद्दंडता असहनीय

है महोदय ! किसके समक्ष और किसके संबंधमें आपकी बातें हो रही हैं ? इसका आपको कुछ भी ध्यान नहीं है। विवश होकर मैं ध्यान दिलानेके लिए बाध्य हो जाऊँगा। क्रोधित होकर बोला चन्द्रभाल।

'मैं अपकी इच्छा न होने पर भी भीतर प्रवेश करूँगा।'

'ऐसा असंभव है। हाँ, यदि सम्राटदेवका आज्ञा-पत्र आप लाए हैं, तो उसे मैं स्वयं युवराजदेवके समक्ष उपस्थित करूँगा।'

'यही सही। लीजिए यह पत्र।' पत्र देते हुए कहा तक्षशिलाधीशने।

पत्र लेकर चन्द्रभाल युवराजकी सेवामें पहुंचा। हाथ आगे बढ़ाकर उसने उन्हें सम्राटदेवका पत्र दे दिया। युवराजने पत्र पढ़ा। सहसा वे उदास हो गए। उनका कंठ सूख गया। मुखमंडल पीला हो गया। हाथसे पत्र स्वतः गिर पड़ा, क्षणमात्रमें ही युवराजकी थोड़ी देरके लिए जैसे चेतना लुप्त हो गयी। वे मौन होकर पलँगपर लेट गए।

गोपकचन्द्रभाल भी युवराजकी दशा देखकर घबरा गया। उसने पत्र उठा लिया, उसे पढ़ा। थर-थर उसका गात काँपने लगा, युवराज के समक्ष उपस्थित अन्य लोगोंने पत्रमें लिखे गए आदेशकी भयंकरताका अनुमान किया; किन्तु किसी मुख्य बातकी जानकारी उन्हें न हुई। उनकी उत्कण्ठा प्रबल होने लगी। सबकी जिज्ञासा शान्त करनेके लिए गोपकचन्द्रभाल पत्र पढ़ने लगा।

देवानांप्रिय धर्मरक्षक मगधाधिपति प्रियदर्शी सम्राट अशोकवर्द्धन द्वारा प्रेषित आदेश-पत्र।'

उपस्थित नागरिकोंने अपना ध्यान उस ओर आकृष्ट किया। गोपकचन्द्रभाल पुनः पत्र पढ़ने लगा।

'तक्षशिलामें युवराज कुणालको विद्रोह शान्त करनेके लिए भेजा गया; किन्तु वे अपने कर्तव्यसे विचलित हो विद्रोहियोंसे जा मिले, अपने व्यवहारसे वे राजभक्त कर्मचारियोंको असन्तुष्टकर बहुत बड़ा

अपराध कर बैठे। विद्रोहियोंके साथ मिलकर युवराज स्वयं एक विद्रोही प्रमाणित हो गए। न्यायकी दृष्टिसे राज्य-कर्मचारियोंका अपमान करनेसे युवराजको दण्ड दिया जाना आवश्यक प्रतीत होता है; किन्तु यह सब दण्ड देनेका अधिकार तक्षशिलाधीशको दिया जाता है तथा आज्ञा की जाती है कि वे अपराधी युवराज कुणालके दोनों नेत्र तप्तलौह शलाका द्वारा फोड़ दें।

उपस्थित लोग हाहाकार कर उठे। सबकी आकृति म्लान पड़ गई।

चन्द्रभाल पुनः पत्र आगे पढ़ने लगा—'यह दण्ड पा जानेके पश्चात् युवराज कुणालको पुनः आज्ञा दी जाती है कि वे मौर्य-साम्राज्यकी सीमासे बाहर जाकर भिक्षु वेशमें भिक्षाटन करें।

—मौर्य सम्राट अशोकवर्द्धन।

एक नागरिक बोला—'क्या यह सम्राटदेवका पत्र हो सकता है? मुझे विश्वास नहीं होता कि यह आज्ञापत्र सम्राटदेवका है।'

'इसमें सन्देह नहीं करना है; श्रीसम्राटदेवकी पत्रके ऊपर मुद्रा अंकित है; अतः यह निश्चय ही श्रीसम्राटदेव द्वारा ही पेषित आज्ञा-पत्र है।' बोला चन्द्रभाल।

'मृत्यु तुल्य कष्ट, एक पिता अपने पुत्रको नहीं दे सकता। यह क्या किया सम्राटने?' एक नागरिक बोला।

'यह अन्याय है, सहनकी सीमाके पार है।' गोपकचन्द्रभाल बोला। 'पिताकी आत्मा पुत्रके लिये इतना कठोर हो सकती है! यह आज्ञा-पत्र इसे प्रमाणित कर रहा है।' एक नागरिक बोला।

'युवराजके कार्यका यही पुरस्कार है।' गोपकचन्द्रभाल बोल उठा।

युवराज मौन थे, विस्मित थे, लज्जित थे, चिन्तित थे; विचित्र थी उस समय उनकी अवस्था।

'सम्राटदेवकी आज्ञासे मैं चकित हूँ, प्रिय चन्द्रभाल! मुझे विश्वास था—राज्य-कर्मचारियोंके अपराधका उन्हें अवश्य दण्ड मिलेगा ....। ग्लानि है मुझे।' युवराज बोले।

युवराजको अत्यन्त क्षुभित देख अन्य नागरिकोंके साथ गोपकचन्द्रभाल बड़ा दुःखी हुआ। उसने कहा—'यह ठीक नहीं हो सकता युवराजदेव! इसे हम कदापि नहीं सहन कर सकते। हम विद्रोह करेंगे, मौर्य साम्राज्यको उलट देंगे। आपके साथ घोर अन्याय हुआ है देव!'

मुझे ग्लानि इस बातकी है कि प्रजामण्डलके साथ अधिकारियोंका जो अपराध है, उसका उन्हें अवश्य दण्ड मिलना चाहिए था। उसपर ध्यान न दिया जाना सम्राटदेव द्वारा; मेरी ग्लानिका कारण है। यों तो पिताजी द्वारा दी गई आज्ञाका मैं अवश्य पालन करना चाहूँगा। मुझे जो दण्ड दिया गया है, वह सहर्ष मुझे मान्य है, उसके लिए न मुझे दुःख है न चिन्ता ही।'

'नहीं युवराजदेव! हम अपने साथियोंके साथ सम्राटसे विद्रोह करनेके लिए तत्पर हैं।'

'सम्राटदेव मेरे जो पिता हैं मित्र! उनकी आज्ञाका पालन मेरा परम कर्तव्य है।'

'किंतु मेरी आँखें हाथ में कृपाण लिए रहने पर आपको दण्ड भोगते नहीं देख सकतीं।'

'नहीं प्रियवर! बुलाओ तक्षशिलाधीश को।'

'ऐसा नहीं हो सकता युवराजदेव! शक्ति रहते हुए मेरे समक्ष ऐसा कदापि नहीं होगा।'

युवराज स्वयँ उठे और बाहर चले गए; उन्होंने कहा—तक्षशिलाधीश महोदय! आइये राजाज्ञाका पालन करनेमें मैं तत्पर हूं।'

बड़ी गर्बीली दृष्टिसे तक्षशिलाधीशने अपने अपमानका बदला चुकानेकी सफलता और अपनी विजयका अनुभवकर युवराजकी

ओर देखा। चन्द्रभालसे यह सहन न हुआ। उसके अन्तःकरणमें यह दृश्य अंकित हो गया।

युवराजदेव गम्भीर मुद्रामें थे। वे राजदण्ड भोगनेमें उल्लसित थे। वे सोच रहे थे; मेरे जीवित रहनेकी सम्राटदेवको आवश्यकता नहीं है। मैं उनकी आकांक्षाके विरुद्ध जीकर क्या करूँगा। मुझे धिक्कार है। प्राण देकर पिताजीको अवश्य संतुष्ट कर दूंगा। निश्चय ही राजदण्ड भोगनेके लिए मैं तत्पर हूँ। युवराजकी सारी व्यथा; सारी चिन्ता और समस्त परेशानियाँ क्षणमात्रमें दूर हो गयीं। पता नहीं; कहाँसे उन्हें सहर्ष राजदण्ड भोगनेके लिए आत्मबल हो गया। उनकी गम्भीर आकृति अरुण वर्ण हो गयी। वे बोले—तक्षशिलाधीश ! मुझे राजाज्ञा सर्वथा मान्य है; मैं दण्ड भोगनेकें लिए तैयार हो गया हूँ। आप शीघ्रता करें।'

तक्षशिलाधीश अनेक सैनिकोंके साथ दो चाण्डालोंको लेकर युवराजकी ओर बढ़ा।

उपस्थित जन-समुदायमें हाहाकार मच गया। 'पिता नहीं शत्रु हैं सम्राटदेव ! हम सब नागरिक विद्रोह चाहते हैं। ऐसा कदापि नहीं होगा। युद्धमें हम सब प्राण हथेली पर लेकर तत्पर है। भाग जाओ तक्षशिलाधीश ! नहीं तो अभी-अभी क्षणमात्रमें हम तुम्हें निष्प्राण कर देंगे। बदतमीज कहींके। दूर हट जा सामनेसे ! हम सब नागरिक तुझे देखना नहीं चाहते। दुष्ट ! पापात्मा ! सम्राटके राजदण्ड से भले तू छूट गया; किन्तु हम लोग तुम्हें दण्ड देंगे। चाहे जहाँ चला जा; किन्तु तू बच नहीं सकता।' नागरिकोंके साथ सैनिकोंने भी घोषणा की—'हम युवराजदेवके साथ हैं। सम्राटदेवकी आज्ञा नहीं मान सकते !'

काँप गया तक्षशिलाधीश। भयभीत हो गए उसके साथके सैनिक और घबरा गए दोनों चांडाल।

किसी प्रकार तक्षशिलाधीश साहस बटोरकर बोला—'श्रीमान् राजदंड भोगनेके लिए तत्पर हो जाइए।'

'चन्द्रभाल तक्षशिलाधीशके समक्ष उपस्थित हो गया। नागरिकों, सैनिकोंका बल पाकर, उनका रुख देखकर बलवान् गोपकचन्द्रभाल की आत्माने महान् शक्तिका अनुभव किया। उसका आवेग प्रखर हो गया। गले पर हाथ लगाकर चन्द्रभालने एक भारी झटकेसे उसे पीछे धकेल दिया; वह निस्तेज होकर गिरते-गिरते बचा। उसे चन्द्रभाल मारना ही चाहता था कि युवराजने उसका हाथ पकड़ लिया।

'शान्त हो जाओ! मित्र चन्द्रभाल! शान्त हो जाओ।'

'नहीं युवराजदेव! यह कदापि नहीं होगा।'

'नहीं प्रियवर! यदि मेरे प्रति तुम्हारी गाढ़ी प्रीति है, तो तुम्हें मेरी बात माननी होगी। राज्याज्ञा पालन स्वयं मैं करूँगा और आशा है, मेरी आज्ञा तुम्हें भी मान्य होगी।'

युवराजने सबको शान्त कर दिया।

चाण्डालोंसे युवराज बोले—'आओ भद्र! मैं तैयार हूँ। लौहशलाकाओंसे मेरी आँखें फोड़ दो।'

'नहीं युवराजदेव! यह कार्य हमलोग कदापि नहीं कर सकते। हमें ज्ञात नहीं था कि युवराजदेवकी आँखें फोड़नेके लिए हमें यहाँ लाया गया है।

'राज्याज्ञाका तुम उल्लंघन कर रहे हो भद्र!'

'इस अपराधका दण्ड हम भोग लेंगे युवराजदेव! किन्तु हम यह काम कभी न करेंगे। आप हमें प्राणसे भी अधिक प्रिय हैं।' चाण्डालोंने कहा बड़े विनीत स्वरमें।

सैनिकोंने अपना-अपना हथियार तक्षशिलाधीशके समक्ष फेंक

दिया और चाण्डालोंने लौह श्लाकाएँ। सब मौन हो गए; मस्तक सबका नीचेकी ओर झुक गया।

तक्षशिलाधीश लज्जित हुआ; भयभीत हुआ और कर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। उसे कुछ भी सुझायी न पड़ा।

सैनिकों और नागरिकोंने चांडालोंके साथ कहा—'राज्याज्ञा उल्लंघनके अपराधका दण्ड हम भोगनेके लिए तत्पर हैं; किन्तु हम कोई आचरण ऐसा नहीं देख सकते और न कर सकते हैं, जिससे हमारे प्राणोंसे भी प्रिय युवराजदेवकी हानि होगी।'

गम्भीर वाणीमें बोले युवराजदेव - 'आप चिन्ता न करें तक्ष-शिला धीश महाशय! हम स्वतः राज्याज्ञाका पालन कर लेंगे। पिताकी आज्ञाका पालन अपना सबसे बड़ा कर्त्तव्य समझता हूँ, अवश्य मैं उनकी आकांक्षा पूरी करूँगा।'

उपस्थित जन-समुदाय मौन था। युवराज पुनः बोलने लगे—'तप्तशलाकाएँ कहाँ हैं? समय नष्ट नहीं करना है, बात-चीतका प्रसंग चलाकर।'

युवराज आगे बढ़े। भूमि पर फेंकी गयी शलाकाओंके समीप जा पहुंचे। उन्हें अग्निमें डाल दिया, स्वयं अपने हाथोंसे। शलाकाएँ गर्म हो गयीं। सबको देखते-देखते उन्हें उठाकर युवराजने अपने नेत्रोंके समीप कर दिया। एक बार उन्होंने चारों ओर देखा और फिर उन्हें आँखों पर फेर दिया। आँखें जल गयीं; घाव हो गए।

युवराजका यह कृत्य असहनीय था; उनके मित्र तो दुःखी थे ही, विरुद्ध तक्षशिलाधीशकी भी आत्मा काँप गयी। वह दृश्य बड़ा ही हृदय-विदारक था! सभी सैनिक और उपस्थित जन-समुदाय बौखला उठा, सब चिल्ला उठे—'हम क्रान्ति चाहते हैं; मौर्य साम्राज्यको उलट देना चाहते हैं। तक्षशिलाधीशकी हत्या चाहते हैं।'

सबको शान्त करते हुए असह्नीय पीड़ाको दबाकर युवराज बोले--

'प्रिय भाइयों ! यदि आप सब हमारे ऊपर प्रेम रखते हैं, तो हमारी बातोंकी उपेक्षा न करें; आप सब शान्त हो जायँ। मेरे न्यायप्रिय पिताजीने मुझमें अपराध देखा और न्यायपूर्वक दण्ड दिया। मेरे समान कितने ही अपराधियोंको प्रतिदिन दण्ड दिया जाता है। अतः आप सब लोगोंको न तो क्रान्ति करनी है और न तो मुझे कुछ उत्तर देना है। मेरी प्रार्थना ठुकराकर यदि आप सब लोगोंने मेरी इच्छाके विरुद्ध आचरण किया तो मुझे असह्नीय पीड़ा होगी। मुझे सब लोग हर्षपूर्वक विदा दें !' कहते हुए हाथ जोड़कर युवराजने मस्तक नवा दिया। सब दुःखी थे, मौन थे, सबके मस्तक झुके हुए थे।

यही दृश्य देखनेके लिए हमें उस दिन मृत्यु-मुखसे उबारा था आपने युवराजदेव ! हाय ! मैं आपकी कुछ भी भलाई न कर सका। धिक्कार है मुझे।' पश्चाताप करते हुए गोपकचन्द्रभाल बोला।

'मेरे भाग्यको आपलोग नहीं बदल सकते चन्द्रभाल ! यही भाग्यमें था। अब आपलोग शान्तिपूर्वक लौट जाइए। जाओ कर्तव्य-परायण सैनिको ! जाओ; तक्षशिलाधीशकी आज्ञाका पालन करो। तुम लोगोंसे यही विनय है।' युवराज बोले।

सबके नेत्र आँसुओंसे पूर्ण हो गए। सबका गला भर आया। किसीकी वाणी प्रस्फुटित न हुई। युवराजने पूछा—'प्रिय चन्द्रभाल ! यहाँसे सब चले गए ?'

चन्द्रभाल अत्यन्त दुःखी था, मौन था, नेत्रोंसे जलकी धारा प्रवाहित होती रही।

युवराज पुनः चन्द्रभालको टटोलते हुए बोले—'बोलो भाई;

बोलते क्यों नहीं। सब चले गए?' असह्य वेदना दबाकर पूछा युवराजने।

सारी जनता चली गयी थी, दो चार व्यक्ति वहाँ खड़े रह गए थे। चन्द्रभाल कुछ न बोला, उसके पार्श्वमें खड़ा एक व्यक्ति सिसकियाँ लेते हुए बोला - 'हाँ युवराजदेव !'

युवराजदेव पुनः बोले—'चन्द्रभाल ? सम्प्रति और कांचनको यह सब घटना न ज्ञात होगी। वे सब तुम्हारी पत्नीके साथ कहाँ घूमने चले गये ? पता लगाओ। मेरी आकांक्षा है—'मौर्यसाम्राज्यके परित्यागके प्रथम उनसे एक बार मिल लूँ।' कहते हुए उनसे न रहा गया, गला भर गया।

गोपकचन्द्रभाल और उसके पार्श्वमें खड़े अन्य लोग, जोरसे रो पड़े। वहाँ करुणाका दृश्य उपस्थित हो गया। मौर्यसाम्राज्यकी सीमासे बाहर जानेकी बात सुनकर चन्द्रभाल व्याकुल हो गया। वे सब उसके साथी आर्त्तनाद कर उठे। किसीको कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। हाथ मलते सब खड़े रहे।

'चन्द्रभाल ! मेरे लिए शीघ्र ही काषायवस्त्र और कमण्डलकी व्यवस्था कर दो, नाई बुलाओ; लम्बे-लम्बे बालोंको मुड़ाकर मैं भिक्षवेश धारण करना चाहता हूँ।' युवराज बड़ी स्निग्ध वाणीमें बोले।

यह सब आप नहीं कर सकते युवराजदेव !'

'बन्धु चन्द्रभाल ! युवराजदेव न कहो; अबसे भिक्षु कुणाल कहा करो। यदि तुम मुझसे प्रेम करते हो, तो मेरी आज्ञाका पालन करो। मैं किसी भी दशामें राजाज्ञाके विरुद्ध आचरण नहीं कर सकता; अतः प्रत्येक अवस्थामें तुम्हें राजाज्ञाका पालन करना ही होगा।' वाणीमें दृढ़ता थी, गम्भीरता थी युवराज कुणाल की।

नेत्रोंमें असह्य पीड़ा थी। थोड़ी देरमें सारा समाचार पाकर सम्प्रतिके साथ आ पहुंची कांचनमाला। वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ी और कुछ देरके पश्चात् जब उसकी चेतना लौटी तब वह नहीं समझ पा रही थी कि यह सब घटना कैसे घट गयी। एक पिता पुत्रके लिए इतने कठोर दण्डकी आज्ञा दे सकता है, इसकी कभी कल्पना नहीं की जा सकती। कुछ भी हो, युवराजदेवने स्वयं अपने ही हाथोंसे आँखें फोड़ लीं, सैनिक, जनता और चाण्डाल सबके सब तो युवराज के साथ थे, तक्षशिलाधीशके सामने सैनिकोंने हथियार फेंक दिया, चाण्डालोंने लौह शलाकाएँ फेंक दी, सारी जनताने विरोध किया, किन्तु पितृ-भक्त युवराजने किसीकी एक न मानी, स्वयं अपनेही हाथों आँखें फोड़ लीं। यदि मैं रही होती तो निश्चयही वे आँखें न फोड़ पाते। मेरा सर्वस्व नष्ट हो गया, कैसे धैर्य धारण करूँ। कलिंग के युद्धके पश्चात् सम्राटदेवके हृदयमें करुणाकी धारा प्रवाहित हुई, अहिंसाका व्यापक प्रभाव साम्राज्य भरमें फैलाया गया, किन्तु सब आडम्बर मात्र था। जो पिता पितृ-भक्त पुत्रके लिए करुणा नहीं हो सकता, पुत्रके लिए अहिंसात्मक वृत्तिको नहीं ग्रहण कर सकता, वह प्रजाके लिए कैसे उदार हो सकता है? समझमें नहीं आ रहा है। मानती हूँ, यदि संसारमें न्यायका ही महत्व दिखाना था, सम्राटको तो न्याय करते! युवराजदेवने अकर्मण्य कर्मचारियोंकी भर्त्सनाकी थी, उन्हें दण्ड दिलानेके लिए निवेदन किया था, साम्राज्यको बिना हानि पहुंचाए उन्होंने भयंकर विद्रोहको दबाया था; प्रजा-मंडल जिसके लिए प्राण देनेके लिए तत्पर हो, उस न्याय-प्रिय पितृ-भक्त पुत्रको कौन ऐसा पिता होगा, जो हानि पहुंचायेगा? निश्चयही दुष्प्रकृति तिष्यरक्षिताके प्रेममें मग्न हो सम्राटको इस प्रकार चेतना शून्य होकर बिना समझे बूझे इतना कठोर दण्ड नहीं देना चाहिए। पाषाण हृदया, कुलटा साम्राज्ञी तिष्यरक्षिताके प्रभावने सम्राटको

जड़ बना डाला है. उनकी सूक्ष्म निरीक्षण महती प्रतिभा लुप्त हो गयी; शोक है ! धिक्कार है !!' सोचते हुए कांचनमालाका क्षात्र-तेज जागृत हो गया, मुखाकृति अरुणवर्ण हो गई। जान पड़ा, इसी जोशमें वह प्रलय दृश्य उत्पन्नकर मौर्यसाम्राज्यको उलट देगी। नष्ट कर देगी।

दूसरे क्षण युवराजको सदैवके लिए अंधा हो जानेका ध्यान हुआ कांचनमालाको। अब उनकी आंखें सर्वदाके लिए नष्ट हो गयी; सोचकर वह व्याकुल हो गयी। उस समय उसे न धैर्य रह गया और न लज्जा ही। वह विलाप करने लगी और मूर्च्छित हो गयी।

युवराज उसे शान्त करने लगे; आँखोंकी पीड़ा अत्यन्त धैर्यसे दबाते हुए कोमल वाणीसे बोले—'भद्रे ! इस प्रकार दुःखी होनेसे क्या लाभ ? धीर पुरुषही शान्त चित्तसे हर्ष-शोकका आवेग-उद्वेग सहन करते हैं। जिस कर्त्तव्यका पालन मैंने जीवनकी बाजी लगाकर किया है। इस भाँति व्यग्र होकर उसका महत्व कम न करो। भाग्यमें जो बदा था, वह हुआ, उसके लिए तड़प-तड़प कर विलाप करनेसे कोई लाभ नहीं। समयके दौरेके साथ अपना आगेका कर्त्तव्य सँभालो।'

'प्राणनाथ ! मौर्य साम्राज्यकी सीमाके बाहर आपके चले जाने पर हमारा यहाँ कौन रह जाता है; जिसकी छाँह ग्रहण कर हम और सम्प्रति जीवन बिताएँगे ?' कहा कांचनमालाने।

'भद्रे ! तुम्हारे लिए किसी प्रकारकी राजाज्ञा नहीं हुई है, अतः पिताजी तुम्हारी रक्षा करेंगे और सम्प्रतिकी भी।'

'मैं उस पितापर विश्वास नहीं करती हूँ, जिसने अपनी उदारता ऐसा गर्हित कार्यकर दिखादी। मेरी दुनियाँ उजाड़ देनेमें जिसे कुछ भी संकोच, कुछ भी दया और कुछ भी लोक-लज्जा नहीं आयी, उस निष्ठुर पाषाण-हृदय पिताका अब भी अवलम्ब ग्रहण

कराते हैं स्वामी ! अब आपको आशा वह हमारी भलाई कर सकता है ?'

'भाई; चन्द्रभाल ! इस समय देवी कांचनमालाका चित्त स्थिर नहीं। मैं इसे और सम्प्रतिको तुम्हारे पास छोड़कर जाता हूँ। इन्हें शात्वना देकर स्वस्थचित्त करना। मैं सर्वप्रथम भिक्षु होकर तुमसे यही भिक्षा चाहता हूँ।'

वहाँ बड़ा ही करुण दृश्य छा गया। कांचन उस समय मूच्छित हो, वहीं गिर पड़ी। उधर युवराजने सिरके बाल कटा हाथमें कमण्डल ले, पैरोंमें चरण पादुका पहिन और सारे शरीरको काषाय वस्त्रसे सुशोभितकर पूर्ण भिक्षु-वेशमें चल पड़े। चलते समय उन्होंने अपनेको बड़ा संयत रखा। माया-ममताका कुछ भी प्रभाव उनपर न दिखायी पड़ा। उनका हृदय बड़ा ही निष्ठुर हो गया था।

यह निष्ठुरता कितनी कारुणिक थी।

१८

राज्य-चिकित्सक सुप्रसिद्ध औषधिवेत्ता भिषग्शिरोमणि त्र्यम्बक गुप्तकी चमत्कारिक औषधियोंके सेवनसे सम्राट अशोकवर्द्धन स्वस्थ होने लगे। उधर सम्राटकी अस्वस्थताके दौरानमें राजमहिषी राज्य-संचालनके कार्योंमें अधिक व्यस्त रहने लगी और सम्राटदेवकी सेवामें समय न दे सकी। तिष्यरक्षिताके इस दुर्व्यवहारसे सम्राटदेव बहुत असन्तुष्ट हो गये और उसके व्यवहारमें बड़ी कटुताका अनुभव करने लगे। उन्हें विश्वास हो गया 'निश्चय ही तिष्यरक्षिताको मेरे वैभवपर प्रेम है और मुझसे वह प्रेम नहीं करती। वैर और प्रेम छिपानेसे नहीं छिप सकता।' दृष्टि स्थिरकर सोचते रहे सम्राटदेव। उसी समय आमात्यश्रेष्ठ वहां आ उपस्थित हुए; उन्होंने सम्मान प्रदर्शित करते हुए सम्राटदेवको अभिवादन किया।

'अब देवका स्वास्थ्य कैसा है?' बड़ी विनम्रतासे आमात्यश्रेष्ठ बोले।

'अब तो ठीक हूं, आमात्यश्रेष्ठ! भयका अब कोई कारण नहीं।'

'सम्राटदेवकी इस बारकी अस्वस्थताने हम लोगोंको चिन्तामें डाल दिया था। सभी घबरा गए थे।' कहा आमात्यश्रेष्ठने।

'इधर साम्राज्यका संचालन कैसे हो रहा है, आमात्यश्रेष्ठ? युवराज कुणालका कोई समाचार नहीं मिला? मुझे तो आश्चर्य इस बातका है कि मेरी इतनी बड़ी बीमारीका समाचार पाकर भी कुणाल नहीं आया?'

'उन्हें इसकी सूचना दी गयी थी सम्राटदेव?'

मस्तक पर आँखें चढ़ा सम्राटने पूछा—'क्या मेरे अस्वस्थ होने का समाचार वहाँ नहीं भेजा गया? मैंने तो सोचा था—अवश्य ही आपने उसके पास सूचना भेज दी होगी।'

मैं तक्षशिला सम्राटदेवकी अस्वस्थताका समाचार श्रीयुवराजदेव की सेवामें भेज रहा था, किन्तु साम्राज्ञीने मुझे अनुमति नहीं दी। क्षमा करें देव?'

'साम्राज्ञीने मना कर दिया?'

'हां देव!'

'क्यों?'

"इसका उत्तर राजमहिषी ही दे सकती हैं देव!'

'बुलाइये उन्हें।'

'जो आज्ञा देव!'

'आमात्यश्रेष्ठने प्रतिहारिणीको बुलाकर आदेश दिया—'राजमहिषीको श्रीसम्राटदेव स्मरण कर रहे हैं, जाकर सूचित करो।'

सूचना पाकर तिष्यरक्षिता उपस्थित हुई। उसने कहा—'आज्ञा सम्राटदेव!'

'तुमने मेरी अस्वस्थताका समाचार युवराजके पास तक्षशिला भेजा था?' पूछा सम्राटने।

'नहीं देव!' कहकर घबरा उठी तिष्यरक्षिता।

'क्यों।' पूछा सम्राटने।

तिष्यरक्षिताकी दृष्टि नीचेकी ओर हो गयी। उसकी वाणी प्रस्फुटित न हुई।

'बोलो राजमहिषी!' स्वरमें कुछ तीव्रता थी सम्राटदेवके।

हृदयकी अस्थिरता छिपाते हुए तिष्यरक्षिता बोली—'देव! मुझे क्षमा प्रदान करें, मैंने सोचा था–सम्राटदेव अच्छे हो रहे हैं; वैद्यजीने मुझे आश्वासन दिया था और उधर युवराज विद्रोहियोंके दमनमें

व्यस्त थे; ऐसी अवस्थामें उनका ध्यान बँटाना मैंने ठीक नहीं समझा।'

'तुमने महामात्यसे परामर्श किया था? उनसे परामर्शके लिए आवश्यक न था?'

मौन थी तिष्यरक्षिता।

सम्राटके नेत्र लाल हो उठे और रोषपूर्ण आवेगमें उन्होंने कहा—'जाओ!'

तिष्यरक्षिता अपने प्रकोष्ठमें लौट आई। उसका चित्त बड़ा आन्दोलित हो उठा। अन्तमें उसे भय उत्पन्न हो गया; उसने सोचा—'सारे षड़यंत्रका पता यदि सम्राटदेवकी समझमें आ गया, तो अनर्थ हो जायगा। उसने तुरन्त एक दूत बुलवाया और एक पत्र तक्षशिलाधीशको लिख भेजा; जिसमें लिखा था—'हमें पूर्ण विश्वास है कि युवराज कुणाल अन्धे कर दिये गये होंगे और भिक्षु होकर साम्राज्यकी सीमासे बाहर चले गए होंगे, अतः सारे षड़यन्त्रको गुप्त रखनेके लिये आवश्यक है कि तुरन्त संदेश-पायक द्वारा सम्राटदेवकी सेवामें सूचना भेज दो कि युवराज कुणाल स्वेच्छासे भिक्षु वेषमें राज्यका परित्याग कर देशाटनके लिए चले गए। उनके इस प्रकार अकस्मात् चले जानेसे हम सब दुःखी हैं।'

संदेश पाते ही तक्षशिलाधीशने दूत द्वारा सम्राटदेवकी सेवामें तत्काल सूचना भेजी, जिसमें लिखा था—'महामहिम प्रियदर्शी सम्राट अशोकवर्द्धनके चरणोंमें तक्षशिलाधीशका कोटिशः प्रणाम! श्रीसम्राटदेवकी सेवामें यह सूचना देते हुए हमें महान दुःख हो रहा है कि विद्रोहियोंको दबाकर युवराजदेवके हृदयमें न जाने कैसी भावना पैदा हुई, जो उन्होंने मेरे समझानेपर भी न मानकर राज्यका परित्यागकर बौद्ध-धर्ममें दीक्षा ले, देश-भ्रमणके लिए अज्ञात दिशामें चले गए। युवराजकुमार सम्प्रति और युवराज्ञी उनके वियोगमें दुःखी होकर न जाने कहाँ चले गए। इस प्रकार इन सब

लोगोंके चले जानेपर विद्रोही पुनः उभर गए हैं और मेरा अनुमान है बिना आपके आगमनके विद्रोह नहीं शान्त हो सकता। विद्रोह-दमन हमारी शक्तिके बाहर हैं।'

आपका सेवक—
तक्षशिलाधीश।

स्वस्थ हो जानेपर प्रियदर्शी सम्राट अशोकवर्द्धनने साम्राज्यकी पुनः बागडोर अपनें हाथमें ले ली।

दोपहरका समय था, साम्राज्य विषयक कितनी ही बातों पर राजसभामें सम्राटदेवके समक्ष विचार-विमर्श हो रहा था। उसीं समय प्रतिहारीने आकर सम्राटदेवको अभिवादन किया।'

सम्राट बोले 'क्या चाहते हो ? निवेदन करो।'

सारी सभाका ध्यान प्रतिहारीके ऊपर केन्द्रित हो गया। प्रतिहारी बड़ी विनम्र वाणीमें बोला—'श्रीसम्राटदेवसे मिलने तक्षशिलाधीश द्वारा प्रेषित सैनिक रुद्रसेन आये हैं और द्वारपर आज्ञाकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

'उसे उपस्थित करो।' सम्राट बोले।

रुद्रसेन को साथ लेकर सम्राटदेवकी सेवामें प्रतिहारी उपस्थित हुआ। भूमिमें मस्तक झुकाकर उसने सम्राटको अभिवादन किया और तक्षशिलाधीशका पत्र हाथोंपर रख दिया।

पत्र आमात्यश्रेष्ठसे सम्राटने पढ़वाया। समाचार जानकर वे बड़े दुःखी हुए। उन्हें जैसे साँप सूँघ गया हो।

'कारण क्या हो सकता है आमात्यश्रेष्ठ ! कुणालके इस प्रकार चले जानेका ? घबराहटके साथ पूछा सम्राटने।

आमात्यश्रेष्ठ चिन्ताग्रस्त हो गए। सोचने लगे—'ऐसी कौनसी बात आ गई अथवा ऐसी क्या ग्लानि उत्पन्न हो गयी, जिसे युवराजदेव न सहन कर सके और अचानक वे भिक्षु हो गए ? मेरी

समझमें यह बात नहीं आ रही है सम्राटदेव ! किन्तु यह सब कार्य अकारण नहीं हो सकता ।' बार-बार उनके मनमें तिष्यरक्षिताके षडयंत्रोंका स्मरण होने लगा । थोड़ी देर मौन होकर पुनः आमात्य-श्रेष्ठ बोले—सम्राटदेव ! अवश्य ही इसका पता लगाना होगा ।'

'कुछ समझ में नहीं आता आमात्यश्रेष्ठ !'

श्रीसम्राटदेवको वहाँ जाना तो अवश्य ही होगा । बिना वहाँ गए न तो विद्रोहियोंको दबाया जा सकता है और न तो युवराजके अकस्मात् विरक्त होकर चले जानेके कारणका पता ही चल सकता है ।'

'ठीक कहते हैं आप आमात्यश्रेष्ठ ! सोच रहा हूँ गुप्त रीतिसे तक्षशिला जाऊँ। आप चुने हुए सैनिकोंको गुप्त रीतिसे तक्षशिला भेजें ।'

'जो आज्ञा देव !'

उधर युवराजदेव कांचनमालाको शान्तकर देशाटनके लिए चल पड़े । उनकी आँखोंके घाव देखकर कांचनने चन्द्रभालसे कहा 'युवराजदेवकी आँखें खराब तो हो ही गई हैं; किन्तु उसमें जो असह्य पीड़ा हो रही है, उसका उपचार तो हो जाना ही चाहिए । आँखोंके घाव तो ठीक हो जायँगे ।'

'हाँ युवराज्ञी ! आपने ठीक सोचा है, कौन जाने अच्छे चिकित्सकसे भेंट हो जाने पर आँखें भी ठीक हो जायें ।'

'मुझे स्मरण हो आया है, गोकलचन्द्रभाल ! एक बार मैं युवराजदेवके साथ उज्जैनमें चिकित्सा-भवन देखने गयी थी; वहाँ अच्छी चिकित्सा होती है । संभव ही नहीं पूर्ण विश्वास है; वहाँके कुशल चिकित्सक युवराजकी आँखें अवश्य ठीक कर देंगे । आप एक रथकी व्यवस्था करदें; जो उज्जैन प्रान्तमें राजकीय चिकित्साभवन है, वहाँ युवराजदेवको पहुंचा दे ।'

'जो आज्ञा युवराज्ञी !' चन्द्रभाल हर्षसे बोल उठा। उसे भी आशा हो गई—'युवराज अच्छे हो जायँगे।'

तुरन्त उसने रथ तैयार कराया। युवराज टटोल-टटोलकर पग रख रहे थे। रथके साथ चन्द्रभाल युवराजके समीप पहुंचा और उनके चरण स्पर्शकर बोला—'देव ! युवराज्ञीने आपकी सेवामें यह रथ भेजा है; आप इसपर सवार हो लें और उज्जैनके चिकित्सा-भवनमें आखोंकी चिकित्साके लिए चले चलें।'

'आँखोंको ठीक कराकर क्या करूँगा भाई; संसारमें कितने ही लोग बिना आंखके हैं। बड़े उदासीन भाव से युवराज ने कहा।'

'नहीं देव ! आँखोंकी पीड़ा आपको असह्य होती होगी। आँखें मूँदकर गोपकचन्द्रभालने अन्धोंके कष्टका अनुभव किया और पुनः कहा—'जो लोग जन्मके ही अन्धे हों उनके और जो लोग बादमें आँखहीन हो जाते हैं, उनके कष्टमें अन्तर होता है युवराजदेव !'

'युवराज नहीं चन्द्रभाल ! कुणाल कहो; भिक्षु कुणाल !'

'अच्छा देव ! यदि आपकी दृष्टि न नष्ट हुई होगी तो चिकित्सा करनेसे वह ठीक हो जायगी और नहीं तो आँखोंके घाव तो ठीक ही हो जायँगे। दूसरी बात यह भी तो है देव ! बौद्ध-धर्मके अन्तर्गत साधकोंको, शारीरिक पीड़ा सहन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। साधनाके अन्तर्गत शारीरिक पीड़ाका कोई महत्व नहीं है। अतः यदि आपकी आँखोंके घाव ठीक हो जायँ तो धार्मिक दृष्टिकोण से भी कोई हानि नहीं। सबसे महत्वकी बात तो यह है कि यदि आप कुछ भी मेरे ऊपर प्रेम करते हों, तो निश्चय ही हमारी इतनी प्रार्थना स्वीकार करें। मैं आपको वहाँ पहुंचाकर चला आऊँगा। आज्ञा प्रदान करें देव !'

युवराज गम्भीर हो गए। मौन हो गए।

रथ पर युवराजका हाथ थाम कर चन्द्रभालने बैठाया और स्वयं रथ पर जा चढ़ा। रथ उज्जैनकी ओर चल पड़ा।

उस समय उज्जैनके प्रजापति थे कुमार दशरथ। उनकी स्मृति हो आई युवराजको। युवराज एक बार उनसे मिलनेकी बातें सोचने लगे, किन्तु यह सोचकर कि कहीं दशरथने मुझे रोक लिया तो निश्चय ही मुझे इस कार्यमें बड़ी कठिनाईका सामना करना होगा। अतः गुप्त रीतिसे मुझे उज्जैनसे दूर राजकीय चिकित्सालयमें ही चलना चाहिए।

युवराजकी इच्छानुसार चन्द्रभालने उन्हें चिकित्सा-भवनमें पहुंचाया। उन्हें देखकर प्रमुख चिकित्सकको महान् कष्ट हुआ। उसके आश्चर्यकी सीमा न रही। वह युवराजदेवकी स्वयं चिकित्सा और सेवाके लिए तत्पर हो गया।

उस स्थानपर पहुंचकर युवराजदेवने चन्द्रभालको वापस भेज दिया। चलते समय चन्द्रभालने चिकित्सकसे पूछा—'महोदय ! क्या युवराजदेव की आँखें ठीक हो सकती हैं ?'

'अभी आधिकारिक ढंगसे नहीं कुछ कहा जा सकता। उत्तमसे उत्तम औषधिका प्रयोग किया जायगा; दस दिनोंमें पता चल जायगा।'

युवराजके चरणोंको स्पर्शकर चन्द्रभाल रथ लेकर वापस लौट आया।

कांचनमाला उसकी बड़ी प्रतीक्षा कर रही थी। वह युवराज-देवका समाचार जाननेके लिए बड़ी उत्कंठित थी। चन्द्रभालके वहाँ

पहुँचनेपर पूछा युवराज्ञीने--'कहो चन्द्रभाल ! तुम युवराजको पहुँचा आए ?'

'हाँ युवराज्ञी ! चिकित्सक उन्हें पहचानता था। उनकी दशा देखकर वह बड़ा दुःखी हुआ।'

'उसने आँखें ठीक होनेके सम्बन्धमें क्या कहा।'

'यही कि अभी तक तो कोई बात आधिकारिक ढंगसे नहीं कही जा सकती, किन्तु आशा पायी जाती है, कि संभवतः आँखें ठीक हो जायँगी।'

उसासें लेकर युवराज्ञी मौन हो गयी।

१९

युवराजको उज्जैनके सुप्रसिद्ध चिकित्सालयमें पहुंचाकर गोपक-चन्द्रभाल जब तक्षशिला लौटा, तब उसने युवराज्ञी कांचनमालाके नेतृत्वमें शासनसत्ताके विरुद्ध विद्रोहियोंका संगठन प्रारम्भ कर दिया। युवराज्ञी कांचनमालाने प्राणप्रणसे—अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे—प्रजामण्डलमें विद्रोहकी भावना जागृत कर दी। विद्रोहियोंमें युवराज कुणालके परमभक्त सैनिक भी आकर सम्मिलित होने लगे। मौर्य-साम्राज्यकी जड़ उखाड़ फेंकनेके लिए गोपकचन्द्रभाल दृढ़-संकल्प था। उसने मित्रता कर लेनेके कारण ही युवराजको राजदण्ड भोगना पड़ा था। उसके हृदयमें युवराजके प्रति अगाध श्रद्धा उत्पन्न हो गयी थी। वह उनके लिए मारण-मरणके लिए तत्पर हो गया था। इसीलिए धीरे-धीरे वह साम्राज्यके विरुद्ध देशव्यापी आन्दोलन छेड़ना चाहता था। यत्र-तत्र विश्वसनीय व्यक्तियोंको भेज-भेजकर वह विद्रोहकी शक्ति बढ़ा रहा था। युवराजका प्रसंग चला-चलाकर चन्द्रभालके गुप्तचर प्रजामण्डलमें उत्तेजना पैदा कर रहे थे। मौर्य-साम्राज्यके प्रति जनतामें अब घृणा होती जा रही थी।

कांचनमाला रातोंदिन इसी चिन्तामें पड़ी थी कि वह कब युवराजके प्रति न्याय करनेवालें से बदलेका अवसर पायेगी। उसके हृदयमें भयंकर प्रतिशोधकी भावना प्रबल होती जा रही थी। समय निश्चित कर दिया गया; सारी तैयारी आक्रमणकी हो चुकी थी। इस सम्बन्धमें युवराज्ञी तथा कांचनमालासे वार्त्ता हो रही थी। चन्द्रभाल कह रहा था—'युवराज्ञीके साथ एक लाखसे अधिक सैनिक वीर तैयार हो चुके हैं।'

'और अभी कितने और तैयार हो सकते हैं?'

युवराजकी करुण-कथा सुनते ही अधिक संख्यामें जनसमुदाय विद्रोहकी भावनामें उमड़ पड़ता है। मेरा अनुमान है, राजनगर पाटलिपुत्रतक पहुँचते-पहुँचते सारी प्रजा हमारे साथ हो जायगी।'

उसी समय एक गुप्तचरने आकर निवेदन किया—'युवराज्ञी! पाटलिपुत्रसे गुप्तरीति द्वारा सम्राटदेव तक्षशिला पधारे हैं।'

'उनके आनेका कारण क्या हो सकता है?'—कहा कांचनमालाने। 'अवश्यही किसी विशेष कारणसे सम्राटदेव पधारे हैं। उनके आगमनका कारण क्या है? इस सम्बन्धमें गुप्तचर भेजकर पता लगाया जायगा युवराज्ञी!'

युवराज्ञी कांचनमाला बोली—'कुछ भी हो, किसी भी उद्देश्य से सम्राटदेवका आगमन हुआ हो, हमें इसकी चिन्ता कदापि नहीं है। हमें तो अपने ही कर्त्तव्यपर ध्यान देना है।'

'ठीक है; विद्रोही जनता आपका दर्शन करना चाहती है और एक गुप्त सभाका आयोजन किया जा रहा है, जिसमें विद्रोहका संचालन करनेवाले प्रमुख व्यक्ति उपस्थित होंगे और उनके लिए कार्यक्रम निश्चित किया जायगा।'

'सभा किस स्थान पर बुलायी गयी है?' युवराज्ञीने पूछा।

'यहीं हमारे स्थानपर ही देवि!'

'ठीक है।' सन्तोष व्यक्त करते हुए युवराज्ञीने कहा।

दूसरे दिन गोपकचन्द्रभालके भवनके भीतरी उद्यानमें सभाका आयोजन हुआ। सभी विद्रोही प्रमुख व्यक्ति हजारोंकी संख्यामें युवराज्ञी कांचनमालाके दर्शनाभिलाषी उपस्थित हो गए। सारा उद्यान भर गया। सभाकी कार्यवाही प्रारम्भ हुई। यथास्थान गोपकचन्द्र भाल और युवराज्ञी कांचनमालाने सभामें आसन ग्रहण किया। पूरे जन-समुदायमें 'युवराज्ञीकी जय' 'युवराजदेवकी जय' विद्रोहियोंके

अधिनायक गोपकचन्द्रभालकी जय' के नारे लगने लगे। सबको शान्त करता हुआ गोपकचन्द्रभाल उठ खड़ा हुआ, सभामें नीरवता छा गयी। सबकी दृष्टि चन्द्रभाल और युवराज्ञीके मुख पर केन्द्रित हो गयी।

गोपकचन्द्रभाल बोला—'स्वतंत्रताके प्रेमी ! अन्यायके विरुद्ध दृढ़ संकल्प उपस्थित विद्रोही बन्धुओ ! राज्य-कर्मचारियों द्वारा प्रजा मंडलपर जो अन्याय होता रहा, उससे आप सब अवगत हैं। उस बार जब विद्रोह करनेके लिए आप सब तैयार हुए, तब राजनगरसे आकर युवराज कुणालने जनताका साथ दिया और अत्याचारी राज्य-कर्मचारियोंको दण्ड दिलानेके लिए पूरा विवरण उन्होंने सम्राटदेवकी सेवामें भेजा। युवराजकी इस सहानुभूतिसे जनताका विद्रोह शान्त हो गया। हम लोग राजाज्ञाकी प्रतीक्षा करते रहे कि अन्यायी राज्य-कर्मचारियोंको सम्राटदेव कौनसी दण्ड-व्यवस्था करते हैं ! किन्तु प्रजाके हितैषी पितृ-भक्त युवराजकी बातोंपर ध्यान न देकर सम्राट-देवने उल्टे युवराजको ही अन्धे बनाकर देश-निकालाकी राजाज्ञा भेजकर राज्य-कर्मचारियोंके ही साथ सहानुभूति दिखाकर जो निन्दनीय कार्य किया है, वह असह्य है। प्रजाके साथ जो अन्याय था, वह थाही; किन्तु निरपराधी युवराजदेवके साथ जो अन्याय हुआ है, उसने हमें पागल बना डाला है। उस अत्याचारी सम्राटसे क्या आशाकी जा सकती है, जिसने योग्य अपने प्राणोंसे भी प्रिय पुत्रपर आश्चर्यजनक अपमान और अन्याय किया है; भला वह प्रजा की क्या भलाई कर सकता है ?'

स्तब्ध होकर भाषण सुनती रही सारी विद्रोहियोंकी सभा। एक व्यक्तिके हृदयमें कंपन पैदा हो गया, आश्चर्य-चकित हो रहा था वह व्यक्ति। वह सोचने लगा—'युवराजको अन्धा बनाकर देश-निकाला ! राजाज्ञा ! सम्राटदेवकी !'—यह सब स्वप्नकी-सी बातें क्या सुन

रहा हूँ ?' कभी-कभी उसकी मुखाकृति म्लान पड़ जाती थी और वह अस्थिर हो उठता था। वह बोलना चाहता था; किन्तु पता नहीं क्यों मौन था।

कांचनमाला उठ खड़ी हुई भाषण देनेके लिए। एक बार मंचसे उसने चारों ओर दृष्टि सभा पर फेंकी। भाषण प्रारंभ करनेके पूर्व ही उस घबराये हुये व्यक्ति पर उसकी दृष्टि जाकर रुक गयी।

उसने कहा 'प्रिय गोपकचन्द्रभाल !'

'हाँ देवि; युवराज्ञी !'

'सभामें उपस्थित जन-समुदायमें जितने व्यक्ति उपस्थित हुए हैं, क्या इनकी जाँच कर ली गयी है ? इसमें शत्रुके गुप्तचर तो नहीं आ गए हैं ?'

'यह कार्य तो पहले ही समाप्त कर लिया गया था देवि !'

'किन्तु मुझे एक व्यक्ति पर सन्देह उत्पन्न हो गया है।'

घबरा गया चन्द्रभाल; वह उठ खड़ा हुआ और बोला—'किस पर सन्देह है युवराज्ञीको ?'

युवराज्ञीने संकेत किया एक व्यक्ति पर, जो बड़ा ही तेजस्वी पुरुष था, जिसके वस्त्र बड़े साधारण थे। आकृति पर संयमके साथही साथ घबराहटका भी आभास मिल रहा था। जिसकी चौड़ी छाती, उन्नत ललाट और विशाल आँखें उसके महनीय व्यक्तित्वको विकसित कर रही थीं। वह अत्यन्त साधारण वेशमें भी महान् व्यक्ति प्रतीत हो रहा था।

युवराज्ञीके संकेत करने पर गोपकचन्द्रभाल उस व्यक्तिके समीप पहुंचा उस व्यक्तिने अपनेको संयत कर लिया था और गम्भीरमुद्रामें वह स्थित हो गया था। सारी सभाने उस ओर दृष्टिपात किया। सभामें नीरवता व्याप्त हो गयी।

'भद्र ! आपके पास सभाका गुप्त-चिह्न है ?'

दिखाते हुए उस व्यक्तिने कहा—'अवश्य महाशय !'

'आपका परिचय !' चन्द्रभालने पूछा।

'मैं देवगुप्त पंचनद प्रान्तसे आया हूँ। अन्यायी मौर्यसाम्राज्यसे मैं भी असन्तुष्ट हूँ और स्वतन्त्रता चाहता हूं। आपके त्याग और उच्च विचारोंसे प्रभावित हो स्वतन्त्रताकी बलि-वेदी पर अपना शीश चढ़ानेको उद्यत हूं। मेरा परिचय समझता हूँ यही पर्याप्त है।' बोला वह व्यक्ति।

'युवराज्ञीको आप पर सन्देह है भद्रे ! कृपया हमारे साथ चलें।'

गोपकचन्द्रभालके साथ वह व्यक्ति चला आया। आप शत्रुके गुप्त-चर हैं। भद्र ! आप निश्चय ही अपनेको बन्दी समझें।

युवराज्ञीने अपने समीप बुलाकर चन्द्रभालसे पुनः कहा—'भद्र गोपकचन्द्रभाल ! आप इन्हें बन्दी बनालें।'

'जो आज्ञा युवराज्ञी।'

उस व्यक्तिने सभाका गुप्त चिह्न चन्द्रभालको दिखाया और कहा—'महाशय !' आप मेरे सेवाका अनादर कर रहे हैं।'

उस व्यक्तिकी भलीभाँति मुखाकृति देखकर, कुछ रोष व्यक्त करते हुए—'मेरे पास समय नहीं है और न मैं इस पर अधिक बोलना ही चाहता हूँ भद्र पुरुष ! आप बन्दी हैं।' दृढ़तासे चन्द्रभाल ने कहा।

'गोपकचन्द्रभाल ! इन्हें बंदी बनाइए। मेरी आंखें मुझे धोखा नहीं दे सकतीं। इस सम्बन्धमें और नहीं कुछ कहना है।' युवराज्ञीने कहा—

चन्द्रभालने उस व्यक्तिको बन्दी बना लिया और एक सुरक्षित स्थान पर रखा।

युवराज्ञी कांचनमालाने अपना भाषण आरम्भ किया--'उपस्थित बन्धुओं ! आपकी न्यायप्रियता, स्वातन्त्र्य-प्रेम और युवराजदेवके प्रति अगाध श्रद्धा और उनके प्रति किए गए सम्राटदेवके असहनीय व्यवहारके प्रति घृणा देखकर मेरे हृदयमें आप सबके लिए अपार सम्मान पैदा हो गया है।' सबकी ओरसे हर्षध्वनि निकल पड़ी।

युवराज्ञीने मस्तक नवाकर पुनः कहना प्रारम्भ किया --'एक समय था, जब आप सब प्रजामण्डलके मध्य बौद्ध-धर्मका प्रचार करते-करते हम सब लोग अहिंसाको महत्व देते थे और कहते थे कि युद्ध बुरा होता है, जीत हो जानेपर भी उसके परिणाम बुरे होते हैं, किन्तु उस सिद्धान्तसे हमारा कितना भला हुआ ? यह आप सबको विदित है। करुणाकी धारा हृदयमें प्रवाहित करनेपर भी युवराज-देवको अन्धा बना राज्यकी सीमासे बाहर निर्दयतापूर्वक निकाला गया। बौद्ध-धर्म और करुणासे युवराजदेव न अपनी भलाई कर सके और न प्रजामण्डलकी ही। शान्ति, न्याय और प्रजामण्डलकी भलाई चाहनेवाले युवराजदेव यदि क्रान्तिका आश्रय ग्रहण करते, तो निश्चय ही उनकी आँखें न खराब होतीं और सारे सैनिक, प्रजामण्डलके साथ उनकी सहायता कर साम्राज्यशाहीके अनैतिक व्यवहारका अन्तकर देते। युवराज पितृभक्त हैं, उदार हैं, भावावेशमें आकर वे असफल हो गए। न तो उनके इस कर्तव्यसे प्रजामण्डलका कष्ट दूर हुआ और न अपराधी राज्य कर्मचारियोंको दंड ही मिला, बल्कि राजकीय सहायता उन्हीं अपराधियोंके पक्षमें रही। यदि हम इन सभी बातोंपर विचार करें, तो निश्चय ही हमें बाध्य होकर अपराधियोंके सुधारके लिए क्रान्तिका आधार ग्रहण करना पड़ेगा। यद्यपि आप सब महान् वीर हैं, स्वतन्त्रताकी महिमा समझनेवाले हैं, इस संबंधमें आप सबसे कुछ नहीं कहना है; किन्तु प्रेरणा देना और दिलाना इस समय आव-श्यक प्रतीत होता है। आपसमें विचार-विमर्श करके सङ्गठित

प्रयासों द्वारा हमें आगेका कार्यक्रम निश्चित करना है; जिससे न तो हमारी शक्तिका ह्रास हो और न हम विफल हों। आज रात्रिमें गुप्त-रीतिसे अकस्मात तक्षशिलापर हमारा इतना भयानक आक्रमण होना चाहिये कि शत्रु किसी भी दशामें उसे न संभाल सके, इस प्रकार यदि हम यहाँ अपना अधिकार जमा लेते हैं, तो निश्चय ही हमारी शक्ति बढ़ जाती है और आगे चलकर हम अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें सफल हो सकते हैं। आप सब लोग यदि हमारी इस विचार-धारासे सहमत हों, तो अपनी स्वीकृति प्रदान करें।' कहकर काँचन-माला मौन हो गई और सबकी ओर देखने लगी।

'हम सब युवराज्ञीके आदेशका पालन करेंगे, विद्रोहियोंके अधि-नायक गोपकचन्द्रभालके संकेतोंपर चलेंगे। हम सब लोग तैयार हैं। युवराज्ञीकी जय! गोपकचन्द्रभालकी जय! युवराजकुमार सम्प्रतिकी जय!' सारी सभा सिंहनाद कर उठी।

युवराज्ञीने पुनः कहा—'अधिक और कुछ कहकर हमें आप लोगोंका समय नष्ट नहीं करना है। अब आप सब शीघ्र यहाँसे चले जाइए और अपने उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिए तैयार होकर यहीं उपस्थित हो जाइए।' मस्तक नवा दिया युवराज्ञीने।

सभा विसर्जित हुई। सेनानी सब चले गए।

कांचनमाला और गोपकचन्द्रभाल आपसमें वार्त्ता करने लगे।

कांचनमाला बोली—'तक्षशिलाधीश पर प्रबल वेगसे अर्द्धरात्रिमें आक्रमण करना है। अभी तक विपक्षियोंको हमारे इस कार्यक्रमका पता न होगा।'

'कहा नहीं जा सकता देवि! गुप्तचर पता लगानेके लिए अवश्य प्रयत्नशील होंगे।'

'किन्तु मुझे विश्वास है कि तक्षशिलाके राजसैनिक सबके सब हमारे पक्षमें हो जायँगे।' कांचन बोली।

'स्वयं सम्राटदेवके आ जानेसे यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि सैनिक हमारे साथ हो ही जायँगे युवराज्ञी !'

'किन्तु उस दिन सैनिकोंने अपना-अपना अस्त्र तक्षशिलाधीशके सम्मुख फेंक दिया और सब युवराजदेवके प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुए बोल उठे थे कि हम राज्याज्ञाका उल्लंघन करते हैं और इस अपराधमें जो भी दण्ड भोगना होगा, उसे सहन करनेके लिए तत्पर हैं।

'हाँ युवराजके समक्ष अवश्य कह दिया था सैनिकोंने; किन्तु वे हमारी ओरसे राजसत्ताके विरुद्ध युद्ध कर सकते हैं, यह कदापि न मान लेना चाहिए। सम्राटदेवके समक्ष सैनिकोंका साहस उनके विरुद्ध कैसे होगा, सहसा विश्वास नहीं हो रहा है युवराज्ञी।'

'चन्द्रभाल ! क्या तुम यह जानते हो तुमने किसे बन्दी बनाया है ?'

'हाँ देवि ! शत्रुका गुप्तचर है वह।'

'नहीं; तब तुम्हें नहीं अवगत है।'

चन्द्रभालको आश्चर्य हुआ। वह युवराज्ञीकी ओर जिज्ञासु-भावना से देखने लगा।

युवराज्ञी बोली—'तुम्हें यह जानकर बड़ा कौतूहल होगा।'

'क्या ?'

'यही कि वह कौन व्यक्ति है; जिसे बन्दी बनाया क्या है।'

'वह कौन व्यक्ति है युवराज्ञी ? मेरी-अवश्य उत्कंठा बढ़ती जा रही है। मैं अवश्य जान लेना चाहता हूँ।'

'कौतूहल शान्त करो चन्द्रभाल ! समय पर अवश्य जान लोगे कि वह कौन व्यक्ति है। अभी समय नहीं है। हाँ, उस व्यक्तिको सावधानीसे बन्दी बना रखो और कड़ा पहरा रहना चाहिए, नहीं

तो हमारा सारा प्रयत्न और संगठन व्यर्थ हो जायगा। उस व्यक्ति-को बन्दी बनाए रखनेसे सफलता अवश्य होनेकी प्रतीति हो रही है।'

'जो आज्ञा देवि !'

'अच्छा इस समय जाओ भद्र ! थोड़ा आराम कर लो और फिर युद्धकी तैयारी करो।

रात अँधेरी थी। सभामें उपस्थित जनसमुदाय प्राण हथेली पर ले-लेकर युद्धकी कामनासे प्रवृत्त हुआ गोपकचन्द्रभालके यहाँ एकत्र होने लगा। सभी सैनिक एकत्र हो गए। युद्धकी सम्पूर्ण तैयारी होने लगी और आक्रमण करनेकी आज्ञा पानेकी प्रतीक्षा होने लगी।

२०

अर्द्धरात्रि थी, संसार घोर निद्रामें मग्न था। तक्षशिलामें राज्य-प्रासादके विशाल द्वारपर केवल प्रतिहारियोंकी पदचाप सुनाई पड़ती थी। सम्राट अशोकके आगमनसे तक्षशिलाको बड़ा धैर्य हो गया था। उसे विद्रोहियोंके इस प्रबल आक्रमणका पता न था। राज्य-प्रासादके विशाल द्वारपर विद्रोहियोंके आक्रमणके भयसे विशेष प्रबन्ध कर दिया गया था। यह सब होते हुए भी सम्राटदेवके गुप्त रीति द्वारा छद्मवेशमें रात्रि-भ्रमणके लिए चले जाने और लौटकर अभी तक न आनेसे उसे चिन्ता हो गयी थी। अपने प्रकोष्ठमें वह टहलते हुए विचार-मग्न था। सुनसान रात्रिमें घूमते हुए तक्षशिलाधीश प्रमुख द्वारपर आ पहुँचा। सशस्त्र संतरी पहरा दे रहे थे। अपने समक्ष तक्षशिलाधीशको उपस्थित देख; संतरियोंने अभिवादन किया और सतर्क होकर एक ओर खड़े हो, उसे सम्मान प्रदर्शित किया।

'देखो बड़ी सावधानीसे पहरा तुम लोगोंको देना चाहिए। गुप्तचरोंसे जो समाचार प्राप्त हो रहे हैं, उससे पता चल रहा है—विद्रोही बड़े प्रबल वेगसे आक्रमण करना चाहते हैं। बिना भलीभाँति पहचान किए किसीको भीतर प्रविष्ट न होने देना।'—तक्षशिलाधीश बोला।

'जो आज्ञा श्रीमान्! हम सब बहुत सतर्क हैं।'

'ठीक है।' कहते हुए तक्षशिलाधीश वापस लौट आया, वह अपने प्रकोष्ठमें पूर्ववत् घूमने लगा।

राज्यप्रासादके प्रमुख द्वारपर बाहरसे एक आदमी आता दिखाई पड़ा। प्रहरी सतर्क हो गए।

'कौन है ?' डाटकर एक संतरीने पूछा।

आगन्तुक मौन था।

सभी प्रहरी सतर्क होगए। एकने पुनः पूछाः - 'बोलो ! कौन हो तुम ?'

अन्य सभी प्रहरी उस मनुष्यकी ओर निहारने लगे। उसे पहचानने का प्रयत्न होने लगा। उसकी वाणीसे, वेशभूषासे और चलनेकी गतिसे वे सब उसे पहचाननेके लिए प्रयत्न करने लगे।

आगन्तुक आगे बढ़ रहा था। सन्तरी बोला—'रुको वहीं और अपना परिचय दो !'

वह आदमी आगे बढ़ रहा था और मौन था। थोड़ी देरमें वह उन प्रहरियोंके निकट आ पहुंचा।

उसकी धृष्टता प्रतिहारी और सहन न कर सका, धनुषपर बाण चढ़ा बोला—'बस, रुक जाओ ! अन्तिम आदेश है ! यदि रुके नहीं और बोले नहीं, तो धराशायी कर दूंगा। बस; एक क्षण और प्रतीक्षा करूँगा बोलो ?'

संतरीने धनुषकी प्रत्यंचा कान तक खींची, ज्योंही वह बाण छोड़ना चाहता था, त्योंही गम्भीर स्वर में आदेश हुआ—'लक्ष्य भंग करो।'

संतरीने बाण उतार लिया। उसके समीप उसे पहचाननेके लिए कुछ सन्तरी आ गए। आगन्तुक व्यक्तिने अपने शरीरको एक मूल्यवान् वस्त्रसे ढक रखा था। संतरी उसे पहचाननेमें असफल रहे। बड़ी विनम्रतासे एक सन्तरीने पूछा—श्रीमान्का राजचिह्न ?'

आगन्तुकने दाहिना हाथ बाहर निकाला, जिसकी अनामिका अंगुलीमें हीरक मुद्रिका सुशोभित थी। ध्यानसे हल्के प्रकाशमें सन्तरीने हीरक मुद्रिकाका राजचिह्न देखा और अभिवादनकर सम्मान प्रदर्शित करते हुए वह कुछ पीछे हट गया। दूसरे सन्तरीने

प्रवेशद्वार खोल दिया। आगन्तुक भीतर प्रविष्ट होते हुए बोला—'राजनगर पाटलिपुत्रसे एक विशाल सेना आ रही है, उसे प्रविष्ट होने दो। द्वार खुला रखो।'

'जो आज्ञा श्रीमान् !'

आगन्तुक भीतर चला गया। सन्तरी सेना आनेकी प्रतीक्षामें द्वार खोलकर उसके दोनों ओर खड़े हो गए।

'कौन था भाई; यह व्यक्ति !' एक सन्तरीने पूछा।

'तुम समझे नहीं ? हो मूर्खही। अरे भाई ! तुम इतना भी नहीं समझ पाए कि स्वयं सम्राटदेव थे।' दूसरेने कहा।

'अच्छा !' मस्तक पर आँखें चढ़ाकर कहते हुए संतरीने आश्चर्य व्यक्त किया।

'तक्षशिलाधीशसे जाकर निवेदन करो।' एक प्रहरी बोला।

'क्या ?' दूसरा बोला।

'यही कि श्रीसम्राटदेव भ्रमणकर लौट आए।'

'जाता हूँ।' कहकर वह तक्षशिलाधीशके प्रकोष्ठमें चला गया।

सम्राटके लौट आनेकी सूचना देते हुए, सन्तरीने तक्षशिलाधीशको सम्मान प्रदर्शित किया। तक्षशिलाधीशने अपने कक्षसे बाहर आ मस्तक नवा कर कहा—'पधारें श्रीसम्राटदेव !'

तक्षशिलाधीश उस व्यक्तिके साथ-साथ राज्यभवनमें प्रविष्ट हुआ।

'आपको लौटनेमें बड़ा विलम्ब हुआ देव !'

'सावधान हो जाओ तक्षशिलाधीश ! कहते हुए हाथमें कृपाण धारण किए तक्षशिलाधीशने अपने समक्ष गोपकचन्द्रभालको वीर-वेशमें देखा। गोपकचन्द्रभालने जिस ऊपरी वस्त्रको धारणकर अपना सारा शरीर ढँक रखा था, उतार फेंका।

तक्षशिलाधीश निष्प्रभ हो गया; किन्तु अपना आन्तरिक भय छिपाते हुए उसने तीव्र स्वरमें कहा—'विद्रोही गोपकचन्द्रभाल !

कालकी प्रेरणासे तुम यहाँ चले आए। ठीक है। अभी-अभी मैं तुम्हारी व्यवस्था करता हूँ।' कहते हुए वह हाथमें मुगरा लेकर घण्टेकी ओर मुड़ा। गोपकचन्द्रभालने उसके गलेमें हाथ डालकर एक ऐसा झटका दिया कि वह फर्श पर गिर पड़ा। तक्षशिलाधीश काँपने लगा। चन्द्रभाल बोला—'दिखा अपनी शक्ति मूर्ख !'

राज्याप्रसादके विशाल द्वारपर विद्रोहियोंकी एक बहुत बड़ी सेना जो समुद्रकी भाँति उमड़ती चली आ रही थी, आ पहुँची। भीतर पहुँचकर उसने सिंहनाद किया। सेनाके आगे-आगे युवराज्ञी कांचनमाला छद्म-वेश-में आ रही थीं। उन्होंने कुछ सैनिकोंके साथ तक्षशिलाधीशके प्रकोष्ठमें प्रवेश किया। इस प्रकार सैनिकोंका प्रबल वेगसे आगमन सुनकर तक्षशिलाधीश अत्यंत भयभीत हो गया।

'गोपकचन्द्रभाल !'

'हाँ युवराज्ञी !'

'तक्षशिलाधीशको बन्दी बनाओ। अभी उसे किसी प्रकारका दण्ड न दिया जायगा।'

'जो आज्ञा देवि !'

'और उसके साथ और जो भी राजभक्त कर्मचारी हैं, उन्हें भी बन्दीगृहमें भेजो।' व्यंगमें कांचनने कहा।

'जो आज्ञा देवि !' चन्द्रभाल बोला।

'कल प्रातःकाल सबके सामने प्रजामंडलके समक्ष इन सभी बन्दियोंके अपराध पर विचार किया जायगा।' कांचनने कहा।

'ठीक है।' चन्द्रभाल बोला।

दूसरे दिन तक्षशिलापर विद्रोहियोंने अपना झण्डा फहराया। यह प्रांत मौर्य साम्राज्यसे स्वतन्त्र घोषित किया गया। एक वृहद् सभा का आयोजन हुआ, जिसमें अपार जन-समूह एकत्र हुआ। सभाकी कार्यवाही प्रारम्भकी गयी। सारी सभामें नीरवता छा गयी। गोपक-

चन्द्रभाल उठ खड़ा हुआ; उसने एक छोटे भाषणसे सबका ध्यान आकृष्ट किया। उसके ओजस्वी भाषणसे जनतामें हर्ष छा गया। उसके पश्चात् कांचनमाला उठ खड़ी हुई और बोली—'उपस्थित सज्जनों! आज आप सबके परिश्रम और सहयोगसे यह नगर स्वतंत्र हुआ है। अब स्वेच्छापूर्वक हम प्रजातन्त्रराज्यकी स्थापनाकर एक श्रेष्ठ प्रतिनिधिका चुनाव कर शासन-प्रबन्ध स्वयं हाथमें ले जनता का कष्ट दूर करें। कुछ साधारण प्रतिनिधियोंका भी चुनाव हो जाना चाहिए, जिससे जनताके कष्टका और उसके हिताहितका ध्यान समय-समय पर अधिकारीवर्ग रखा करें। प्रजामण्डल जब किसी प्रतिनिधि अथवा कर्मचारीसे असंतुष्ट हो, तो उसके अपराधों पर पूर्ण विचारकर न्यायपूर्वक उसे पदच्युत कर दिया करे। जनता अपने कष्ट और उत्पीड़नके सम्बन्धमें सब समय सब अधिकारियोंसे मिल सकेगी, इसका ध्यान रखा जायगा।'

सभाने हर्षसे करतलध्वनि की।

कांचनने पुनः कहा -'प्रतिनिधियोंका चुनाव पहले इसी समय हो जाना चाहिए। इसके पश्चात् जो इस समय राजबन्दी हैं, उन्हें सभामें उपस्थित किया जाय और उनके अपराधों पर विचार हो।'

प्रजामंडलकी ओरसे ध्वनि आयी—'हम युवराज्ञी काँचनमाला को अपना प्रथम और श्रेष्ठ प्रतिनिधि चुनते हैं, अतः उनसे प्रार्थना की जाती है—वे सिंहासनारूढ़ हो, उसे सुशोभित करें।'

सबने हर्ष व्यक्त किया। सबको मस्तक नवाकर काँचनमाला सिंहासन पर विराजमान् हो गयी। सभीनें नवनियुक्त प्रतिनिधि श्रेष्ठ युवराज्ञीको सम्मानकर अभिवादन किया।

इसके पश्चात् एक साधारण प्रतिनिधि मण्डलका चुनाव हुआ, जिसका सर्वसम्मतिसे नायक गोपकचन्द्रभाल मनोनीत हुआ।

'सभी राजबन्दी उपस्थित किए जायँ, गोपकचन्द्रभाल !' कहा युवराज्ञीने ?

'जो आज्ञा !' कहकर गोपकने सम्मान प्रदर्शित किया।

धीरे-धीरे सभी राजबन्दी वहां उपस्थित किए गए, जिन्हें सैनिकोंने घेर रखा था। तक्षशिलाधीश तथा अन्य राजबन्दियोंने वहां पहुंचकर देखा कांचनमाला सिंहासनपर विराजमान् है। सहसा वह बन्दी, जिसे कांचनने गोपकचन्द्रभालके यहां बन्दी बनवाया था, सिंहासनकी ओर दृष्टि फेरते ही बोला—'काँचन ! काँचन ।'

बन्दीने अपना वाक्य पूरा भी न किया था, उसे टोका चन्द्रभालने—'बन्दी महोदय ! कृपया सभ्यतापूर्वक जिह्वा खोलिए। पता नहीं है कि आप किसके समक्ष बोल रहे हैं ? और उससे कैसे बातें की जायँ ?'

मौन हो गया वह राजबन्दी और गंभीर भी। उसे कुछ ग्लानि हो गयी; क्योंकि उसने अपने बहुत बड़े अपमान्का अनुभव किया था।

कांचनमाला गंभीर थीं; किन्तु उसकी दृष्टि उस राजबन्दीकी ओर नहीं टिक सकी। उसने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

'गोपकचन्द्रभाल !' कहा कांचनमालाने।

हाथ जोड़े हुए खड़ा होकर सम्मान प्रदर्शित करते हुए गोपकचन्द्रभाल बोला—'आज्ञा प्रतिनिधि श्रेष्ठ ! सामाज्ञी !'

'बन्दी तक्षशिलाधीशके अपराधोंका विवरण उपस्थित करो और उनका प्रमाण भी दो। है तुम्हारे पास अपराधोंकी तालिका ?'

तक्षशिलाधीशकी मुखाकृति म्लान पड़ गयी और वह भयसे काँप उठा। गोपकचन्द्रभाल उठा और उसने तक्षशिलाधीशके अपराधोंपर प्रकाश डाला और गंभीरतापूर्वक उसे पुष्ट भी किया।

दूसरा बन्दी ध्यानसे सुन रहा था। ज्यों-ज्यों तक्षशिलाधीशके

अपराधोंका कथन सप्रमाण गोपकचन्द्रभाल कर रहा था, उस समय कांचनमालाके नेत्र अरुण होते जा रहे थे। कांचनमालाका व्यक्तित्व सैनिक वेशमें गंभीर होता जा रहा था। उसकी मुखाकृति पर तेज देदीप्यमान् हो रहा था। सारी सभा कभी गोपकचन्द्रभालकी ओर, कभी तक्षशिलाधीशकी ओर और कभी युवराज्ञी कांचनमालाकी ओर निहार रही थी। गोपकचन्द्रभाल तक्षशिलाधीशके अपराधोंका सारा विवरण उपस्थितकर मौन हो गया।

'इस सम्बन्धमें तुम्हें कुछ कहना है तक्षशिलाधीश ?' मौन रहकर भी उसने अपराध स्वीकार किया और पश्चात्ताप करता रहा।

'गोपकचन्द्रभाल ! अपराधीका अपराध अत्यन्त महान् है; अतः आज्ञा की जाती है—उसका एक हाथ और एक पैर काट लिया जाय। कहा कांचनमालाने।

'मुझे क्षमा कर दें देवि !' अत्यन्त दीन वाणीमें बोला तक्षशिलाधीश।

'और तप्तलौह शलाकाओं द्वारा एक आँख भी फोड़ दी जाय।'
घबरा गया तक्षशिलाधीश। उसने बड़ी ही विनम्र वाणीमें कहा—'शरणागत हूं देवि ! क्षमा करो।'

'तथा एक कानमें अपराधीके; तप्त धातु डाल दी जाय।' उत्तेजनामें आकर कांचनने कहा। उसकी आकृति रोषमें भयंकर होती जा रही थी और ज्यों-ज्यों तक्षशिलाधीश अपराधोंके लिए क्षमा चाहता था, त्यों-त्यों कांचनके रोषमें आवेग उठता जा रहा था।

तक्षशिलाधीश मूर्च्छित हो गिर पड़ा।

'जो आज्ञा प्रतिनिधिश्रेष्ठ !' बोला चन्द्रभाल।

दूसरे राजबन्दीकी ओर संकेत किया कांचनमालाने और कहा —'इनके अपराधोंके ऊपर प्रकाश डालो चन्द्रभाल !'

'जो आज्ञा' कहकर चन्द्रभाल उठ खड़ा हुआ। उसकी ओर देखकर चन्द्रभाल बोला—'इनका अपराध ? इनका अपराध तो यही है—'ये गुप्तरूपसे हमारी गुप्तसभामें प्रविष्ट हो गए थे।'

कांचनने सुना, उसकी दृष्टि नीचे हो गयी थी। वह बोला—'गोपकचन्द्रभाल !'

'आज्ञा देवि !'

'इन बन्दी महोदयका अपराध नहीं कह पाओगे। जानते हो ये कौन हैं ?'

'नहीं देवि ?' हाँ, पहले तो इनका परिचय जानना ही आवश्यक है।

इन्हें मंचपर उपस्थित करो।'

सैनिकोंसे घिरा हुआ वह बन्दी मंच पर उपस्थित किया गया।

कांचनमालाने दृष्टि नीचे करके कहा—उपस्थित सज्जनो ! आपकी जिज्ञासा बढ़ती होगी—यह जाननेके लिए कि बन्दी वेशमें मंच पर उपस्थित ये सज्जन कौन हैं ? इन्हें न पहचाननेके कारण ही गोपकचन्द्रभाल इनके अपराधों पर प्रकाश नहीं डाल पा रहे हैं।'

सबकी दृष्टि उस बन्दीकी ओर जा पड़ी। कांचनमालाने बिना बन्दीकी ओर दृष्टि फेरे ही कहा—'ये हैं प्रियदर्शी श्रीसम्राटदेव।'

चन्द्रभाल काँप गया उसे लगा—जैसे आकाशसे नीचे गिर पड़ा हो।

'बोलो चन्द्रभाल ! इनके अपराधोंपर भी विचार करना है।'

सम्राटदेव गंभीर थे, मौन थे, अपमानित थे और उनकी दृष्टि नीचेकी ओर थी। वे अपने ऊपर लगाए गए अभियोगकी व्याख्या सुनना चाहते थे। सारी जनता चिल्ला पड़ी—'इनका अपराध और भी गुरुतर है।'

चन्द्रभाल बोला—'युवराजदेवके समक्ष तक्षशिलाधीशके अपराध का जो निर्णय किया गया और उसके अपराधोंके अनुसार युवराजदेवने सम्राटदेवसे उसे दण्ड देनेके लिए जो निवेदन किया था; उसपर

श्रीसम्राटदेवने कोई विचार नहीं किया और महीनों तक कोई उत्तर भी नहीं दिया।'

सम्राटदेव सुन रहे थे, उन्होंने मनमें सोचा—'कुणालका मुझे आज तक कोई पत्र नहीं मिला। यह कैसी बात है?'

गोपकचन्द्रभाल आगे कहता गया—'और श्रीसम्राटदेवने लोकप्रिय पितृभक्त प्रजावत्सल युवराजदेव कुणालको ही दंड देनेके लिए तक्षशिलाधीशके पास राजाज्ञा भेज दिया।'

'कैसी राजाज्ञा? कुणालको दंड देनेके लिए? यह सब कैसी बातें हैं।' सोचने लगे सम्राटदेव और रह-रहकर वे चकित भी होते जा रहे थे।

चन्द्रभालने पुनः कहा—'सबसे बड़ी निर्दयताकी बात तो यह है कि श्रीसम्राटने न्यायप्रिय योग्य पुत्रको, जो सबको प्राणकी भाँति प्रिय हो वह दण्ड व्यवस्था करदी; जो कभी न तो सुनी गयी और न भविष्यमें ही सुने जानेकी सम्भावना है। जिस विद्रोहको श्रीसम्राट अपार रणवाहिनीके बिना सहायता नहीं दबा सकते थे, उसे क्षणमात्रमें युवराजदेवने प्रजाके साथ अपनी आत्मीयता दिखाकर ही शान्त कर दिया, युवराजदेवके इस कार्यसे जनताके हृदयमें उनके प्रति बड़ी श्रद्धा हुई और साम्राज्यका भी बड़ा हित हुआ; किन्तु यह सब कुछ हो चुकनेके पश्चात् युवराजदेवको सम्राट 'राजभक्त कर्मचारियोंके उनके द्वारा अपमानका और विद्रोहियोंके साथ सहानुभूतिका अपराध घोषित कर उनके दोनों नेत्र लौहतप्त शलाकाओंसे फोड़कर राज्यसे निर्वासित कर भिक्षु हो जानेके लिए आदेश भेज दिया। हम प्रजाजन ऐसे सम्राटका ऐसे पिताका मुख नहीं देखना चाहते।'

'यह क्या?' घबराहटके साथ बोल उठे सम्राटदेव।

'युवराजदेवनें आपकी आज्ञा पालनके लिए स्वयं ही अपनी दोनों आँखें लौह तप्त शलाकाओंसे फोड़ डालीं और अन्धे होकर भिक्षु-वेशमें

वे पर्यटनके लिए चले गए। हम सब लोगोंने बड़ा ही यत्न किया, किन्तु पितृ-भक्त युवराजदेवने एक भी न सुना, वे आपकी ही आज्ञा पालनमें तत्पर रहे। कहा चन्द्रभालने।

'यह कैसा आदेश ? कैसा अपराध ? हमें इस सम्बन्धमें कुछ भी जानकारी नहीं हैं, ठीक-ठीक कहो चन्द्रभाल ! सुनना चाहता हूँ यह सब। क्या कह रहे हो ? उत्तेजित होकर गम्भीर वाणी में सम्राट् बोले।

'हाँ सम्राटदेव; यह जो कुछ भी कह रहा हूँ, इसे सत्य मानिए। मैंने स्वयं राजाज्ञा देखी थी, आपकी मुद्रिकाकी उस पर छाप अंकित थी।'

यह सब सुनते ही मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर वहीं गिर पड़े सम्राट-देव। सब लोगोंने उन्हें गिरते हुए देखा। चन्द्रभाल उनके समीप पहुंचा उन्हें संभालनेके लिए। सब लोग चकित थे।

सम्राटदेवके घोर मानसिक आघातके प्रभावको सब लोग देख रहे थे। कुछ लोग सोच रहे थे—इसका क्या रहस्य है। समझमें नहीं आ रहा है।'

चन्द्रभालकी बातें सत्य मानकर सम्राटदेवके हृदयमें वाणीका स्फुरण नहीं हुआ। शोकके प्रबल वेगने उनकी चेतना लुप्त कर दी। थोड़ी देरमें सम्राट एक बार चिल्ला पड़े—'हाय ! यह सब क्या हुआ ? कैसे हुआ ? मैंने कोई आज्ञा नहीं भेजी, कुणालका कोई पत्र नहीं पाया था। मैं तो एक महीने पूर्व मृत्युशय्यापर पड़ा था। शासन का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व, राजाज्ञा सब कुछ तो तिष्यरक्षिता पर ही निर्भर था !' कहते हुए सम्राटकी दशा पागलों जैसी हो गयी। मान-सिक सन्तुलन खो बैठे सम्राट।

सारी सभा मौन थी, चकित थी। स्तम्भित था चन्द्रभाल और दृष्टि नीचे कर विचारमग्न थी कांचनमाला।

थोड़ी देरमें सभाकी सारी कार्यवाही समाप्त हो गयी। जनता अब भी वहाँ स्थित थी।

'चन्द्रभाल ?' व्यथित होकर कहा सम्राटदेवने।

'आज्ञा सम्राटदेव।' सम्राटदेवके निकट हो बैठे हुए बोला चन्द्रभाल।

'वह पत्र दिखाओ जिसमें वह राजाज्ञा भेजी गयी थी।'

चन्द्रभालने सम्राटके समक्ष वह पत्र उपस्थित किया। काँपते हुए हाथोंसे लिया उसे सम्राटने। उसे उन्होंने देखा और कहा यह तिष्य-रक्षिताकी ही हस्तलिपि है। ओ दुष्ट हृदये ! तुमने यह राजाज्ञा प्रेषित करदी ? इसका परिणाम कुछ भी नहीं सोचा ? चन्द्रभाल मैं अभी क्षमा चाहता हूँ। मुझे क्षमा करदो। उतने समय के लिए जब तक मैं पाटलिपुत्र जाकर उस पापात्माको दंड न दे लूँ और जब तक फिर दण्ड भोगनेके लिए वापस न आ जाऊँ। मैं अवश्य आ जाऊँगा और दण्ड भोगनेके लिए तत्पर भी हूँ। मैं जीवित नहीं रहना चाहता और जीकर करूँगा ही क्या? किन्तु मुझे सन्तुष्ट हो लेने दो चन्द्रभाल ! आओ बेटी; काँचन आओ तुम्हारा सब कुछ लुट गया; क्या करूँ कैसे तुम्हें सान्त्वना दूं; समझमें नहीं आ रहा है, आओ ! सम्राट विलाप कर रहे थे, उनका कण्ठ शुष्क हो चला था। आँखोंमें आँसू न थे, जैसे वे काठमार गए हों।

कांचनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा प्रवाहित हो चली थी। वह सम्राटदेवके निकट आ गयी थी और मौन थी। उसके सरपर हाथ फेरने लगे सम्राटदेव।

सम्राटदेव विक्षिप्तों की भाँति बोले—'बेटी ! अवश्य मैं दण्ड भोगना चाहता हूँ और इसीलिए जीवित रहना चाहता हूँ। स्वयं अपने ही हाथों कुणालने आँखें फोड़ लीं ? हाय असह्य वेदना हुई होगी उसे। फिर मूर्च्छित हो गए सम्राटदेव।

चन्द्रभाल ! कांचन ! कुणाल कहाँ चला गया। बताओ मैं पहले वहीं चलना चाहता हूँ।' कहा सम्राटदेवने।

चन्द्रभाल बोला–'श्रीसम्राटदेव जब युवराजने अपनी आँखें फोड़ लीं और रिक्त होकर दोनों हाथोंसे टटोलते-टटोलते वे चले तो ठोकर खाकर गिर पड़े। उनकी यह दशा किससे सही न गयी। वे पुनः उठ खड़े हुए और आगे बढ़े। उनकी अत्यन्त दुर्दशा देखकर मुझसे रहा न गया और मैं उन्हें रथ पर बैठाकर चिकित्साके लिए उज्जैन पहुंचा आया। संभवतः वे वहाँ होंगे।

'चन्द्रभाल !'

'आज्ञा देव !'

'मैं इस प्रान्तका तुम्हें श्रेष्ठ प्रतिनिधि चुनता हूँ। कांचनमाला सम्प्रतिके सहित हमारे साथ पाटलिपुत्र जायगी। यहाँके शासनभार-का उत्तरदायित्व तुम पर रहेगा।'

'देव ! मैं पाटलिपुत्र तभी जा सकता हूँ, जब अपराधिनी तिष्य-रक्षिताके अपराधका मुझे ही अधिकार हो न्याय करनेका। मेरे पतिदेवकी जो दशा हुई है, उसे मैंने स्वयं अपनी ही आँखोंसे उसे देखा है, अतः जबतक मैं उसका बदला न चुका लूँगी, मुझे शान्ति नहीं मिल सकती।' कांचन बोली।

'इसे स्वीकार करता हूँ बेटी ! मैं स्वयं उसे दण्ड देना चाहता था, किन्तु ठीक है तुम्हारे ही द्वारा उसका न्याय होगा।'

'हाँ चन्द्रभाल !' सम्राट बोले।

'आज्ञा देव !'

'तक्षशिलाधीशको जो दण्ड दिया गया है, वह अभी पूर्ण नहीं है। अभी उसके अपराधोंपर विचार नहीं हुआ है और अभी न जाने कितने अपराध उसके और प्रमाणित होंगे। उसने मुझे पत्र लिखा था—

'युवराज स्वेच्छासे भिक्षु होकर चले गये हैं !'

'अवश्य साम्राज्ञी तिष्यरक्षिताके साथ मिलकर इसने कोई महान् षड्यन्त्र रचा होगा।' चन्द्रभाल बोला।

'मेरे यहाँसे प्रस्थान होनेका शीघ्र ही प्रबन्ध करो चन्द्रभाल !'

'कब तक श्रीसम्राटदेव यहाँसे प्रस्थान करेंगे ?'

'दूसरे दिन प्रातःकाल।'

'ठीक है। प्रथम मैं युवराजसे भेंट करा देना चाहता हूं।'

'ठीक है। जाओ शीघ्र प्रबन्ध करो।'

जनता घर लौट गयी।

२१

उस दिन भावावेशमें युवराज कुणाल आकर तप्त लौहशलाकाओं से अपनी आँखें फोड़कर असह्य वेदना चुपचाप सह रहे थे। उनकी महान् दुर्दशा देखकर चिकित्सक बड़ा दुःखी हुआ। वह कभी युवराजदेवके, सम्प्रति और काँचनमालाके साथ मिलनका स्मरण करता—जब औषधालयके निरीक्षणके लिए वे वहाँ गए थे, कभी प्रियदर्शी सम्राट अशोकवर्द्धनके निष्ठुर हृदयके सम्बन्धमें—युवराज-देवके प्रति किये गये अत्यन्त कठोर राजाज्ञाके सम्बन्धमें विचार करता और दुःखी हो सोचता—भला सम्राटने इतना कठोर दण्ड अपने योग्य पुत्रको कैसे दे डाला ? ऐसा कौन-सा अपराध इन्होंने किया था ? जिस कारण सम्राटके हृदयमें पुत्रवत्सलता नाममात्रके लिये भी न उभर पायी ?'

लोग दुःखी थे। युवराजको देखनेके लिए प्रतिदिन अधिकसे अधिक संख्यामें जनता आने लगी। सभी कुछ भी न कहकर पश्चाताप करते और अपनी सहानुभूति प्रकट कर लौट जाते। उनके द्वारा युवराजके सम्बन्धमें इस घटनाका समाचार पाकर अन्य लोग भी देखने आते और उन्हें देखकर दुःखी हो जाते।

युवराज गम्भीर थे। वे यही प्रयत्न करते कि मुझसे न तो कोई मिलने आये और न तो मेरे सम्बन्धकी किसी घटनाका प्रचार ही हो। वे शान्ति चाहते थे, इसीलिए उन्हें एकान्तकी आवश्यकता थी। जनताके आगमनसे जो इन्हें देखने आती थी, कष्ट होता था, संकोच होता था। सबसे बड़े कष्टकी बात तो यह थी कि अत्यन्त सहानुभूति रखनेवाली जनता, जो उन्हें देखने आती थी, उससे युवराज़ कहनेके

लिए कुछ सोच नहीं पाते थे, क्योंकि कुछ कहनेमें संकोच हो रहा था और कुछ भी न कहनेसे आगन्तुकोंको कैसे सन्तुष्ट किया जाता। विचित्र दशा थी युवराज कुणालके हृदय की।'

युवराजके हृदयमें बैराग्यकी लहरें तरंगित हो रही थीं; किन्तु जब उन्हें अपने पुत्र सम्प्रतिकी मुद्राका ध्यान आता—जब उनकी आँखोंने उसकी अत्यन्त भोली आकृतिको देखा था, जिसपर कुछ करुणाकी छाप अंकित थी—तब वे धैर्य छोड़ देते, विचलित हो जाते और हृदयमें ही रो पड़ते। उन्हें सम्प्रतिकी वही करुणापूर्ण आकृति बार-बार स्मरण होती, जिसे किसी भी दशामें वे न भूल पाते। और कांचनमाला? उसकी भी याद उन्हें हो जाती थी। युवराजके संबंधमें उस समय यह कहना कठिन होता था कि वे गम्भीर मुद्रामें थे, अथवा उनका मानसिक सन्तुलन खराब हो गया था।

यह सब कुछ होनेपर भी युवराज अपनी न्यायपरायणतापर लज्जित थे, जिस कारण उनके पिताने, जो दूसरोंके लिये उदार थे, पशु-पक्षियोंसे भी सहानुभूति रखते थे और घोर अहिंसाके पुजारी थे, उन्हें अत्यन्त कठोर राजाज्ञासे जीवन भरके लिये विपदमें डाल दिया था। राजकीय चिकित्सालयसे वे शीघ्र हट जाना चाहते थे, जिससे उन्हें कोई भी परिचित व्यक्ति देख न ले। उन्हें अपने ऊपर ही ग्लानि थी और पिताकी आज्ञा उनकी दृष्टिमें निर्दोष थी। अतः अपराधी होकर वे किसीको मुँह दिखाना न चाहते थे। महान् भावुक थे युवराज कुणाल! उनके हृदयमें भावुकताका प्रबल वेग था।

राज्यचिकित्सक बड़ी तत्परतासे चिकित्सा कर रहा था। पूर्ण सहानुभूति थी उसकी। युवराज उसके व्यवहार और आचरणसे आत्मीयताका अनुभव करने लगे थे।

एक दिन युवराजने पूछा—'वैद्यप्रवर!'

'आज्ञा युवराजदेव!'

'युवराजदेव न कहें भद्र ! अब भिक्षु कुणाल कहें। अभी कितने दिनों तक मौर्यसाम्राज्यकी सीमामें मुझे रुकना होगा ?' वाणीमें निर्वेद था त्याग और करुणाका भी प्रभाव था।

रो पड़ा मौन होकर ही राज्यचिकित्सक–युवराजकी दीनतापर। असह्य वेदना हुई उसे।

'बोलो भद्र ! बोलते क्यों नहीं।'

राज्यचिकित्सककी हिचकियाँ बँध गयी थीं, जिससे उसकी मानसिक दशाका पता युवराज पा गये थे। युवराज बोले--'भद्र ! मैं यथाशीघ्र मौर्यसाम्राज्यकी सीमा पार कर जाना चाहता हूं। अतः अभी कब तक मुझे यहाँ रोकोगे ?'

गला साफकर चिकित्सक बोला - 'देव ! जब तक आपकी आँखें ठीक न हो जायँगी, मैं आपको कहीं जाने न दूंगा। हाँ, यदि आप चलना ही चाहते हैं तो चल सकते हैं; किन्तु मैं आपके साथ रहूंगा। आपके साथ रहकर मैं चिकित्सा करता रहूंगा - जब तक आप अच्छे न हो जायँगे मैं भी मौर्यसाम्राज्यसे घृणा करने लग गया हूं देव ! मैं आपकी शरण चाहता हूं। मुझे राज्याश्रयकी आवश्यकता नहीं है। मुझसे आपका कष्ट सहा नहीं जा रहा है; इस प्रकार मुझे साथ लेकर जब कभी भी आप चलना चाहें, चल सकते हैं।'

'भद्र ! जैसा आप कहते हैं, क्या आज ही चल सकता हूँ।'

'हाँ, हाँ देव ! चल सकते हैं। औषधि आपकी आँखोंके लिए जो यहाँ मिल रही है, वह अन्यत्र भी मिलेगी।'

किन्तु भद्र ! इस प्रकार राज्याश्रयका परित्याग कर देनेसे आपके परिवारका पोषण कैसे होगा ? अब मेरे पास भी तो कुछ नहीं है ?'

'मेरा परिवार कहें, आत्मीय कहें, या जिसके प्रति ममता हो सकती है, वह सब कुछ देव आप स्वयं ही हैं। मैं आपके साथ ही रह कर अपनेको कृतकृत्य समझूंगा और मेरी सब कुछ अभिलाषा पूरी

हो जायगी। यह यदि आपको स्वीकार है, तब जब चाहें मौर्य-साम्राज्यकी सीमाका परित्याग कर सकते हैं।'

'भद्र। सोच लो भावावेशमें राज्याश्रय त्यागकर भविष्यमें दुःखी न हो जायें; क्योंकि मेरे साथ रहनेसे आपका कोई लाभ नहीं है। रही त्यागकी बात; इसके लिए भी साधनाकी आवश्यकता है; सहसा त्याग हानिकारक होता है और हो भी नहीं सकता भद्र !'

'इसकी चिन्ता न करें देव ! केवल आज्ञा दें, मेरा इसीमें बड़ा लाभ है। आपके साथ रहकर सेवा करनेमें मुझे जो लाभ दिखाई पड़ रहा है; वह परम लाभ है।

'ठीक है; कल प्रातःकाल मैं चलूँगा; तैयारी कर लें।'

चिकित्सालयका सारा भार दूसरे चिकित्सक पर छोड़कर युवराज कुणालके साथ दूसरे दिन प्रातःकाल वह वैद्य मौर्यसाम्राज्य की सीमा पार करनेके उद्देश्यसे चल पड़ा। आगे-आगे वह युवराज-देवका हाथ थामकर चल रहा था, मौन होकर उसके पीछे-पीछे युवराज चले जा रहे थे।

वहाँसे चलकर वे दोनों व्यक्ति कुस्तान पहुँचे। कुस्तानमें बौद्ध-महासभाका आयोजन किया गया था; जिसमें दूर-दूरके बौद्ध विद्वान् एवं भिक्षुप्रवर पधारे थे। अपार जन-समूहमें बौद्धविद्वानोंके भाषण हो रहे थे। जनता मन्त्रमुग्ध होकर विद्वानोंके भाषण सुन रही थी। बौद्ध महासभाके आयोजनका पता पाकर वैद्यके साथ कुणाल भी जा पहुँचे।

एकके पश्चात् दूसरे विद्वान्का भाषण जनता सुनती रही, किन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाषण था—कुक्कुटाराम विहारके संघ-स्थविर महात्मा यशका। कुणालको महात्मा यशका भाषण जब सबसे अधिक प्रिय लगा, तब वैद्यजीसे उन्होंने निकट चलनेका

आग्रह किया। वैद्यजी बोले—देव ! अभी सभाका कार्यक्रम चल रहा है, समाप्त हो जाने पर उनके पास पहुँचा दूंगा।'

सभाका कार्यक्रम समाप्त हो गया, वक्ता एवं श्रोता अपने-अपने स्थानको चले गये। इधर वैद्यजी कुणालको साथ लेकर महात्मा यश के निकट गए। महात्मा यशको इन लोगोंने साष्टांग प्रणाम किया और कुणालने पूछा—"क्या मुझे आप अपनी शरणमें स्थान देंगे महात्मन् ? मैं आपकी विद्वत्ता एवं व्यक्तित्वमें प्रभावित हूँ।"

महात्मा यश कुणालको बार-बार निहार रहे थे; उन्होंने पूछा-'श्रीमान् क्या अपना परिचय दे सकते हैं ? मुझे आपकी आकृतिसे कुछ भ्रम हो रहा है, मैंने कहीं आपको देखा है ! स्मरण नहीं हो रहा है, यों तो आपकी आकृति युवराज कुणालकी मुखाकृतिसे बहुत मिलती-जुलती है, किन्तु यदि अन्तर है तो यही कि उनके दोनों नेत्र हैं और आपके दोनों नेत्र खराब हैं। सुननेमें आया था कि युवराज कुणाल भिक्षु होकर पर्यटन करने चले गए हैं; किन्तु वे अन्धे नहीं थे। क्या मेरा भ्रम-निवारण करनेकी कृपा करेंगे श्रीमान् !"

'देव ! युवराज न कहें, भिक्षु कहें। मैं वही कुणाल आपके समक्ष उपस्थित हूँ, जिसके सम्बन्धमें आप बोल रहे हैं।"

चकित थे, महात्मा यश। थोड़ी देरमें बोले - 'प्रियवर ! यह तुम्हारी दशा कैसे हो गयी ? सुनना चाहता हूँ, तुम्हारी वह कथा जिस कारण तुम इस दशाको प्राप्त हो गए।' कहकर महात्मा यशने कुणालको हृदयसे लगा लिया।

'इस सम्बन्धमें विचारकर कोई लाभ नहीं प्रतीत होता देव ! यों तो आप मेरे गुरुजन हैं, आपसे मैं कोई भी बात छिपा नहीं सकता !'

'ठीक है भद्र ! तुम्हारी इस दुर्दशासे मैं विचलित हो गया हूं, अतः इस सम्बन्धकी जिज्ञासा मेरे हृदयमें प्रबल होती जा रही है, इसे शान्त करो प्रिय कुणाल !' महात्मा यश बोले।

'जो आज्ञा देव !' कहकर सारी कथा कुणालने महात्मा यशको सुना दी।

मौन होकर महात्मा यश सारी कथा सुनते रहे और अन्तमें बोले-'कुणाल ! तुमने अनर्थ कर दिया; हमें यह विश्वास नहीं हो रहा है। प्रियदर्शी सम्राटदेवने कदापि यह आज्ञापत्र नहीं भेजा होगा; अवश्य ही यह आज्ञापत्र किसी षड़यंत्रका प्रतीक है। तुम्हें अवश्य ही इसका पता लगा लेना था।'

'इस पर विचार करना निरर्थक है देव ! कुणाल बोले।'

'मेरी इच्छा है वत्स ! सम्राटदेवके समक्ष इसकी जाँच होगी और न्याय भी करानेकी प्रेरणा दी जायगी।' महात्मा यश बोले।

'किन्तु देव ! मौर्यसाम्राज्यकी सीमाके अन्दर न रहनेका उस आज्ञापत्रमें आदेश है।'

'वत्स ! धर्माचार्य और भिक्षु सर्वत्र भ्रमण कर सकते हैं, न्यायाज्ञाके उल्लंघनका समर्थन धर्मप्रचारके लिए परिस्थिति विशेष में सम्राटदेव करते आये हैं, यह नहीं भूलना है, अतः हम लोग पाटलिपुत्र शीघ्र चलेंगे।' दृढ़तापूर्वक बोले महात्मा यश।

दूसरे दिन प्रातः काल महात्मा यश, कुणाल और वैद्यप्रवरको जो कुणालकी आंखोंके चिकित्सक थे, साथ लेकर कुस्तानसे कुक्कुटा-राम विहारके लिए चल पड़े !

कुक्कुटराम विहार पहुँचकर महात्मा यशने अपने एक शिष्यको आदेश दिया कि—'पाटलिपुत्र जाकर श्रीसम्राटदेवसे अवकाश निकालकर आनेका निवेदन करो और कहो कि महात्मा यशने आपको याद किया है।'

'किन्तु देव ! श्रीसम्राटदेव तो तक्षशिला पधारे हैं, शायद वहाँ इस बार बड़ा प्रबल विद्रोह उठ खड़ा हुआ है, इसीलिए श्रीसम्राटदेव

किसी और को न भेजकर स्वयं चले गए हैं।' शिष्यने सम्मान प्रदर्शित करते हुए महात्मा यशसे निवेदन किया।

युवराज कुणालका हृदय काँप गया—गोपकचन्द्रभाल और कांचनमालाका क्रांतिकारी अभिप्राय समझकर। कुणालने सोचा—अवश्य ही ये लोग मौर्यसाम्राज्यकी शक्तिसे नष्ट हो जायेंगे।

'अच्छा यदि सम्राटदेव नहीं हैं, तो आमात्यश्रेष्ठको ही बुला लाओ।'

कुछ सोचकर महात्मा यशने कहा।

मस्तक नवाकर वह शिष्य बाहर चला गया।

कुणाल बोले—'किन्तु देव ! मुझे न्यायकी अब आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती है। मैं पुनः माया-ममताके आवर्त्तमें नहीं पड़ना चाहता; अतः न्याय कराकर क्या करूँगा ?'

'ठीक कहते हो प्रियवर ! किन्तु उस षड़यंत्रका उद्घाटन न्याय-की दृष्टिसे आवश्यक है।' महात्मा यश बोले।

'किन्तु देव न्याय और अन्यायके अन्तस्तलमें पैठकर विचार करना राजपुरुषोंका कार्य है, हम भिक्षुओंसे उनका क्या प्रयोजन ?'

'यह धर्मका विषय है भद्र ! अन्यायसे अधर्मका और न्यायसे धर्मका पोषण जो होता है। राजनीतिसे नहीं, किन्तु धर्मसे हम लोगोंको अवश्य ही न्यायका समर्थन करना चाहिए।'

'यदि आपकी प्रभावशाली वाणीका प्रभाव श्रीसम्राटदेव पर हुआ और वे मुझे अपने साथ लिवा जानेका प्रयत्न करने लगेंगे, तो क्या होगा ?''

'यदि तुम्हारे हृदयमें वैराग्यकी भावना प्रबल होगी, तो उनका प्रयत्न विफल हो जायगा वत्स !'

२२

प्रियदर्शी सम्राट अशोकवर्द्धनके तक्षशिला चले जानेपर शासनकी बागडोर पुनः राजमहिषी तिष्यरक्षिताके ही हाथोंमें आ गई थी। वह नह चाहती थी, कि सम्राटदेव तक्षशिला चले जायँ; क्योंकि उसे भय था—कहीं उसके सभी षड़यन्त्रोंका पता उन्हें न चल जाय।

महात्मा यशका संदेशपायक एक शीघ्रगामी रथपर चढ़कर पाटलिपुत्र राज्यप्रासाद आ पहुंचा। उसने प्रतिहारीसे कहा—'मैं आमात्यश्रेष्ठसे मिलना चाहता हूँ।'

'आपका परिचय भद्र !' प्रतिहारी बोला।

'मैं कुक्कुटाराम बिहारके संघस्थविर महात्मा यशका सन्देश लेकर आया हूँ, जाकर निवेदन करो।'

वृद्ध आमात्यश्रेष्ठ कार्यव्यस्त थे। प्रतिहारीने पहुँचकर सम्मान प्रदर्शित किया और निवेदन किया 'आपसे मिलने महात्मा यशका सन्देशपायक प्रमुख द्वारपर उपस्थित है श्रीमान् !'

'उपस्थित करो।' आमात्यश्रेष्ठ बोले।

प्रतिहारी भिक्षुको साथ लेकर आमात्यश्रेष्ठके समक्ष पहुंचा। भिक्षुने 'ओं नमो बुद्धाय' कहकर अभिवादन किया आमात्यश्रेष्ठको।

'आपको महात्मा यशने भेजा है ?' पूछा आमात्यश्रेष्ठने।

'जी हाँ श्रीमान् ! वे तत्काल आपका साक्षात्कार करनेके उद्देश्य से स्मरण किए हैं।'

कुछ आश्चर्य व्यक्त करते हुए आमात्यश्रेष्ठने भिक्षुकी ओर दृष्टिपात किया और थोड़ा रुककर बोले—'धर्माचार्य महात्मा यश प्रसन्न तो हैं ?'

'हाँ देव ! वे प्रसन्न हैं।'

'कोई विशेष बात तो नहीं है? मुझे कैसे स्मरण किया है उन्होंने?'

'यह तो मुझे नहीं विदित है श्रीमान् !''

'अच्छा ! परिचारक !' पुकारा आमात्यश्रेष्ठने।

'आज्ञा देव ! कहते हुए झुककर परिचारकने अभिवादन किया।

मुझे कुक्कुटाराम बिहार जाना है, रथ शीघ्र तैयार करो।''

मस्तक नवाकर सम्मान प्रदर्शित करते हुए परिचारक बोला—'जो आज्ञा श्रीमान् !''

आमात्यश्रेष्ठ एक तीव्रगामी रथपर आरूढ़ हुए और संघकी ओर चल पड़े। उनके पीछे महात्मा यशके संदेशपायकका भी रथ चल पड़ा।

इधर यवराज कुणालके कुक्कुटाराम बिहारमें आ जानेका और उनके अन्धे हो जानेका सारे राजनगर पाटलिपुत्रमें समाचार फैल गया। अपने व्यक्तिगत गुप्तचरों द्वारा कुणालके आगमनका सम्बाद पाकर राजमहिषी तिष्यरक्षिता काँप गयी। उसके आश्चर्य की सीमा न थी। क्या करे वह ! अब क्या होगा ? उसे कुछ सुझायी न पड़ रहा था। वह विचार और चिन्ताके उद्वेलित सागरमें डूबने लगी। ठीक उसी समय रुद्रसेन आ पहुंचा। पूछा उसने—'क्या आ सकता हूँ राजमहिषी !'

'कौन रुद्रसेन ?' पूछा तिष्यरक्षिताने।

'जी हाँ राजमहिषी ! मैं ही हूँ।'

'आओ रुद्रसेन ! तुम्हारी प्रतिक्षामें ही बैठी थी।'

रुद्रसेनने आकर तिष्यरक्षिताको अभिवादन किया। रुद्रसेनके भीतर प्रविष्ट हो जानेपर प्रकोष्ठका दरवाजा स्वयं राजमहिषीने बंद कर लिया।

रुद्रसेन बोला—'आप चिन्ताग्रस्त-सी दिखायी पड़ रही हैं देवि !'

'तुम्हारा अनुमान ठीक है रुद्रसेन !'

'मैं आपसे कुछ विशेष बातें निवेदन करने उपस्थित हुआ हूँ।'

'कहो रुद्रसेन !'

'यही कुणाल कुस्तानसे महात्मा यशके साथ आ गए हैं और मुझे यह भी पता चला है कि महात्मा यशने आमात्यश्रेष्ठको इस सम्बन्धमें वार्त्ता करनेके लिए दूत भेजकर बुलाया है।'

'आमात्यश्रेष्ठको बुलाया है ?' चकित होकर पूछा राजमहिषीने।

'हाँ देवि !'

'तब क्या करोगे रुद्रसेन ?' भयार्त्त होकर बोली तिष्यरक्षिता।

'निश्चय ही सब षड़यन्त्र सम्राटदेवको विदित हो जायगा।'' रुद्रसेन चिन्ता व्यक्त करते हुए बोला !

'तब तो निश्चय ही प्राण बचाना दुष्कर है।' घबराहटके स्वरमें बोली राजमहिषी तिष्यरक्षिता।

थोड़ी देर मौन होकर तिष्यरक्षिता पुनः बोली—'कोई उपाय सोचे हो रुद्रसेन !'

'और तो नहीं, एक उपाय है राजमहिषी !'

तिष्यरक्षिता आशान्वित हुई। उसका चित्त कुछ हल्का हुआ; बड़ी उत्सुकतासे उसने पूछा—'बोलो; क्या सोचा है तुमने ? निवेदन करो।'

'यही कि कुणाल सम्राटदेवके समक्ष न उपस्थित होने पावें।'

'यह तो असम्भव है, क्योंकि न तो सम्राटदेवको मना किया जा सकता है और न कुणालको ही।'

'मना करके उन्हें कैसे रोका जा सकता है राजमहिषी ! उन्हें रोका जा सकता है अन्य उपायसे।

'यह क्या ?'

'कुणालकी हत्या करके।'

'रुद्रसेन और तिष्यरक्षिताको यह कार्य सरल जान पड़ा। मनुष्य एक पापको छिपानेके लिए दूसरा पाप करता है और दूसरे पापको छिपानेके लिए तीसरा। इसी प्रकार वह पाप-कर्ममें प्रवृत्त होता चला जाता है और सारे जीवनमें उसका आचरण निकृष्ट हो जाता है, क्योंकि उसे यही सरल जान पड़ता है।

'ठीक है'; बोली तिष्यरक्षिता 'अन्धे होकर उन्हें कष्ट होता होगा और मृत्यु हो जाने पर जीवनसे छुटकारा पा जायँगे। हमारा भी भला होगा। किन्तु यह सब कार्य होगा कैसे ?'

'सब ठीक हो जायगा। समय पर आपको सूचना दूंगा। इस समय तो मैं आपसे परामर्शके लिए उपस्थित हुआ हूँ। अब आज्ञा दें, मैं जा रहा हूँ।' बोला रुद्रसेन और राजमहिषीको अभिवादन कर बाहर चला गया।

+ + +

कुक्कुटाराम बिहार पहुँचकर आमात्यश्रेष्ठने महात्मा यशका चरण-स्पर्श किया।

महात्मा यश बोले—'आमात्यश्रेष्ठ ! आपको महान कष्ट दिया है, क्षमा करेंगे।'

'यह तो मैं आपकी महती कृपा समझता हूँ; हाँ, यहाँ आपके दर्शनोंकी इच्छा बहुत दिनोंसे थी, किन्तु कार्योंकी अधिकतासे नहीं आ पा रहा था।'

'आप इसी तरह नहीं ही आ पाते हैं; इसीलिए तो मैंने आपको बुलवाया है।' महात्मायश मुस्कुराते हुए कह पड़े।

'महाप्रभु ! मैं इसलिए आपकी ओरसे निश्चिन्त था कि आवश्यकता पड़ने पर तो मुझे आप बुला ही लेंगे।'

'क्या आवश्यकता पड़ने पर और बुलाए जाने पर ही आपको आना चाहिए आमात्यश्रेष्ठ !'

'नहीं, नहीं देव ! यह कदापि न समझें।'

'अच्छा यह तो बताइए कि सम्राटदेव तक्षशिला गए हैं ?'

'हाँ महात्मन् ! वहाँ पुनः विद्रोह खड़ा हो गया है।'

'क्या आपको अवगत है कि वहाँ पुनः विद्रोहाग्नि क्यों भभक उठी है ?'

'नहीं प्रभो ! हाँ उस बार विद्रोहका दमन युवराज कुणाल बड़ी सरलतासे दबा दिये थे; किन्तु उनके स्वेच्छासे बौद्ध-भिक्षु होकर हटते ही विद्रोह पुनः उठ खड़ा हुआ। अपने पत्रमें इतना ही तक्षशिलाधीशने लिखा था। यह समाचार पाते ही सम्राटदेव अत्यन्त दुःखी हो उठे और वे तक्षशिला इसका पता लगाने स्वयं चले गए।'

'क्या युवराजके बौद्ध-भिक्षु होकर देशाटनके लिए चले जानेका कारण आपको विदित है आमात्यश्रेष्ठ !'

'नहीं देव !' कुछ चकित होकर आमात्यश्रेष्ठने कहा।

'युवराज स्वेच्छासे बौद्ध-भिक्षु नहीं हुए हैं।'

'आप बता सकते हैं प्रभु इस सम्बन्धमें ! क्या कारण है युवराजके बौद्ध-भिक्षु होनेका ?'

'हाँ; सुनिए युवराजको सम्राटदेवकी ओरसे आज्ञा दी गयी थी कि उन्हें आंखोंसे अन्धा और भिक्षु बनाकर मौर्यसाम्राज्यसे बाहर निकाल दिया जाय।'

आश्चर्यचकित होकर बोले आमात्यश्रेष्ठ—'किसके पास ऐसी आज्ञा भेजी गयी थी महाप्रभु !'

'तक्षशिलाधीशके पास।' महात्मा यश बोले।

'ऐसा कदापि नहीं हो सकता देव ! ऐसी कोई आज्ञा किसीके पास नहीं भेजी गयी थी; आप ही सोचें, भला सम्राटदेव ऐसी आज्ञा तिसपर युवराज कुणालके लिए भेज सकते हैं ? हो नहीं सकता; सर्वथा असंभव है यह।'

'किन्तु यह मैं प्रामाणिक बात बता रहा हूँ आमात्यश्रेष्ठ ?'

'यदि ऐसी कोई आज्ञा यहाँसे प्रेषितकी गयी होती, तो अवश्य मुझे विदित होता।'

'अवश्य यह आप सबकी असावधानीका परिणाम है आमात्य-श्रेष्ठ ! आपको पता नहीं है, इस राज्याज्ञामें अवश्य ही कोई षड़यन्त्र है।'

'षड़यन्त्र !' कहते हुए आश्चर्य व्यक्त किया आमात्यश्रेष्ठने।

'हाँ, षड़यन्त्र ! महात्मा यशने दुहराया।

'हो सकता है महात्मन् ! सम्राटदेव जब बहुत ही अस्वस्थ हो उठे थे, उस समय शासनकी बागडोर तिष्यरक्षिताके हाथोमें थी, अत: संभव है, इस षड़यन्त्रका सूत्रधार राजमहिषी तिष्यरक्षिता ही रही हों।

'बस, बस ! उस नारीने युवराजका जीवन नष्ट कर दिया। उस षड़यन्त्रको युवराजने पिताकी आज्ञा समझकर स्वयं दोनों नेत्र अपने ही हाथोंसे फोड़ भिक्षु-वेष धारण कर लिया।'

'क्या सचमुच युवराजने अपने नेत्र नष्ट कर लिए महाप्रभु !'

'हाँ आत्मात्यश्रेष्ठ ! आप उन्हें देखकर दु:खी हो उठेंगे।'

'इस समय युवराजदेव कहाँ है; क्या आपको कुछ पता है ?'

'आप उनसे मिलना चाहते हैं ?'

'इसीलिए तो पूछ रहा हूँ देव ! मैं उन्हें देखनेके लिए व्याकुल हूं।'

'अच्छा बैठिए, उन्हें बुलाता हूँ।' कहते हुए महात्मा यशने एक भिक्षुको भेजा।

थोड़ी देरमें वह भिक्षु कुणालका हाथ थामकर धीरे-धीरे महात्मा यशके समक्ष उपस्थित हुआ। आमात्यश्रेष्ठने देखा अत्यन्त दीनताको

प्राप्त, नेत्रविहीन, कृशकाय भिक्षु-वेशमें युवराज कुणाल सामने खड़े हैं। सहसा उन्हें देखकर आमात्यश्रेष्ठ पहचान न पाए; किन्तु थोड़ी देरमें उन्हें पहचानकर आमात्यश्रेष्ठ बड़े दुःखी हुए, उनका धैर्य छूट गया और वे रो पड़े। रुद्र कंठसे वे बोल उठे—'यह क्या देख रहा हूँ युवराज ! यह आपकी दशा कैसी हो गयी है ?'

'कौन ? आमात्यश्रेष्ठ ?'

'हाँ देव ! यही देखनेके लिए जीवित रहा हूँ। कहकर अत्यन्त विषादके वशीभूत होकर आमात्यश्रेष्ठ मौन हो गए।

'वृद्धवर ! आत्मात्यश्रेष्ठ !'

रुँधे हुए गलेको साफकर आमात्यश्रेष्ठ बोले—'हाँ युवराजदेव !'

'युवराजदेव न कहें आमात्यश्रेष्ठ ! अब मैं भिक्षु कुणाल हूँ। क्षणभंगुर शरीरके परिवर्तनको देखकर आप दुःखी हो गए हैं। धैर्य रखिए आमात्यश्रेष्ठ !'

'दुःख हमें इस बातका है कि आप षड़यन्त्रमें फँस गए। बिना सोचे-विचारे उस आज्ञापत्रके अनुसार आपने क्यों आचरण किया ! जिसे पिताकी आज्ञा मानकर आपने पिता और आत्मीयजनों को शोकमें डालकर जीवनभरके लिए एक महान् शारीकि यातना भोगनेके लिए अपनेको वाध्य कर दिया। भला इसे देख-कर कौन पुरुष धैर्य रख सकता है देव ! किसे न विषाद होगा इसे देखकर। जिस पिताकी आज्ञा मानकर उन्हें सन्तुष्ट करनेके उद्देश्यसे यह सब कुछ आपने कर डाला, क्या उस पिताके विषादकी कल्पनाकर आपको सावधान रहनेकी आवश्यकता नहीं थी देव !'

'अब सब कुछ सोचना व्यर्थ है आमात्यश्रेष्ठ ! जो होना था, वह हुआ। अब सोचना निरर्थक है।' कुणालने कहा।

'आमात्यश्रेष्ठ !' महात्मा यश पुनः बोले।

'हाँ महाप्रभु !'

'इसका न्याय होना चाहिए। इसीलिए आपको बुलाया हूँ।'

'अवश्य होगा धर्माचार्य; महात्मन् ! सम्राटदेवके तक्षशिला से लौट आने पर !'

दूसरी बात यह भी है कि आपको तिष्यरक्षितासे प्रत्येक बातोंमें सम्राटदेवके आने तक सावधान रहना होगा, क्योंकि पता चलनेपर उसका क्रियाकलाप और भी भयंकर हो सकता है।'

'आपका अनुमान ठीक है महाप्रभु !'

आमात्यश्रेष्ठने महात्मायशको अभिवादनकर और युवराज कुणालको हृदयसे लगाकर राज्यप्रासादको प्रत्यावर्त्तन किया और वहाँ पहुँचकर उन्होंने अत्यन्त कुशल और वीर योद्धाओंको तिष्य-रक्षिताके क्रियाकलापकी जानकारीके लिए गुप्तचर नियुक्त कर दिया।

२३

अर्द्धरात्रि व्यतीत हो चुकी थी। सन्नाटा छाया था। राजनगर पाटलिपुत्रमें केवल प्रहरियोंकी कभी-कभी पदचाप सुनायी पड़ती थी। राजमहिषी तिष्यरक्षिता रुद्रसेन एवं कुछ विश्वसनीय सैनिकों को साथ लेकर रथारूढ़ हो कुक्कुटाराम विहार पहुँची। वहाँ उसने पहुँचकर अपना रथ सैनिकोंके साथ बाहर ही खड़ा कर दिया और एकान्तमें जहाँ कुणाल रहते थे पहुँचकर रुद्रसेनने किवाड़ खटखटाया। विहारके सभी भिक्षु सो रहे थे; किन्तु कुणाल और उनके साथी वैद्यजी जग रहे थे। कपाट खटखटानेकी ध्वनि सुनकर कुणालने पूछा—'कौन है ?'

बाहरसे ध्वनि आई—'मैं रुद्रसेन बोल रहा हूँ देव ! मुझे राजमहिषीने आपकी सेवामें भेजा है।'

'कहाँ हैं माताराजमहिषी ?'

वे विहारके वहिर्द्वार पर आपसे मिलनेके लिए उपस्थित हैं। जबसे उन्होंने आपके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें सुनीं, तबसे वे बहुत दुःखी हैं और आपसे मिलनेके लिए पधारी हैं।'

'इस समय पधारी हैं ?'

'हाँ देव ! रात्रिमें वे गुप्त रीतिसे मिलने आयी हैं, क्योंकि विहार में स्त्रियोंका आगमन वर्जित है और सुना है कि आप विश्रामसे बाहर नहीं जा रहे हैं। उसे धर्म-भूमि मानकर वहीं रुके हैं, बिना सम्राटदेव की आज्ञा प्राप्त किए आप मौर्यसाम्राज्यकी सीमाके बाहर नहीं जा सकते। सुना है, आपकी आँखें खराब हैं, यही सब सोच-समझकर वे स्वतः मिलनेके लिए उपस्थित हुई हैं।'

आमात्यश्रेष्ठ और महात्मायशसे हुई वार्ता सुन चुके थे वैद्य प्रवर। अतः रात्रिमें तिष्यरक्षितासे इस प्रकार मिलने जाना वे अत्यन्त

हानिकर समझते थे। उन्होंने बड़ी विनम्र वाणीमें कुणालसे कहा—'देव ! रात्रिमें मिलन जाना, मुझे बड़ा अनिष्टकर प्रतीत हो रहा है, अतः बिना समझे-सोचे कोई ऐसा कार्य न कर डालना चाहिए, जिससे कोई दूसरी आपदा आ खड़ी हो जाये।'

'भद्र ! तुम ठीक कहते हो, किन्तु मुझे भयका कोई कारण नहीं दिखाई पड़ रहा है।' कुणालने मनमें सोचा—अवश्य पहले राज-महिषीने मेरे साथ निन्दनीय कार्य किया था और संभव है, षड़यंत्र रचा हो, किन्तु वह अब पश्चात्ताप करती होगी और मुझे देखनेके लिए दुःखी होगी। अतः भयका कोई कारण नहीं।'

'चलो रुद्रसेन मैं चलता हूँ।' कहा कुणालने।

कुणाल उठकर खड़े हो गए। उन्हें सहारा देनेके लिए वैद्यवर भी उठ खड़े हुए। उनका सहारा लेकर वे विहारके वहिर्द्वार पर जा पहुंचे। रथ पर तिष्यरक्षिता बैठी थी, उसने युवराजको आते देखकर कहा—'आओ युवराज ! सम्राटने तुम्हारे साथ बड़ा ही अन्याय किया है। मैं बहुत दुःखी हूं।'

'वे मेरे पिता हैं माता ! आपकी और उनकी आज्ञाका पालन मैं अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझता हूँ।' कहते हुए कुणाल उसके निकट पहुँच गए और टटोलकर पूछने लगे—'माता आपके चरण कहाँ हैं ?'

तिष्यरक्षिताने कुणालका हाथ थाम लिया और खींचकर रथ पर बैठा लिया। वैद्यप्रवर वहीं खड़े रह गए, उनका साहस न हुआ कि राजमहिषीके रथ पर बैठते। कुणाल युवराज थे राजमहिषीके रथ पर बैठ सकते थे, किन्तु अन्य कोई उनके रथ पर बैठने का साहस नहीं कर सकता था ? अतः वैद्यजी नीचे ही खड़े रह गए। युवराजके रथपर बैठते ही वह आगे बढ़ा। रुद्रसेनने सोचा—'यदि इस व्यक्ति-को यहीं छोड़ा गया तो सारा रहस्य खुल जायगा; अतः वह वैद्यजीसे बोला—'आओ भद्र ! तुम भी मेरे रथ पर बैठ लो।'

रुद्रसेनके रथ पर वैद्यजी भी बैठ गए, वे सब सशस्त्र सैनिकोंके साथ भीषण वनस्थलीकी ओर चल पड़े।

ऐसा कौन सा तुमने अपराध किया था युवराज ? जो सम्राटने तुम्हें कठोर दण्ड दे डाला; समझमें नहीं आ रहा है।' बोली तिष्य-रक्षिता।

'इस संबंधमें माता राजमहिषी ! न तो वार्ता करें और न मुझे युवराजही कहें। अब मैं भिक्षु कुणाल हूँ। 'युवराज' शब्द मुझे बड़ा अप्रिय लगता है।'

'और मुझे 'माता' शब्द भी तो बड़ा अप्रिय लगता है। मैंने भी तुम्हें बार-बार मनाकर दिया है और तुम मानते नहीं।'

कुणाल चकित हो गए। उन्हें पुरानी बातें याद हो-हो आईं। रथ तीव्र वेगसे आगे बढ़ रहा था, सहसा रथकी गतिका अनुमानकर कुणालने पूछा—'माता ! मैं कहाँ चल रहा हूँ ?'

फिर माता कहकर तुमने सम्बोधित किया ! पामर कहींके, दुष्ट ! नीच ! अभी तुम्हारी त्वचा ऊधेड़वा लूँगी। जिस शब्दसे मुझे चिढ़ है, वही तू बार-बार कहता है ? मुझे चिढ़ानेके लिए ?' तिष्यरक्षिता तो इसी प्रयत्नमें थी ही कि कोई भी शब्द कुणालके मुखसे निकले; बस तुरन्त दोष मढ़कर बातें बढ़ा दी जायँ और तब प्राणदण्ड दे दिया जाय।

'कहाँ चल रहा हूँ ?' यह पूछने की कौन-सी बात है ? मैं तुम्हारे हितमें तत्पर थी; सोचा राज्यप्रासाद लिवा चलूँ। आँखों की दवा करवा दूं। त्र्यम्बक शास्त्री इस समयके बहुत बड़े चिकित्सक हैं, किन्तु मुझपर तुम सन्देह करते जाते हो और अपमानित भी कर रहे हो ? तुम्हारी पुरानी बातें जब याद होती हैं; तब रक्त उष्ण हो जाता है और हृदयमें तुम्हारे प्रति रोष भड़क उठता है। दुष्ट कहींके।' ऐसा कहकर तिष्यरक्षिताने कुणालके मुँहपर थप्पड़ लगा दिया और क्रोध दिखाते हुए वह बोली—'इच्छा होती है, रथसे नीचे ढकेल दूं '

कुणालकी समझमें एक भी बात नहीं आ रही थी; उन्हें आश्चर्य हो रहा था, ऐसा कौन सा अपराध हो गया, जिससे सहसा तिष्यरक्षिताके व्यवहारमें कठोरता आ गई ! 'माता' कहने और कहाँ चल रहा हूँ' पूछने पर यह कोई भी अपराध नहीं माना जा सकता, जिसका बहाना कर इसने मेरे ऊपर प्रहार किया है और अपने अपमानका अनुभव किया है।

'मुझे उतार दो देवि! रथसे; मैं इसी दशामें सन्तुष्ट हूँ। मुझे न तो आँखोंकी चिकित्सा करानी है और न राज्यप्रासादमें ही चलना है।'

कुणालके मुँहसे शब्द निकले ही थे कि तिष्यरक्षिताने युवराजको रथके नीचे ढकेलना चाहा; किन्तु कुणालने अपना हाथ, जिसे पकड़कर वह बाहरकी ओर खींच रही थी, उस ओर बढ़ाकर ढीला कर दिया। तिष्यरक्षिता रथसे नीचे आ गिरी। नीचे गिरते ही वह चिल्ला पड़ी, रथ वहीं रुक रहा। उसकी चिल्लाहट सुनकर रुद्रसेन आ पहुंचा और पूछा—'क्या बात है राजमहिषी ?'

'बात मत पूछो रुद्रसेन ! कुणालने मुझे अपमानित करना चाहा और जब मैंने उसे डाँटा, तब मुझे रथसे नीचे गिरा दिया।'

'क्यों भिक्षु कुणाल ! तुम भिक्षु होकर राजमहिषीका अपमान करोगे ? याद रखो तुम भिक्षु हो और ये साम्राज्ञी हैं। सम्राटदेवकी अनुपस्थितिमें शासनकी बागडोर इन्हींके हाथों है। राज्याज्ञाका संचालन इन्हींके द्वारा हो रहा है।'

गंभीर हो गए थे कुणाल और गंभीर वाणीमें बोले—'रुद्रसेन ! परिचय मैं राजमहिषीका और तुम्हारा भी जानता हूं। मेरे लिए तुम लोग नए नहीं हो।'

'मैं परिचय नहीं करा रहा हूं कुणाल। मैं तुम्हारी अशिष्टताकी ओर संकेतकर रहा हूं। जब तक मैं उपस्थित हूँ, राजकर्मचारी होनेके नाते राजमहिषीका अपमान सहन नहीं कर सकता।' रुद्रसेनने कहा।

'राजमहिषीका अपमान जब हो, तब तो तुम सहन नहीं कर सकोगे कि यों ही किसीके ऊपर राजमहिषीके अपमानका दोष लगा दोगे ?'

'मैं अधिक कुछ न कहूँगा। बोलिए राजमहिषी क्या आदेश है ?'

आदेश पूछते हो रुद्रसेन ! कुणालने मेरा घोर अपमान किया है। मैं इसे सहन नहीं कर सकती।'

'यदि मैंने राजमहिषीकी दृष्टिमें उनका अपमान किया है, तो निश्चय ही मैं दण्ड भोगनेके लिए प्रस्तुत हूँ।''

'ऐसा नहीं हो सकता देव ! आपका अपराध पौर-सभामें राजमहिषीको प्रमाणित करना होगा और आमात्यश्रेष्ठ धर्माचार्य महात्मा यशके समक्ष। भले आप राज्याज्ञाका पालन स्वेच्छासे करके अन्धे और भिक्षु हो गए हैं, किन्तु राज्य परिवारसे आपका भी संबंध है; अतः राजमहिषी और रुद्रसेनके ही दृष्टिकोणका मापदण्ड न्याय नहीं मान लिया जायगा। अभी जो घटना तक्षशिलामें आपसे सम्बन्धित घटी है, उसीका न्याय होनेवाला है, उसके साथ इसका भी न्याय हो जायगा। धैर्य रखो रुद्रसेन !' बैद्य प्रवर बोले।'

'देखो ! तुम आज्ञा नहीं दे सकते ! समझे ? जानते हो ? अधिक बोलने और उपदेश देनेसे तुम्हें भी राजदण्ड भोगना होगा।'

'रुद्रसेन ! सावधान होकर बातें करो। जिसके अपराधपर विचार करना चाहते हो, वह भी साधारण व्यक्ति नहीं है। तुम्हारा इतना साहस ! छोटी मुँह बड़ी बात ! तुम साधारण भिक्षु समझ अपमानित कर रहे हो ? खबरदार ! यह न सोचो,—कि सैनिक तुम्हारे साथ हैं और जो चाहोगे वह कर लोगे। मैं जीवित रहते हुए तुम्हारी और राजमहिषीकी इच्छा इस सम्बन्धमें पूर्ण न होने दूंगा। मैं भी युवराज कुणालकी रक्षामें तत्पर उनका एक अंगरक्षक हूं। तुम्हारी जो भी इच्छा हो, खड़े हो जाओ। मैं अकेला हूँ, तुम लोग अनेक हो, देख लो अपना और मेरा पराक्रम।'

'शांत रहो भद्र ! शांत हो जाओ। माता राजमहिषीकी जो आज्ञा होगी, मैं वही करनेको प्रस्तुत हूँ।'' कहा कुणालने।

'फिर माता कहा तुमने मूर्ख ?' रोषमें अपने सैनिकोंका विश्वास करते हुए तड़प कर कहा तिष्यरक्षिताने।'

'माता कहना कौनसा अपराध है राजमहिषी ! आपको माता न कहकर परिचारिकाश्रेष्ठी कहा जायगा; तब आप प्रसन्न होंगी ? बोले वैद्यवर।

'रुद्रसेन ! क्यों सहन कर रहे हो ? आज्ञा देती हूँ—इसे प्राणदंडको।'

रुद्रसेनकी कृपाण हाथमें आ गयी; वह वैद्यप्रवर पर झपटा; किन्तु रुद्रसेनको पैंतरे पर खड़े होने और आक्रमण करनेके पूर्व ही वैद्यने अत्यंत शीघ्रतासे उसके बहुत निकट आकर पार्श्वसे कमर पकड़ लिया और कृपाण छीनकर एक हाथके एक ही झटकेसे उसे धराशायी कर दिया और कहा—'इसी बलके भरोसे, इसी रणकुश-लताके बल पर, तुम्हें और राजमहिषीको गर्व था ! बोलो ! अपने सहायकोंको भी बुला लो। मैं तुम्हारी हत्या तो इसलिए नहीं करूँगा कि पौरसभामें तुम्हें भी उपस्थित करना है और तुम्हारा भी न्याय होगा।' वैद्यप्रवर यह कह ही रहे थे कि इतनेमें कुछ सैनिकोंने चारों ओरसे उन्हें घेर लिया। प्राणोंका मोह त्यागकर वैद्यजी जोशमें आ गए और उनका डटकर सामना करने पर आरूढ़ हो गए। युद्ध प्रारम्भ हो गया। उसी समय कुछ अधिक सैनिक वहाँ उपस्थित हो गए।

तिष्यरक्षिताने रुद्रसेनके निकट आकर कहा—'अच्छा अवसर है—कुणालको और इस वैद्यको मौतके घाट उतार कर चले आना। तुम लोग धैर्यसे यह काम कर सकते हो। मैं अपना यहाँ रहना ठीक नहीं समझती, अतः मैं राज्यप्रासाद लौट रही हूँ, यह कार्य समाप्तकर तुम

मुझे वहीं मिलो। देखो, कुछ सैनिक और भी आ गए हैं। एक व्यक्ति कितना युद्ध करेगा ?' कहकर तिष्यरक्षिता लौट पड़ी और वहाँ युद्ध प्रारम्भ हो गया।

अपार उत्साह था वैद्यमें। चार-छ: सैनिकोंको उसने घायल कर दिया। थोड़ी देरमें वह कुछ शिथिल पड़ने लगा और विरोधी प्रबल पड़ने लगे। वैद्यजी अपने जीवनसे निराश हो गिर पड़े; इतनेमें सैनिकोंका एक बड़ा झुण्ड वहाँ और आ पहुँचा। राजमहिषीके सैनिक वैद्यको निष्प्राण समझकर उसे वहीं छोड़ कुणालको प्रचारकर उनकी ओर बढ़ने लगे थे। इसी बीच पीछेसे आनेवाली सैनिकोंकी टुकड़ी राजमहिषीके सैनिकों पर टूट पड़ी। राजमहिषीके कुछ सैनिक युद्ध करनेके लिए तत्पर हुए और कुछ भागनेके प्रयत्नमें आ गए; किन्तु सबका प्रयत्न विफल रहा। बादमें आनेवाली सैनिकोंकी वह टुकड़ी बहुत प्रबल पड़ गयी और वहाँ पर उपस्थित सभी राजमहिषीके सैनिक रुद्रसेन समेत वन्दी बना लिए गए और कुणालको देखकर सैनिकोंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'देव ? राजमहिषीके षड़यन्त्रमें पुन: कैसे पड़ गए ? चलिए आपको महात्मा यशके यहाँ पुन: पहुँचा दूँ।'

'मेरे साथी वैद्यजीको ढूढ़िये आप लोग ! वे जीवित हैं या नहीं। बड़ा भीषण युद्ध कर रहे थे। आप लोग थोड़ी देर और न पहुँचे होते, तो निश्चय ही मुझे भी प्राण त्याग करना पड़ता।' कुणाल बोले।

'भद्र वैद्यप्रवर ! आप बोलिए कहाँ हैं। जीवित तो हैं ?'

'जीवित तो हूं देव ! किन्तु पीड़ा असह्य है !'

कुणाल बड़े दु:खी हुए। कुछ सैनिकोंने युवराज कुणाल और वैद्यवरको कुक्कुटाराम विहार पहुँचाया और शेष सैनिकोंने बंदियों-को साथ लेकर कठोर बंदीगृहमें पहुँचाया।

२४

भिक्षु कुणालकी हत्यासे अपने सैनिकोंके विफल हो जानेका जब समाचार तिष्यरक्षिताको मिला; तब वह अत्यन्त दुःखी हुई। अपने बचावका वह जो भी प्रयत्न करती, वह सब विफल होने लगा। उसने अत्यन्त परेशानीका अनुभव किया। मृत्युका दृश्य उसकी आँखोंके समक्ष उपस्थित हो गया। क्या करे? कहां जाकर वह अपने प्राणोंकी रक्षा करे? संसार उसके लिए सूना दिखाई पड़ा। पौरसभाके समक्ष उसका न्याय होगा! उसके सारे षड़यन्त्र प्रमाणित होंगे! वह क्या उत्तर देगी? किसके ऊपर दोष लगावेगी। सुखमय जीवन उसने अपने ही हाथों नष्ट कर दिया। घोर पश्चात्ताप वह कर रही थी। उसे कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। क्यों नहीं पहले ही मैंने इन सभी परिणामोंको सोच लिया था। अधिकार मदमें मैं अन्धी हो गयी थी। अब क्या होगा? निश्चय ही प्राणदण्ड ही इसका प्रायश्चित्त है, सोचते हुये वह जीवनसे निराश हो गयी। ज्यों-ज्यों वह अपने अपराधोंको सोचती; त्यों-त्यों उसकी व्याकुलता बढ़ती जाती। अन्तमें वह असमर्थ हो गयी और अत्यन्त दीनताका अनुभव करने लगी। यदि यह विपत्ति किसी प्रकार टल जाती, तो वह जीवनमें घोर अहिंसा का आश्रय ग्रहण करती; किन्तु यदि इतने अपराधोंके पश्चात् जीवन रहे भी तो? कभी वह पलँग पर जा बैठती और सोचते हुए तत्काल उठ कर प्रकोष्ठमें घूमने लगती और पुनः पलँग पर जा बैठती। उसके चित्तमें स्थिरता नहीं थी। घोर पश्चात्ताप था—हृदयमें। किसी भी दशामें उसे आराम नहीं मिल पा रहा था। प्राणदण्डकी कल्पना उसके मस्तिष्कसे बाहर न निकलती थी। सोचते-सोचते सारी रात्रि

बीत गयी। न तो वह शय्या पर लेटी और न नींद ही आई। उसे भय था, नींद कहाँसे आती ? नाना प्रकारके संकल्प-विकल्पों और मानसिक संतुलन बिगड़ जानेके कारण उसका रूप विकृत होने लगा और वह भयानक प्रतीत होने लगी। इन सभी परेशानियोंके पश्चात् सहसा उसने एक उपाय सोच ही लिया। पौरसभाके समक्ष उसे कदापि नहीं उपस्थित होना है। सम्राटदेव, धर्माचार्य इत्यादिके न्याय करनेके पूर्वही अपना न्याय वह स्वयं कर लेगी, यह सोच रही थी तिष्यरक्षिता।

सहसा उसके शयन-प्रकोष्ठके द्वारपर एक परिचारिका उपस्थित हुई। उस समय तिष्यरक्षिता शय्या पर पड़ी थी। परिचारिकाने कक्षमें प्रवेश किया। देखा उसने राजमहिषी पलँगपर पड़ी है। उसने उसे अभिवादन किया। तिष्यरक्षिताका ध्यान भंग हुआ।

'इस समय आज तुम बहुत शीघ्र आ गई हो परिचारिके !' तिष्यरक्षिताने कहा।

'नहीं राजमहिषी ! अन्य दिनोंसे आज कुछ विलंब हो गया है। आप निश्चित समयपर उठ नहीं पाई हैं। क्या राजमहिषी कुछ अस्वस्थ हैं ?'

'नहीं भद्रे ! परिचारिके ! अस्वस्थ तो नही हूँ, किन्तु कुछ शिथिलता अवश्य है। इस समय तुम जाओ ! मुझे आराम करने दो। दो घण्टे पश्चात् आना। हाँ, प्रतिहारिणीसे कहो कि मैं दो घण्टे और आराम करना चाहती हूँ, इस समय मुझसे कोई नहीं मिल सकता।'

'जो आज्ञा।' कहकर वह बाहर चली गयी।

+ + +

आमात्यश्रेष्ठके सैनिक बन्दियोंको साथ लेकर उनके समक्ष उपस्थित हुए। प्रमुख सैनिकने आमात्यश्रेष्ठको सम्मान प्रदर्शित करते

हुए अभिवादन किया और हाथ जोड़कर उनके समक्ष वह खड़ा हो गया।

आपादमस्तक उसकी ओर दृष्टि फेंककर वृद्ध आमात्यश्रेष्ठने पूछा - 'सफल हो गए तुम इन बन्दियोंको बन्दी बनाकर? कोई बन्दी छूट तो नहीं गया भद्र !'

'नहीं देव ! छूटने तो कोई नहीं पाया, किन्तु यदि थोड़ी भी देर और हो गयी होती, तो इनके प्रहारोंसे युवराजदेवका जीवनदीप बुझ गया होता।'

'ठीक है।' सर हिलाते हुए बोले आमात्यश्रेष्ठ—'इन लोगों को कठोर कारागारमें भेज दो। इनका भी निर्णय होगा।'

'जो आज्ञा देव !' कहकर प्रमुख सैनिकने आमात्यश्रेष्ठको अभिवादन किया और बन्दियोंको कारागार ले जानेके लिए वह तत्पर हो गया।

\+ + +

दो घण्टे पश्चात् तिष्यरक्षिता शय्या परसे उठी। वह अत्यन्त शिथिल हो गयी थी। सारी चिन्ताओंने उसकी शक्तिका ह्रास कर दिया था। परिचारिका उपस्थित हुई और उसने अभिवादनकर राजमहिषीका जलपान उपस्थित किया। राजमहिषीने उसे ढककर रख देनेका आदेश दिया और कहा—'अब तुम बाहर जा सकती हो।'

परिचारिका बाहर चली गयी। तिष्यरक्षिताने पात्र उठा लिया और अंगूरका शर्बत भरा तथा हीरक मुद्रिकाका नग मल-मलकर उसे विषाक्त बना डाला। ज्योंही उसे पीनेके लिए उसने वह पात्र मुँहको लगाना चाहा, त्योंही आमात्यश्रेष्ठ आ पहुंचे द्वार पर और कहते हुए—'मैं आ रहा हूं, राजमहिषी !' उसके प्रकोष्ठमें प्रविष्ट हो गए।

काँपते हाथोंसे पात्र उसने तत्काल वहीं रख दिया और अपनेको अत्यधिक संयत करनेका प्रयत्न किया, किन्तु उसकी आकृति भाव-भंगिमा और घबराहट आदि छिपी न रह सकी आमात्यश्रेष्ठसे।

'राजमहिषी अत्यन्त घबराहटका अनुभव कर रही हैं; क्या मेरा कथन सत्य है ?' आमात्य महोदय बोले।

तिष्यरक्षिता मौन हो गयी और उसकी घबराहट बढ़ गयी। उसने अनुभव किया—'आमात्यश्रेष्ठ सब कुछ जान गए।'

उसके उत्तरकी प्रतीक्षा कर लेनेके पश्चात् पुनः प्रश्न किया आमात्यश्रेष्ठने—'उस पात्रमें क्या भरा है, राजमहिषी?'

फिर भी मौन थी—तिष्यरक्षिता।

'बोलिए राजमहिषी !'

'इस समय आप पधारें आमात्य महोदय; फिर किसी समय आइएगा। हाँ, कोई आवश्यक कार्य हो तो....।' बोली तिष्यरक्षिता।

'हाँ, हाँ; अवश्य कार्यवश उपस्थित हुआ हूँ राजमहिषी !'

'तो कहिए जो आपका आवश्यक कार्य हो। कामकी वार्त्ता करें।'

'निरर्थक बातोंकी मैं उलझनमें कभी भी नहीं पड़ता राजमहिषी ! जिस संबंधमें अभी आपसे पूछा है; उसका उत्तर देनेकी कृपा करें।'

'मुझे उत्तर देनेमें वाध्य नहीं किया जा सकता आमात्य महोदय; और चाहे जिस बातका उत्तर मैं दूं या न दूं, इस संबंधमें परतन्त्र नहीं हूँ।'

'चाहे अन्य बातोंका उत्तर भले ही न दें, किन्तु इसका उत्तर आपको देना ही होगा राजमहिषी !'

'आपके कथनको अस्वीकार करती हूँ आमात्य महोदय।'

'किन्तु आप ऐसा नहीं कर सकतीं राजमहिषी ! यह आदेश है

जो आपको दिया गया है। आमात्यश्रेष्ठका आदेश है, यह निवेदन नहीं है जो ठुकराया भी जा सकता हो।'

'किन्तु राजमहिषीको आमात्यश्रेष्ठ आदेश दे सकते हैं?'

'अवश्य; अवसर विशेषपर राजमहिषीको आज्ञा दी जा सकती है आमात्यश्रेष्ठ द्वारा।'

'किस अधिकारसे यह संभव है?'

'महामन्त्रित्वके अधिकारसे।'

'ऐसा कदापि नहीं हो सकता। आप राजमहिषीका अपमान कर रहे हैं, यह न भूलें।'

'नहीं भूलूँगा। मैं राजपरिवारके हितमें तत्पर हूँ, जिसे स्मरण रखूँगा। यह विष खाकर जो आत्महत्या आप करना चाहती हैं, उसे भी मैं स्मरण रखूँगा।

तिष्यरक्षिता भयत्रस्त हो मौन हो गयी। आमात्यश्रेष्ठने संकेत किया एक परिचारिका वहाँ आ उपस्थित हो गयी और सम्मान प्रदर्शित कर उसने पूछा—'आज्ञा देव!'

'वह विषपूर्ण पात्र बाहर फेंको।' परिचारिका चकित हो गई, विषका नाम सुनकर। उसने पात्र उठा लिया और बाहर फेंक दिया।

तिष्यरक्षिताकी भंगिमा वक्र हो गई, आमात्यश्रेष्ठ पर। वह बोली—'आप अनधिकार चेष्टाकर रहे हैं; आमात्यश्रेष्ठ महोदय!'

'आप जो भी समझें राजमहिषी!'

'आप प्रकोष्ठके बाहर चले जाइए।'

'अभी कुछ देर राजमहिषी मैं स्वतः बाहर चला जाऊँगा। अभी कार्य अधूरा है।'

विष भरा पात्र बाहर फेंककर परिचारिका पुनः उपस्थित हुई

और आमात्यश्रेष्ठको अभिवादन कर खड़ी हो गई। आमात्यश्रेष्ठने उसकी ओर देखा और कहा—'महाबलाधिकृतको उपस्थित करो।'

'जो आज्ञा !' कहकर वह चली गयी।

'आप इसी समय बाहर चले जाइए !' पुनः तिष्यरक्षिता बोली—

'आप अपनेको बन्दी समझिए राजमहिषी !'

'तुम्हारा साहस ! तुम मुझे बन्दी बना सकते हो ?'

'अवश्य आपने भारी अपराध किया है और अभी सम्राटदेवको आपके अपराधोंका पता नहीं है। मैं सब कुछ जानता हूं—आपका युवराजसे प्रणय-निवेदन, और उनका इस प्रस्तावको ठुकराना, युवराजपर आपके सैनिकों द्वारा आखेट-भूमिपर आक्रमण, कांचनमालाका बन्दीगृहमें आप द्वारा डाला जाना, आपके षड़यंत्रसे आँखों को नष्ट किया जाना, भिक्षु होकर युवराजका देशाटन और कल रात्रि में पुनः उन्हें मरवा डालनेका प्रयत्न सब कुछ मुझे विदित है। आपका सहायक रुद्रसेन घायल होकर बंदीगृहमें पड़ा है, जो आपके अपराधोंको पौरसभामें श्रीसम्राटदेवके समक्ष प्रमाणित करेगा।" बहुत गम्भीर वाणीमें आमात्यश्रेष्ठ एक साथ ही कह उठे।

तिष्यरक्षिता काँप गयी; जैसे आकाशसे गिर पड़ी हो।

परिचारिकाके साथ महाबलाधिकृत उपस्थित हुआ। उसने प्रथम राजमहिषीको तत्पश्चात् आमात्यश्रेष्ठको अभिवादन किया।

'महाबलाधिकृत महोदय !' कहा आमात्यश्रेष्ठने—'राजमहिषी इस समय बन्दिनी हैं। इसी प्रबन्धके लिए आपको स्मरण किया गया है।'

चकित हो गया महाबलाधिकृत और वह कभी आमात्यश्रेष्ठकी ओर तो कभी राजमहिषीकी ओर देखने लगा। उसका साहस नहीं पड़ रहा था कि आमात्यश्रेष्ठके आदेशका पालन करे और न तो उनकी आज्ञाका उल्लंघन ही।

मौन थी तिष्यरक्षिता। राज्याज्ञाका अधिकार सम्राटदेव राज-महिषी परही सौंपकर तक्षशिला पधारे थे।' सोचने लगा महाबलाधिकृत।

'क्या आप समझ नहीं रहे हैं महाबलाधिकृत महोदय!'

'समझ रहा हूँ देव!' मौन होकर वह सोचने लगा। इसी समय परिचारिका उपस्थित हुई और अभिवादनकर आमात्यश्रेष्ठसे बोली—'आमात्यश्रेष्ठ! श्रीसम्राटदेवका संदेशपायक द्वारपर मिलनेके लिए उपस्थित है।'

'उपस्थित करो उसे।'

'जो आज्ञा।' कहकर वह बाहर चली गयी।

संदेशपायक उपस्थित हुआ और अभिवादनकर भोजपत्र पर लिखा हुआ श्रीसम्राटदेवका आदेश आमात्यश्रेष्ठके हाथोंमें थमा पार्श्वमें खड़ा हो गया।

आमात्यश्रेष्ठने पत्र पढ़ा और उनकी आकृति पर सबने छाते हुए हर्षको देखा। आमात्यश्रेष्ठ बोले—'तो तुम तक्षशिलासे आ रहे हो संदेश-पायक!'

'जी हाँ श्रीमान्! तक्षशिलासे ही आया हूं।' बोला संदेश-पायक।

'तो इस समय सम्राटदेव तक्षशिलासे चल चुके हैं?'

'हां श्रीमान् अब वे तक्षशिला और पाटलिपुत्रके मध्य मार्गमें पहुंच चुके होंगे। पहले युवराजसे मिलने वे उज्जैन गए थे, किन्तु उनसे वे न मिल पाए; अब वे यहांके लिए चल पड़े हैं।'

'श्रीसम्राटदेवके साथ कौन-कौन लोग आ रहे हैं?' पूछा आमात्यश्रेष्ठने।

'उनके साथ युवराज-पुत्र श्रीसम्प्रतिदेव और युवराज्ञी देवी-कांचनमाला भी आ रही हैं।'

'अच्छा ठीक है। जा सकते हो तुम।' आज्ञा दी आमात्यश्रेष्ठ ने।

'और श्रीमान् ! आपकी सेवामें श्रीसम्राटदेवने गुप्त सन्देश भी भेजा है, जिसका कथन श्रीमान्‌जीके समक्ष एकान्तमें करूँगा।'

'ठीक है।' कहकर आमात्यश्रेष्ठ उसके साथ एकान्तमें थोड़ी दूर चले गए और बोले—'निवेदन करो। एकान्त है।'

इधर-उधर दृष्टि फेंककर सन्देशपायक बोला—'श्रीमान्, श्रीसम्राटदेवका आदेश है कि जब तक मैं राजनगर पाटलिपुत्र न आ जाऊँ, तब तक साम्राज्ञी तिष्यरक्षिताको बन्दिनी बनाकर कारागार में रखा जाय।'

'इसका कारण ! बता सकते हो ?'

'हाँ श्रीमान् ! इसका कारण तो बड़ा भयंकर और गुप्त है।'

आश्चर्यचकित हो आमात्यश्रेष्ठ बोले—'क्या है भद्र !'

'साम्राज्ञीके भयंकर किसी षड्यन्त्रका उद्‌घाटन हुआ है देव !'

'ठीक है, और कुछ ?'

सभी बातें एक-एककर सन्देशपायकने आमात्यश्रेष्ठसे कह दी। आमात्यश्रेष्ठ पुनः तिष्यरक्षिताके समक्ष उपस्थित हुए। महाबलाधिकृत वहीं खड़ा था। वहाँ पहुंचकर आमात्यश्रेष्ठने पुनः कहा—'महाबलाधिकृत महोदय !'

'आज्ञा श्रीमान् !'

'साम्राज्ञीको बन्दी बनाइए। देखिए श्रीसम्राटदेवका आदेश भीं आ चुका है इस सम्बन्धमें।'

'साम्राज्ञीको ?'

हां इन्हें ही। इस समय श्रीसम्राटदेवकी आज्ञाका पालन करें। इस सम्बन्धमें जानकारी आपको हो ही जायगी।

सशस्त्र सैनिकोंको बुलाकर महाबलाधिकृतने आदेश दिया। राजमहिषी तिष्यरक्षिता बन्दी बना ली गयी।

२५

प्रियदर्शी सम्राट अशोकवर्द्धनके पाटलिपुत्र पहुंचनेपर आमात्य-श्रेष्ठने उनका बड़ा ही स्वागत किया।

सम्राटदेवने पाटलिपुत्र पहुंचकर दूसरे ही दिन पौर-सभाको बुलानेकी घोषणाकी। प्रजामण्डलमें बड़ा विषाद और कौतूहल छा गया। राजनगरमें यत्र-तत्र अपराधियोंके अपराधोंपर विचार प्रारंभ हो गया। कोई कह रहा था कि धर्म-प्रिय सम्राट अशोक वृद्धावस्थामें बिबाह करके बिपत्तिमें आ फँसे। कोई तिष्यरक्षिताकी निष्ठुरताका वर्णन कर रहा था; कोई युवराज कुणालकी यातनाका स्मरणकर आँखोंमें अश्रु बहा रहा था, कोई-कोई कह रहा था - 'रानीने अपने सुखमय जीवनके साथ ही साथ मौर्यसाम्राज्यको भी नष्ट कर दिया।' कोई कह रहा था—'देखें सम्राट अपराधिनी रानी तिष्यरक्षिताको कैसा दण्ड देते हैं।' इसी प्रकार सारे राजनगरमें विषादकी लहरें दौड़ गयी थीं। सर्वत्र चर्चा हो रही थी।

दूसरे दिन एक विशाल प्रांगणमें पौर-सभामें सम्मिलित होनेके लिए नगरके सभो नागरिक और राज्यकर्मचारी उपस्थित होने लगे। सभी जनसमुदाय यथास्थान उपस्थित हो बैठ रहा था। राज्यसिंहासनपर प्रियदर्शी सम्राट अशोकवर्द्धन विराजमान थे, उनके पार्श्वमें एक छोटे स्वर्णसिंहासनपर युवराज्ञी काँचन थी और उनके पार्श्वमें आमात्यश्रेष्ठ विराजमान् थे; जो सभाकी कार्यवाहीके समय अभियोगकी तालिका प्रस्तुत करेंगे और महाबलाधिकृत तथा अन्य राजकर्मचारीगण सभामें उपस्थित होनेवाले सज्जनोंके बैठनेके प्रबन्धमें व्यस्त थे। देखते-देखते थोड़ी देरमें अपार जनसमूह एकत्र हो गया।

सम्राटदेवके आदेशानुसार अपराधीगण—तक्षशिलाधीश, रुद्रसेन, रानी तिष्यरक्षिता एवं और भी अन्य राज्यकर्मचारी जिन्होंने षड़यंत्र

में भाग लिया था, सशस्त्र सैनिकोंके संरक्षणमें उपस्थित किए गए। सभी अपराधी मस्तक नवाकर खड़े थे, जो मृत्युकी घड़ी गिन रहे थे। अपराधियोंके हृदयमें पश्चात्ताप था, ग्लानि थी और अब अहिंसा-का महत्व भी था। आज जिसके संरक्षणमें उन्होंने अपराध किया था, स्वयं उसकी रक्षा नहीं हो पा रही थी! फिर उन्हें कौन बचाता? सबसे निकृष्ट दशा रानी तिष्यरक्षिताकी थी। उसके सब राजकीय वस्त्राभूषण छिन गए थे, मुख म्लानही नहीं हुआ विकृत और विवर्ण भी हो गया था! आकृति पर अत्यन्त दीनता छा गयी थी; उसकी दशा देखकर कितनेही हृदय काँप गए थे। तिष्यरक्षिता कितने ही हृदयोंमें घृणाकी पात्र बन गई और कितनेही हृदयोंमें उसके सारे क्रिया-कलापोंके आन्दोलन उठ खड़े हुए; किन्तु राज-महिषीका यह विकृत रूप, उसकी दीनता, उसका पश्चात्ताप उसकी ग्लानि, उसका म्लानमन कभी भी एक साथ सम्राट अशोकवर्द्धनने नहीं देखा था और न तो इसकी कल्पनाही उन्होंनेकी थी—वह अनु-पम सौन्दर्य, देखनेमें गंभीरतापूर्ण विचित्र मादक यौवन और स्थायी जान पड़नेवाला मनोमुग्धकारी आकर्षक व्यक्तित्व इस प्रकार परि-वर्तित होकर घृणाके रूपमें दिखायी पड़ने लगेगा! आज सम्राट अशोकके हृदयमें इसकी अनुभूति हो रही थी—कि मानवशरीर, जिसके प्रति मनुष्यके हृदयमें प्रबल आसक्ति उत्पन्न हो जाती है, नाशवान् है! निश्चयही नाशवान् है! इसीलिए उच्चकोटिके सन्त किसी भी रूपपर आकृष्ट नहीं होते और उनके हृदयमें उसके प्रति ममता नहीं उत्पन्न होती, क्योंकि वे उसके वास्तविक रूपकी अनु-भूति और कल्पना पहलेही कर लेते हैं।

उपस्थित जन-समुदायमें विचित्र दशा थी सम्राट अशोकवर्द्धनके हृदयकी। 'मेरी अंकशायिनी! राजमहिषी! इस युगकी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी! प्रजामण्डलमें जिसकी अनुकंपाकी कामना थी, आज वही

बन्दी है, अपराधिनी है, दीन है, और सर्वशक्ति सम्पन्न राजसत्ता, मेरी भुजाएँ सब उसकी रक्षा करनेमें असमर्थ हैं हाय !' 'भला इसे क्या सूझी जो इसने प्राणोंसे प्रिय और माता-पितामें भक्ति रखने वाले युवराज कुणालका सर्वनाश कर दिया ! इतना था इसका हृदय निष्ठुर ! भला यह कार्य इसने कैसे कर डाला ! इसे प्राणदण्ड हो या कि क्षमा प्रदानकी जाये ? कुछ भी नहीं स्थिर कर पा रहे थे, सम्राट अशोक। एकके पश्चात् दूसरे विचार उनके हृदयमें उत्पन्न हो रहे थे। अपार दुःख था सम्राटको। तिष्यरक्षिताके प्रति एक ओर उनके हृदयमें ममता थी, दया थी; दूसरे कोनेमें घृणा थी, दण्ड था और सबसे बड़ी बात थी लोक-लज्जा !

सम्राटके हृदयकी अद्‌भुत दशा थी, अवर्णनीय थी, क्या कहें ! कुछ भी न कह कर मौन ही रहना ठीक है।

पौरसभामें उपस्थित जन-समुदायकी दृष्टि तिष्यरक्षिता पर थी। जन-जनके हृदयमें वही विचार उठ रहे थे; जो सम्राटके हृदयमें थे। पौरसभामें नीरवता छायी थी और हृदयतत्वकी सृष्टि व्यापिनी अनुभूतियाँ जो सम्राटके हृदयमें उभर रही थीं; उनका जैसे व्यापक प्रभाव समूचे जनसमुदायपर पड़ गया था; अन्तर यह था कि सम्राटके हृदयमें अपार क्षोभ था और जनता उसका मात्र अनुभव कर रही थी।

और कांचनमाला ? यही एक ऐसा हृदय था, जिसमें केवल प्रतिशोधकी अग्नि धधक रही थी और सहानुभूतिपूर्ण किसी भी विचारधाराका स्पर्श नहीं हो पा रहा था।

पौरसभामें नीरवता छा गयी थी। सम्राट उठ खड़े हुए और उन्होंने राज्यसिंहासन छोड़ दिया। सारी सभाकी दृष्टि सम्राटकी ओर मुड़ गयी। जन-समुदाय मौन होकर प्रतीक्षा करने लगा— सम्राटके कथनका।

सम्राट बोले—'उपस्थित सज्जनो ! आज पौर-सभाका जो आयोजन हुआ है, उसका एक मात्र उद्देश्य है—कुछ अपराधियोंके भारी अपराध पर विचार करने और उन्हें उचित दण्ड देनेका। आपके समक्ष सभी अपराधी उपस्थित हैं। इनमेंसे एक अपराधी स्वयं राजमहिषी है। मैंने वृद्धावस्थामें विवाहकर जो अनुचित कार्य किया है, उसके लिए आप सभीसे क्षमा चाहता हूँ।' कहते हुए हाथ जोड़कर सम्राटने मस्तक झुका दिया।

सम्राट पुनः कहने लगे—'इस विवाहके कारण माता-पितामें अपार भक्ति रखनेवाले युवराज कुणालको जो यातना भोगनी पड़ी, उसपर अभी आप सबके समक्ष आमात्यश्रेष्ठ प्रकाश डालेंगे। अपराधियोंके महान् अपराधके कारण जो अपार कष्ट देवी कांचनमाला को हुआ है, वह अवर्णनीय है। अतः इस कारण दण्ड देनेका अधिकार कांचनमालाको ही दिया जा रहा है, वही आपके समक्ष राजसिंहासनपर बैठकर न्याय करेगी। उठो बेटी ! तुम्हारे लिए राजसिंहासन रिक्त पड़ा है।'

कांचन उठी और सिंहासन पर जा बैठी।

'आमात्यश्रेष्ठ !' बोली कांचनमाला।

'आज्ञादेवि !'

'अभियोगकी कार्यवाही प्रारम्भ कीजिए।'

'जो आज्ञा !' कहकर आमात्यश्रेष्ठ उठ खड़े हुए ! सबकी दृष्टि वृद्ध आमात्यश्रेष्ठ की ओर चली गयी। वे अभियोग-पत्र पढ़ने लगे। हृदय थामकर जनताने उसे सुना। आमात्यश्रेष्ठने सम्पूर्ण अभियोग पत्र पढ़कर सुना दिया और कहा—'अपराधियोंको दण्ड सुनाइए।

सब लोग कांचनमालाको देखने लगे। कांचनमाला उठ खड़ी हुई। जनताकी उत्कण्ठा प्रबल हो गयी। कांचन बोली 'अपराधी तक्षशिलाधीशके अपराधका निर्णय यद्यपि तक्षशिलामें ही हो चुका

था, किन्तु यहाँ आनेपर उसका और भी महान् अपराध प्रमाणित हुआ है। अतः उसके दण्डमें और वृद्धिकी जा रही है।'

तक्षशिलाधीश कांप गया।

कांचन बोली—'अपराधी तक्षशिलाधीशका एक हाथ और एक पैर काट लिया जाय तथा दोनों कानों और नेत्रोंमें तप्त धातु डाल दी जाय।'

प्रजाजनोंमें कितनोंका कलेजा घोर दण्ड सुनकर काँप गया और कितने ही हृदयोंने तक्षशिलाधीशके अपराधकी गुरुताका स्मरणकर प्रसन्नताका अनुभव किया।

कांचनमाला पुनः बोली—'अपराधी रुद्रसेनका भी अपराध गुरुतर है, अतः उसके भी एक हाथ, एक पैर काट लिए जायँ तथा नेत्रोंमें वही तप्तधातु डाली जाय।'

कांचन पुनः कहने लगी—'अपराधिनी तिष्यरक्षिता ? जिसके द्वारा सभी अपराधी प्रेरणा पाकर अपराध करनेमें प्रवृत्त हुए, इसका अपराध सबसे महान् है।' कहते हुए कांचनमालाकी आकृति रोषावेगमें अत्यन्त अरुण हो गयी। सबने एक बार तिष्यरक्षिताकी ओर दृष्टि फेरी और दूसरी बार कांचनमालाकी ओर। सम्राट अशोक मौन थे, उनकी दृष्टि नीचेकी ओर स्थिर थी, यह भी सभीने देखा। तिष्यरक्षिता मौन थी, स्थिर, दृष्टिसे नीचेकी ओर वह देख रही थी; क्या वह सोच रही थी, कुछ नहीं कहा जा सकता; किन्तु सभीने देखा अपना नाम कांचनमाला द्वारा सुन कर वह सिहर गयी।

कांचनमाला बोली—'और आमात्यश्रेष्ठ ! अपराधिनी तिष्यक्षिताके अपराधसे सबका हृदय दुःखी है, अतः इसे दण्ड दिया जाता है—दोनों नेत्र लौह तप्त शलाकाएँ घुसेड़कर फोड़ दिए जायँ, उसे एक वृक्षमें उलटा टाँग दिया जाय। नीचे अग्नि प्रज्ज्वलितकी जाय, जले हुए अंगों पर नमक छिड़ककर पीड़ा बढ़ा दी जाय और मेरे घोड़ेकी

पूँछमें उसे बांधकर सारे नगरमें घसीटा जाय और यह अन्तिम दण्ड तबतक चलता रहेगा, जबतक वह जीवित बची रहे। मर जानेपर उसे घोड़ेकी पूँछसे अलग कर दिया जाय।'

'सम्राटदेवको असह्य पीड़ा हुई, कठिन दण्ड सुनकर। उनका हृदय काँप गया, क्योंकि अब भी उनके हृदयमें तिष्यरक्षिताके लिए कुछ स्थान था। सम्राट कुछ भी बोल नहीं सकते थे। प्रजामंडलमें भी किसीका साहस न था! जो दण्ड कम करा सकता।

कांचन बोली—'महाबलाधिकृत!'

'आज्ञा देवि!' मस्तक नवाकर बोला महाबलाधिकृत।

'अपराधियोंके दण्डकी व्यवस्थाकी जाए और अन्य अपराधियों को जो इस षड़यन्त्रमें भाग लिए थे, आजीवन कारागारमें डाला जाय।' कहा कांचनमालाने।

'ऐसा ही होगा देवि!' महाबलाधिकृतने कहा।

पौरसभा विसर्जित हो ही रही थी कि प्रजामंडलने महात्मा यश के साथ युवराज कुणाल और उनके नेत्रोंकी चिकित्सा करनेवाले वैद्यको आते देखा। सभाने आँखों पर पट्टी बँधी वैद्यवरके कन्धोंपर हाथ रखकर आते हुए कुणालको देखा, जो महात्मा यशके पीछे-पीछे चले आ रहे थे। महात्मा यश कुणालको लेकर सम्राटके निकट पहुंचे। सम्राट अशोकवर्द्धनने आसन छोड़ दिया और महात्मा का चरण स्पर्शकर अपने आसन पर बैठाया। कुणालको दौड़कर सम्राट हृदयसे लगा विलाप करने लगे। वह करुण दृश्य देखकर प्रजाकी आँखोंमें भी आँसू आ गया। महात्मा यशका चरण-स्पर्श आमात्यश्रेष्ठ और देवी कांचनमालाने भी किया। कांचनने कुणाल का भी चरण-स्पर्श किया।

'मुझे यहाँ पहुंचनेमें बड़ा विलम्ब हो गया सम्राटदेव! सभाकी कार्यवाही प्रारम्भ अभीतक नहीं हुई!' पूछा महात्मा यशने।

अत्यन्त खिन्नमन थे सम्राटदेव। शोकावेगके कारण वे कुछ भी न बोल सके। आमात्यश्रेष्ठने दण्डाज्ञा जो अपराधियोंके लिए घोषितकी गयी थी, सुना दिया। मौन थे महात्मा यश और कुणाल भी।

थोड़ी देरमें कुणाल बोले—'अब चलना चाहिए महात्मन् !'

सम्राट अशोक, आमात्यश्रेष्ठ और कांचनमालाने सोचा था—कुणाल अब महात्मा यशके साथ आए हैं और पुनः शासनकी बाग-डोर अपने हाथोंमें लेंगे, किन्तु जब वे वहाँसे जानेके लिए प्रस्तुत हुए, तब सबको आश्चर्य हुआ।

सम्राट रो पड़े और गला साफकर बोले—'युवराज ! बेटा कुणाल ! मुझे क्यों अनाथ कर रहे हो ?'

'युवराज नहीं, अब मैं भिक्षु कुणाल हूँ। राज्य नहीं, मुझे भिक्षा चाहिए।' कुणालकी बातोंसे सम्राटदेवके हृदयपर महान् आघात पहुंचा। वे स्थिर रह सके, उनका हृदय फट रहा था। वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

कुणाल पुनः बोले—'महात्मन् ! चलिए यहाँसे। मैं यहाँ नहीं रुकना चाहता।'

कांचन बोली—'युवराजदेव ! आपके वियोगमें श्रीसम्राटदेवको महान् व्यथा पहुँची है, अतः आप रुकिए और उनका शोकावेग दूर कीजिए।'

'देवी कांचनमाला ! जहाँ शान्तिके स्थानपर क्राँति ही प्रबल है, वहाँ क्षणभर भी मैं नहीं रुकना चाहता। तुम्हारे हृदयमें हिंसा की कामना प्रबल है। भला मैं यहाँ कैसे रुक सकता हूँ ?' हाँ यदि तुम लोगोंकी हमारे ऊपर सद्भावना है, तो मैं यहाँकी भिक्षा ग्रहण कर लूँगा।'

'भिक्षा नहीं, यह साम्राज्य ही तुम्हारा है वत्स कुणाल!' सम्राटदेव सचेत होकर बोले। उनकी हिचकियाँ बँध गयी थीं।

'मेरी आकांक्षा पूरी करें सम्राटदेव! मैं जो चाहता हूँ।' कुणाल बोले।

'तुम्हारी क्या आकांक्षा है वत्स; बोलो।'

कुणाल उच्च स्वरमें कहने लगे—'श्रीसम्राटदेवसे निवेदन है कि अभी-अभी देवी कांचनमालाने अपराधियोंका जो न्याय किया है, वह हमें अमान्य है। माता तिष्यरक्षिताको हम क्षमा करना चाहते हैं और इसी प्रकार तक्षशिलाधीश, रुद्रसेन तथा अन्य अपराधियोंको भी। सम्राटदेव! यदि हमारे ऊपर प्रसन्न हैं; तो यही भिक्षा दें।'

अपराधियोंके हृदयमें जीवनका संचार हो उठा।

'किन्तु ऐसा नहीं हो सकता देव!' कांचन बोली।

'देवी कांचनमाला! अपराधियोंने जो अपराध किया है; वह मेरे साथ हुआ है, जिसे मैं क्षमा करता हूँ।'

'भिक्षुप्रवर! आपके साथ जो अपराध किया गया है, वह क्षमा हो सकता है; किन्तु कांचनके साथ जो उसके पतिकी दुर्दशाकी गयी है, प्रजाके युवराजके साथ जो अपराध किया गया है, वह कैसे क्षमा हो सकता है? कैसे क्षमा होगा एक पिताके पुत्रके साथ जो अपराध किया गया है और एक पुत्रके पिताके साथ जो अन्याय, जो षड़यन्त्र किया गया है, वह कैसे क्षमा हो सकता है? क्षमा करानेवालेको कांचनके, प्रजाके, सम्राटदेवके और सम्प्रतिके हृदयके घावोंको, व्यथाकी तीव्रताको भी देखना चाहिए! भला कैसे अपराध क्षमा हो सकता है देव!' कांचनने व्यथित होकर कहा।

अपराधियोंको पुनः मृत्युकी छाया दिखायी पड़ने लगी।

'इसलिये कि अपराधोंका सर्वश्रेष्ठ दण्ड क्षमा ही है देवि! माता

तिष्यरक्षिताको हम क्षमा कर रहे हैं और उसके सहायकोंको भी। बोलिए सम्राटदेव ?' कुणालने कहा।

सम्राटदेव मौन थे। कांचन पुनः बोली—'अपराधियोंको यदि क्षमा किया भी गया तो उनके नेत्र फोड़ दिए जायँ।

'यह क्यों ? इसलिए कि मेरे नेत्रोंकी ज्योति जो नष्ट हो गयी थी ? नहीं, नहीं; ऐसा न सोचो देवि ! मेरी आँखें वैद्य प्रवरकी चिकित्सासे ठीक हो रही है क्यों वैद्यजी, आँखकी पट्टी खोलकर दिखा दूं ?'

कांचन मौन हो गयी।

सारी जनताने हर्षनाद किया वैद्यवरने स्वतः अपने हाथोंसे पट्टी खोली आँखें कुछ-कुछ ठीक हो रही थीं, वैद्यवर बोले—'आंखोंकी ज्योति पहले जैसी तो नहीं होगी; किन्तु कुछ न कुछ अवश्य ठीक हो जायगी।' पुनः पट्टी बांधकर वह खड़ा हो गया।

'महाबलाधिकृत !' बोले कुणाल।

'आज्ञा देव !' मस्तक नवाकर महाबलाधिकृत बोला।

'अपराधियोंको छोड़ दो, उन्हें क्षमा किया गया।'

'आज्ञादेव !' कहकर बन्दियोंको महाबलाधिकृतने उन्मुक्त करा दिया।

प्रजामंडलने जय-घोष किया और पौरसभाका कार्य-क्रम समाप्त हुआ। सभी अपने-अपने स्थानको लौट पड़े।

सभी अपराधी पश्चात्ताप करते हुए आकर कुणालके चरणोंपर गिर पड़े और बोले—'देव ! हम जीकर ही क्या करेंगे ? हमसे आपका महान् अपराध हुआ है।'

'नहीं, नहीं उठो, जीवित रहकर संसारकी माया-ममताके प्रति आसक्ति का त्यागकर भगवान् तथागतकी शरण ग्रहण करो, तुम्हारा चित्त शान्त हो जायगा।'

'रोग-शोक सुख-दुःख सबको होता है, किन्तु धैर्यवान् पुरुषको जिसकी ग्रन्थियां छूट गयी हैं, उसे सुख-दुःखमें आसक्ति नहीं उत्पन्न होती। यह तो संसारका धर्म है, इसे सहना चाहिए। अतः धैर्य रखो भद्र!' कुणालने पुनः कहा।

उसी क्षण सभी अपराधी भिक्षुवेश धारणकर वहांसे चल पड़े।

अपराधियोंको क्षमा प्रदानकर कुणाल महात्मा यशके साथ वापस जानेके लिए तत्पर हुए, उन्हें रोकनेकी बहुत बड़ी चेष्टाकी गयी, किन्तु वे रुके नहीं, कुक्कुटाराम विहार महात्मा यशके साथ वापस लौट गए।

२६

यद्यपि तिष्यरक्षिताको कुणालने क्षमा प्रदान कर दिया था, किंतु उसने अनुभव किया कि उसके लिए संसारके किसी भी मनुष्यके हृदयमें स्थान नहीं है। यह विचार करते हुए कुणालका उसे स्मरण हो आया, विश्वमें उसे सभी घृणाकी दृष्टिसे देख रहे थे, यदि कोई भी व्यक्ति सहानुभूति रखनेवाला था, तो वह कुणाल थे। यही वह रात-दिन सोचा करती। उसे शान्ति न थी। उसने अत्यन्त लज्जाका, दीनताका और ग्लानिका अनुभव किया। इसी चिन्तामें धीरे-धीरे वह गलने लगी और थोड़े ही दिनोंमें अत्यन्त कृश हो गयी।

जब कुणाल बड़ी निर्दयतापूर्वक सबकी ममता त्यागकर महात्मा यशके साथ चले गए तब सम्राट अशोक एवँ कांचनमाला आदिको बड़ी निराशा हुई। वे सब बड़े दुःखी हुए। सम्राटदेव तो इधर अत्यंत मानसिक पीड़ा सहन करते-करते बहुत शिथिल हो गए। प्राय वे एकान्तसेवन करने लगे। कभी-कभी देवी काँचनमाला और सम्प्रतिसे वार्त्ता कर वे शांतिका कुछ अनुभव करते। शासनकार्य सम्राटदेवने कांचनमालाको सौंप दिया था। काँचनमालाने इन सभी घटनाओंकी सूचना दशरथको, जो उज्जयिनीके उपप्रजापति थे, भेज दी और उन्हें शीघ्र राजनगर पाटलिपुत्र उपस्थित होनेका आदेश भेजा।

कुणालको इस तरह अविचल देखकर सम्राटदेवके हृदयमें बड़ी पीड़ा उत्पन्न हुई, वे शोक-ग्रस्त हो गए। तिष्यरक्षिता भी अत्यन्त खिन्न मन अपने भवनमें पड़ी रहती थी। अब सम्राट उससे कुछ भी सम्पर्क नहीं रखते थे। अतः अब तिष्यरक्षिता और सम्राट अशोक भी बड़ा ही नीरस जीवन व्यतीत करने लगे। अब इन लोगोंके जीवनमें कोई आकर्षण शेष नहीं रह सका।

इस उपर्युक्त घटनाओंसे सम्राटके हृदयपर इतना गहरा आघात पड़ा था कि देखते-देखते वे अत्यन्त दृढ़ प्रतीत होने लगे। उन्हें अत्यंत शिथिलताका अनुभव होने लगा।

अनेंक बार सम्राट, काँचनमाला और आमात्यश्रेष्ठने प्रयत्न किया; किन्तु कुणाल राजभवनमें पुनः न लौटे, न लौटे। अन्तमें निराश होकर एकांतमें बैठे-बैठे आँसू बहा-बहाकर तड़पते हृदय पड़े रहते। धीरे-धीरे सम्राट अपने जीवनसे निराश होने लगे। उनकी खराब दशा होते देख काँचनको बड़ी चिन्ता हुई। घबराकर वह कुणालके पास पहुंची और उसने निवेदन किया—'देव ! आपके वियोगमें सम्राटदेवकी दशा अत्यन्त खराब होती जा रही है; अतः चलकर उन्हें ढाढ़स बधाएँ।'

'मैं वहाँ अब नहीं जा सकता देवि ! मुझे अपने पथसे विचलित करनेका प्रयत्न न करो, और जबतक भगवान् तथागतकी शरणमें न आ जाओगी, तबतक तुमसे बातें न करूँगा। जाओ !'

'सम्राटदेव मरणासन्न हैं देव ! अतः आप अवश्य चलकर उन्हें देख लें'

'ऐसा नहीं हो सकता देवि ! मनुष्यका घोर शत्रु मोह ही है, अतः उसका उच्छेद करना एक श्रेष्ठ भिक्षुका ही काम है।'

निरुत्तर होकर आँखोंमें आँसू भरे कांचन वापस लौट आई और जो कुछ कुणालने कहा था सम्राटसे कांचनने निवेदित किया।

कुणालके कथनका सम्राटपर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ा। वे आहें भरते हुए निश्चेष्टसे हो गये। धीरे-धीरे सम्राटकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गयी। उनके समीप खड़े हुए काँचन, दशरथ, सम्प्रति और आमात्यश्रेष्ठ विचारमग्न थे। सहसा थोड़ी देरमें वैद्यवरके साथ कुणाल आकर उपस्थित हुए और उन्होंने सम्राटदेवके मस्तक-पर हाथ रख दिया, किन्तु अब सब व्यर्थ था। सम्राट बोल नहीं सकते थे। अब उनका अन्तिम समय निकट था। कुणालके नेत्रोंसे

आंसुओंकी धारा प्रवाहित हो चली। उनके रोते ही सब लोग रो पड़े। सम्राटदेवके उस अन्तिम क्षणमें तिष्यरक्षिता भी आ पहुंची। उसके भी नेत्रोंसे दो बूँद आँसू गिर पड़े।*

सम्राट अशोकवर्द्धनकी मृत्युके पश्चात् दशरथ सिंहासनारूढ़ हुए और सम्प्रतिको यौवराज्य पदपर अभिषिक्त किया गया। उसी समय कांचनमाला भी कुणालके साथ तथागतकी शरणमें चली गयी। जाते समय दशरथने कुणाल और कांचनके चरणोंमें प्रणाम किया।

एक सप्ताहके पश्चात् राजमहिषी तिष्यरक्षिताकी भी मृत्यु होगई।†

* सम्राट अशोककी मृत्यु २३२ वर्ष ई० पूर्वके लगभग हुई थी।

† सम्राट अशोकके कुछ समय पश्चात् साम्राज्य दो भागोंमें विभक्त हुआ। पूर्वी भागमें दशरथ जो सम्प्रतिके भाई थे और पश्चिमी भागमें कुमार सम्प्रति शासन करने लगे। सम्प्रतिकी राजधानी उज्जैन थी।

शिलालेखोंके आधार पर सम्राट अशोकके सम्बन्धियोंका निम्न परिचय मिलता है :—

पिता—बिन्दुसार।

माता—शुभद्रांगी (उत्तरी गाथा), धर्मा (दक्षिणी गाथा)।

भाई सुमन (सुशीम)—जेष्ठतथा सौतेला भाई। वितासोक—(तिष्य) सहोदर भाई। महेन्द्र—सौतेला भाई।

रानियाँ—असंधिमित्रा, कारुवाकी, देवी अथवा विदिसा महादेवी शाक्य-कुमारी, पद्मावती, तिष्यरक्षिता।

पुत्र—महेन्दर, उज्जैनो, तिवारा (तिवाला), कुणाल (धर्म-विवर्धन) जालौका।

पुत्री—संघमित्रा, चारुमती।

दामाद—अग्निब्रह्मा, (संघमित्राका पति, महावंश ५), देवपाल (चारुमती का पति)।

पौत्र—दशरथ (दशलथ-देवानां-प्रियनागार्जुन-गुफा-लेख), सम्प्रति, सुमन (संघमित्राका पुत्र, महावंश १३वां प्रकरण